प्राचीन भारत के सांस्कृतिक केन्द्र

विभिन्न युगों की सांस्कृतिक परम्पराओं को प्रश्रय देने
वाले कतिपय स्थलों का कलात्मक सचित्र विवेचन

लेखक
श्री सुखवीरसिंह गहलोत, एम. ए.
(हिन्दी व इतिहास)

एवं

श्री जी. आर. परिहार, एम. ए.
(इतिहास व राजनीति)
महाराणा भोपाल कॉलेज
उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण } १९५९ मूल्य ५)

श्री जगदीशसिंह गहलोत, एफ. आर. जी. एस. (लन्दन)

समर्पण

राजस्थान के इतिहासमनीषि

स्वर्गीय श्री जगदीशसिंहजी गहलोत

जिन्होंने भारतीय कला एवं पुरातत्व के अनुसंधान में अपना जीवन व्यतीत किया और जिनकी प्रेरणा, पथप्रदर्शन व आशीर्वाद से इस कृति का प्रकाशन हुआ

के चरणों मे

गहलोत व परिहार

FOREWORD

I have great pleasure to associate myself with this literary production of my friends Shri Sukhvir Singh Gahlot and Shri G. R. Parihar and thus fulfil the last wish of my intimate friend the late Shri Jagdish Singh Gahlot, the renowned historian of Rajasthan who unfortunately passed away on 22nd September, 1958. I am also happy to find that Shri Sukhvir Singh Gahlot maintains the learned tradition of his father, who spent a life-time in studying Indian art and archaeology.

The present study of Indian culture is objective as it is based on the relics of Indian art and architecture that have survived the onslaught of time during India's age-long vicissitudes of political and religious history. These relics as they exist at different cultural and religious centres of ancient India like Pataliputra, Sanchi, Sirkap, Sarnath, Mathura, Ajanta, Ellora etc. tell the tale of glory that was Ind in a more forceful manner than the reconstruction of Indian history by imaginative historians. In fact the joint authors of the present book have sedulously avoided the risky course of peeping into Indian antiquity and its culture on the wings of mere imagination. The history of art of all civilizations of the world reveals that art has moved in the wake of religion. Even so the Indian art has been inspired by religion, Jain, Brahmanical or Buddhist The patrons of art believed in religion and the artists employed by them gave visible embodiment to the religious aspirations of their masters. Examples of secular art as such without a religious motive are rare among the relics of art which have come down to us. We now live in a secular State and watch with interest the progress of secular art as patronized by our national Government. Perhaps after fifty years or so we shall be in a position to judge the merits and demerits of secular art.

The art of Mohenjodaro still remains a mystery to us though the civilization that produced it was of an advanced type. This mystery is sealed up like the seals found at Mohenjodaro. If these seals are deciphered in future, they

are likely to throw some light on the art of Mohenjodaro, its exact nature and the ideologies that inspired it. All art is the expression of an idea, whether secular or religious. Carlyle called St. Paul's Cathedral an "architectural idea". The specimens of Indian temple architecture that now stand before us and rouse in us a sense of religiosity and wonder are all "architectural ideas".

Many books have been published on the history of Indian art, architecture, painting etc. but the present book in Hindi will serve as a well planned introduction to the history of Indian art in the widest sense of the term. It will create in a lay reader a sense of profound respect for Indian art thus inspiring him to study this subject more closely, especially in its historical and cultural perspective. We feel interested in a place with its art treasures on account of its historical setting and its association with great men and events of ancient and mediaeval India. Mere catalogues of art treasures are of no use without a scholarly appraisal of these treasures and the present book which aims at such an appraisal will not fail to guide the reader correctly to understand the full significance of Indian art and architecture as vouched by the extant relics at different centres in India. A few illustrations given by the authors at the end of the book enhance its value especially for those who have not seen these relics personally. The remarks about Indian art in general found in the book are quite cogent and critical.

In closing this brief foreword I have to convey to Shri Gahlot and Shri Parihar my best thanks for giving me an opportunity to associate myself with their scholarly labour of love as embodied in the present volume.

Bhandarkar Oriental Research Institute, POONA 4
26th January, 1959.

P. K. Gode

भूमिका

राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् हमारी मानसिक चेतना में एक बहुत बड़ा मोड़ आया। देश के प्राचीन इतिहास व सांस्कृतिक परम्पराओं का लेखाजोखा नये दृष्टि-कोण से आंका जाने लगा। आधुनिक शिक्षा के क्रम में सांस्कृतिक इतिहास पर विशेष रूप से जोर दिया जाने लगा। एक प्रकार से राजवंशों की खोज करना इतिहासकारों ने त्याग दिया। इस नई विचार धारा को आगे बढ़ाने के लिए या उनका परिचय कराने के लिए लिखित सामग्री की कमी सर्वत्र खलने लगी। इस कमी को पूरा करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक की लेखमाला को प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक में प्राचीन भारत के १००० ई. तक के काल के विभिन्न कला केन्द्रों का परिचय दिया गया है। प्रस्तुत लेख संग्रह मौलिक है या अपने विषय में नई शोध प्रस्तुत करता है, यह दावा हमारा नहीं है। यह प्रयास तो केवल विभिन्न अप्राप्य ग्रंथों व पुरातत्व व इतिहास की विभिन्न पुस्तकों से संगृहीत सामग्री को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का है। कहीं-कहीं हमने अपनी राय व्यक्त भी की है लेकिन जान बूझकर विषय को जटिल व शास्त्रीय नही बनाया है। भारत में इने गिने ही पुस्तकालय हैं जहां इस विषय की सम्पूर्ण पुस्तकें एक ही जगह उपलब्ध हो सकती है। शिल्प कृतियों

के चित्रों को प्राप्त करने में बहुत कठिनाई झेलनी पड़ी व इनका संग्रह इतना खर्चीला व विलम्ब का कारण होता गया कि इच्छानुसार चित्रों का न्याययुक्त संग्रह देना असंभव होगया।

राष्ट्रभाषा में यह पुस्तक अपने विषय की कतिपय पुस्तकों में से ही हो और इसका प्रकाशन शीघ्र हो, इस लोभ से पुस्तक के कई स्थल अधिक विवेचनात्मक न रहकर, केवल विवरणात्मक ही रहे हैं।

इस विषय की पुस्तक को लिखने का सुझाव हमें राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्वर्गीय श्री जगदीशसिंहजी गहलोत (रिटायर्ड सुप्रिन्टेन्डेन्ट, अजायबघर व पुरातत्व विभाग, जोधपुर) से चार वर्ष पूर्व मिला। उनके पुस्तकालय का यदा-कदा उपयोग हमने किया। लेखमाला लिखकर हमने उनके पास संशोधन व सुझाव के लिए प्रस्तुत की, परन्तु स्वर्गीय जगदीशसिंहजी पूरी पाण्डुलिपि नहीं देख सके। पुस्तक का पहला अध्याय जब मशीन पर छप रहा था तब ही उनका अचानक स्वर्गवास हो गया। यद्यपि इस अभाव से हमें अन्ततक उनसे परामर्श प्राप्त करने का अवसर नही रहा फिर भी इस प्रकाशन में उनकी प्रेरणा हमें पथ प्रदर्शित करती रही। पुस्तक की पांडुलिपि को हिन्दी टाईप करने प्रूफ संशोधन व ब्लाकों आदि की बनाई में जो जागरूकता प्रियवर रणवीरसिंह गहलोत ने दिखाई व समय दिया वह सराहनीय है।

पुस्तक में जो त्रुटियां व न्यूनताएँ हैं, उन सबकी जिम्मेवारी हम पर है पर इतना विश्वास है कि दूसरा आगामी

संस्करण परिवर्तित व कुछ नये रूप में ही प्रकट होगा। इतना सब होने पर भी प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी-साहित्य भण्डार की एक कमी को पूरा करती है, ऐसा न मानने का कोई कारण समझ में नहीं आता। पुस्तक पढ़कर देश के प्राचीन गौरव का अनुभव व कला केन्द्रों को स्वयं जाकर देखने की इच्छा उत्पन्न होगी, यह हमारी धारणा है, और इसी में हमारी सफलता है।

गहलोत भवन
जोधपुर
वसन्त पंचमी
वि. सं. २०१५

सुखवीरसिंह गहलोत
जी. आर. परिहार

विषय-सूची

चित्र - सूची

● ●

सहायक ग्रन्थ

¤ ओरटल, एफ. ओ.

एक्सकेवेशन एट सारनाथ

¤ ब्राउन, पर्सी

इन्डियन आर्किटेक्चर, जिल्द १

इन्डियन पेन्टिंग

¤ बर्गेज, जे.

आर्कीयोलोजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया (जिल्द १–४)

केव टेम्पल्स

रिपोर्ट ऑन एलोरा टेम्पल्स

¤ बेकोफर, ए.

अर्ली इन्डीयन स्कल्पचर

¤ कुमारस्वामी, आनन्द. के.

इन्ट्रोडक्शन टू इन्डियन आर्ट

ए हिस्ट्री ऑफ इन्डियन एन्ड इन्डोनेशियन आर्ट

¤ कनिंघम

आर्कीयोलोजीकल सर्वे ऑफ इन्डिया रिपोर्ट (जिल्द १–२३)

स्तूप ऑफ भरहुत

¤ फरगुसन एन्ड बर्गेज; जे.

ए हिस्ट्री ऑफ इन्डियन एन्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर

केव टेम्पल्स ऑफ इन्डिया

¤ मजूमदार, बी.
ए गाइड टू सारनाथ

¤ मजूमदार, एन. जी.
ए गाइड टू दी स्कल्पचर्स इन दि इन्डियन म्यूजियम

¤ पब्लिकेशन डिवीजन ऑफ इन्डियन गवर्नमेन्ट
इन्डिया थ्रू एजेज़

¤ रायकृष्णदास
भारतीय मूर्तिकला
भारतीय चित्रकला

¤ स्मिथ, विन्सेन्ट
ए हिस्टरी ऑफ फाइन आर्ट इन इन्डिया एन्ड सीलोन

¤ जौविउ दूब्रेल
आर्कीयोलोजिकल सर्वे (जिल्द १)

¤ वकील : के. एस.
एट अजेन्टा

¤ ¤

प्राचीन भारत के सांस्कृतिक केन्द्र

—१—

भारतीय कला की पृष्ठ भूमि

और साथमें उन पर परम्पराओं का प्रभाव भी पड़ता रहा था। इसका अर्थ यह नही प्रतीत होता है कि भारतीय कलाकारों ने अन्य शैलियो की नकल की है। नकल करने से परम्परा नही बन सकती है। भारतीय कला इस प्रकार के दोषों से सर्वदा मुक्त रही है। एक ही युग में सब क्षेत्रो में चित्रकारी से स्थापत्य कला तक कला का मूर्त रूप एकसा बनाए रहना और वस्तु के सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु को व्यक्त करने का प्रयास करने की जो प्रणाली भारतीय कलाकारो ने अपनाई थी वह 'नकल' के दोषों से मुक्ति का सफल रूप था।

"कला कला के लिए है," इस उद्देश्य के प्रति भारतीय कलाकारो का दृष्टिकोण व्यापक रूप से नही पनप पाया था। भारतीय कलाकारों में कला के प्रति जो प्रेम रहा वह स्थायित्व इसलिए प्राप्त कर सका कि उन्हे जीवन के प्रति प्रगाढ स्नेह था। उस समय, जब कि भारत मे कला पर कोई साहित्य नही रचा गया था, जब कि दार्शनिकों द्वारा ही सुन्दरता की व्याख्या होती थी; जब कि मूर्ति व चित्रकला, कलाकृतिएँ नही बल्कि उद्देश्य कृतिएँ मानी जाती थी; उस समय, कला समाज की हर प्रवृत्ति से प्रभावित गुण मात्र थी और समाज की हर प्रवृत्ति धर्म के द्वारा संगठित और सक्रिय होती थी। अत: भारतीय कला "धर्माश्रित" थी। कालान्तर में कला के विकास में 'धर्म प्रचार' भी हुआ। कला ने आध्यात्मिक वृत्ति को जागृत करने और उसके द्वारा मनुष्यो के जीवन को शुद्ध, सरल व सात्विक बना कर मोक्ष प्राप्त करने की प्रेरणा दी। यही कारण है कि धार्मिक क्षेत्रो में कला का जो सृजन हुआ वह अद्वितीय बन गया। इस दृष्टिकोण से कला का उद्देश्य "मोक्ष प्राप्त करना" भी था। कलाकारों ने अपनी कला साधना में समर्पण की भावना को प्रधानता दी। कला से स्वार्थ-साधन और सांसारिक जीवन को सजाने व संवारने का काम नही लिया गया। बौद्ध, जैन, ब्राह्मण, द्रविड आदि शैलियों की कृतियों व उनके क्षेत्रो से इसी विश्वास की पुष्टि होती है। धर्म और

लोकोत्तर जगत से सम्बन्ध होते हुए भी कला का 'लौकिक महत्व' किसी भी दृष्टि से अल्प नहीं रहा है। 'आत्मस्थ सौन्दर्य' को प्रकट करने में संलग्न होने के कारण, पार्थिव आवश्यकताओं में जन्म लेने वाली भारतीय कला भौतिक होते हुए भी आध्यात्मिक कोटि में ही आती है। उसमें हमारे पूर्वकालीन लोक-जीवन एवं नृतत्व-शास्त्र पर जो प्रभाव पड़ा है, वह महत्वपूर्ण है। संक्षेप में, भारतीय कला के उद्देश्य समयानुसार परिवर्तित होते रहे हैं परन्तु 'धर्म' 'मोक्ष' 'आत्मस्थ सौन्दर्य' की भावना कलाकारों को अधिक प्रेरित करती रही थी।

सिन्धु घाटी (३,००० ई० पू०)

भारतीय वस्तुकला का इतिहास यों तो मानव विकास युग से माना जा सकता है परन्तु विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि ने सिन्धु घाटी की सभ्यता के युग में मोहेनजोदड़ो (सिन्ध) व हड़प्पा (पंजाब) क्षेत्रों में प्राप्त हुई कृतियों के युग से स्वीकार करना अधिक ठीक रहेगा। इस युग के पूर्व घास, लकड़ी और पत्तों की झोंपड़ियों का युग था। मोहेनजोदड़ो, हड़प्पा व लोथल (गुजरात) के अवशेषों से प्राचीन भारत की कला का व्यापक रूप ज्ञात होने लगता है। सिन्धु घाटी के निवासी नगरों में रहते थे। भौतिक जीवन के प्रभाव से उनके सामाजिक जीवन का ढांचा व्यक्त हुआ था। वे प्रकृति के पूजक थे। अतः सिन्धु घाटी की कला जीवन के सात्विक तत्वों के परे की तो नहीं कही जा सकती परन्तु वह अत्यन्त व्यवहारिक व उपयोगी अवश्य थी। नगर निर्माण की कला का जो सुन्दर व भव्य रूप हमें सिन्धु घाटी के दो नगरों में देखने को मिलता है वैसा प्राचीन भारत के अन्य स्थानों पर नहीं मिलता है। ईटों के बने मकान, चौड़े रास्ते, नालिएं, स्नान घर आदि को देखने से ऐसा भास होता है कि हम किसी आधुनिक शहर में घूम रहे हैं। ईंटों के साथ-साथ लकड़ी का प्रयोग होता था। उस समय

के कारीगरों व नगर निर्माण के इंजीनियरों की निर्माण करने की चतुराई देख कर प्राचीन भारत की विशेषताओं पर आश्चर्य होने लगता है। स्थूल कला के दूसरे अंग मूर्ति निर्माण की कला भी इस युग की विशेषता रही है। धातुओं से बनी हुई मूर्तियों में देवी की मूर्ति और पुरुष का धड़ विशेषताएँ रखते हैं। नृत्यारूप में मूर्तिए कांसे की बनी मिली हैं। इससे ज्ञात होता है कि मूर्ति कला का प्रारम्भ मोहेनजोदड़ो के युग से होता है। इस काल के चित्र, विषय व शैली उस समय के मानव जीवन के प्रतीक हैं। ज्योमित्री की आकृतियों की अधिकता रही है। फूलों पत्तियों और पशु पक्षियों की आकृतियों का भी काफी उपयोग किया गया है। मिट्टी के बर्तनों पर रंगीन चित्रकारी अत्यन्त आकर्षक है। मोहेनजोदड़ो में प्राप्त मुद्राओं में उस युग की कला की पराकाष्ठा प्रतीत होती है।

पूर्व मौर्य काल (४०० ई० पू०)

सिन्धु घाटी की सभ्यता के पतन के बाद कला के क्षेत्र में भारतीय जीवन में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। कालान्तर में मोहेनजोदड़ो की परम्परा समाप्त हो गई। भारत में आर्यों का उद्भव हुआ। आर्य एक घुमक्कड जाति के रूप में भारत में फैले और मैदानों में बस गए। सप्त-सिन्धव प्रदेश को उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया। यहा की पूर्व जातियों से जिनमें द्रविड़ मुख्य थे, संघर्ष हुआ और धीरे-धीरे आर्य उत्तरी भारत में फैल गए। आर्यों का स्थिर रहकर बस्ती बसाना एक क्रान्तिकारी घटना थी। उन्होंने धार्मिक जीवन के महत्व को आधारभूत बना कर एक नए समाज के संगठन का श्रीगणेश किया। आर्यों के आने के पहले यहां प्रकृति की पूजा होती थी। आर्यों का इस प्रकार की अनार्य पूजा से कोई सम्बन्ध नहीं था। प्रकृति के देवी देवताओं की कृतियें, प्राचीन व असुन्दर होती थी। प्राचीन भारत की आदि जातियों में औद्योगिक कला भी व्यक्त थी। लकड़ी

व ईंटों से गृह बनाये जाते थे। लोहा, ताम्बा, चांदी व सोने का प्रयोग करना आदिवासी जानते थे। प्राचीन शिल्प शास्त्र पर की पुस्तक 'चित्र लक्षण' में चित्रकारी के आधार, रंग, गुण व लक्षणों का वर्णन किया गया है। यह पुस्तक भगवान बुद्ध के पूर्व युग की कृति मानी जाती है।

आर्य लोग गांवों में रहते थे। लकडी, घास, फूस, मिट्टी की बनी झोंपड़ियों में उनकी गृहकारियां प्रारम्भ होती थी। झोपड़ियो के चारों ओर बास का जंगला होता था। गाय, भेड़ आदि रखने के स्थान भी बनाए जाते थे। प्रारम्भ में ये झोंपड़ियें गोलाकार होती थी। बाद में चोकोर बनती गई। कृषि का विशेष स्थान होने से कृषि सम्बन्धी कलाओं का विकास हुआ। खाती, लोहार, जुलाहों की कलाओं की महत्ता बढ़ने लगी। कृषि के साथ व्यापार बढ़ा। व्यापार ने नगरों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया। कालान्तर में आर्य सभ्यता गांवों से नगरों की ओर जाने लगी। बड़े-बड़े नगर बनने लगे। राज्य महलो का निर्माण होने लगा। अट्टालिकाएँ बनाई जाने लगी। चौड़ी सड़को का निर्माण हुआ। बाग-बगीचे बनने लगे। बौद्ध भिक्षु धम्मपाल के अनुसार ईसा के पाचवी सदी के पहले नगरों का निर्माण कार्य चरम सीमा तक पहुँच गया था। ये नगर लकड़ी के मकानो से विभूषित होते थे। नगर चोकोर थे। दो आर-पार सड़कों द्वारा चार भागो में विभाजित किए जाते थे। इन चारो भागो में चारो जातियो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के निवास स्थान होते थे। शासक का महल सब से ऊँचा होता था। राजगृह, विहार में प्राप्त अवशेषो के आधार पर ऐसे नगरों की कल्पना की जा सकती है। बाद में लकडी के प्रयोग के साथ साथ ईंटों का भी प्रयोग होने लगा परन्तु अट्टालिकाओं व मकानो की चबूतरियें पत्थर की बनती थी। उस पर लकड़ी का ढांचा बना कर अट्टालिका बनाई जाती थी।

प्राचीन भारत में मूर्तियों का निर्माण होता था या नहीं इसमें विद्वानो को सन्देह रहा है। मथुरा सग्रहालय में रखी हुई परखम मूर्ति शिशुनाग

वंश के अजातशत्रु (कुणिक) की बतलाते हैं। इसकी मृत्यु ६१८ ई० पू० हुई थी। एक यक्षी, नन्द और उदयन की भी मूर्तिएँ प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार की कला से एक विशेष प्रणाली का ज्ञान होता है जो प्राचीन भारत में प्रचलित थी। भारतीय कला उस समय धार्मिक नहीं थी। न वह कला अपने में ही पूर्ण थी। कला में न दर्शन और न भक्ति का भाव ही भरा गया था। इस प्रकार की कला में किसी प्रकार की सुन्दरता नहीं प्रतीत होती थी। चित्रकारी के क्षेत्र में समय पाकर कुछ प्रगति हुई। महलों में अट्टालिकाओं में, द्वार पर, जन व्यवसायों के स्थानों पर चित्रों की अभिव्यक्ति की जाने लगी। प्रकृति के तत्वों के साथ-साथ मनुष्य सम्बन्धी चित्र भी व्यक्त किये जाने लगे। बुद्ध कालीन युग में इसका प्रभाव इतना अधिक होने लगा था कि बौद्ध कथाओं के अनुसार, बुद्ध को इसकी अनुरुचि के विरुद्ध आदेश देने पड़े थे।

मौर्यकाल

ईसा की छठी शताब्दी पूर्व में दो महान धार्मिक क्रान्तिएँ हुई। इन क्रान्तियों ने भारतीय जीवन में सात्विक तत्व को पुनः सगठित करके प्रचार करना आरम्भ किया। हर क्षेत्र में धर्म का प्रभाव बढ़ने लगा। कला भी धर्म को व्यक्त करने लगी। चन्द्रगुप्त मौर्य (३२१–२९७ ई० पू०) के समय प्राचीन भारतीय कला विशेष रूप से विकसित हुई। इस काल मे राज्य की संरक्षता में भवन निर्माण कला का बहुत विकास हुआ। मेगस्थनीज के वर्णन से पाटलीपुत्र (आधुनिक पटना) के नगर का एक चित्र अंकित किया जा सकता है। वह नगर एक समानान्तर चतुर्भुज था, जो ९ मील लम्बा तथा डेढ मील चौड़ा था, जिसके चारों ओर लकड़ी की दीवार, खाई, बुर्ज और दरवाजे थे। नगर के भीतर लम्बी चौड़ी सड़कें थीं, जो एक दूसरे को काटती थी। सड़कों के पास ऊँची अट्टालिकाएँ, स्तम्भ, राजमहल, बाग बगीचे आदि बने हुए थे। यह नगर लकड़ी का

बना हुआ था। ईंट, पत्थर, चूने का प्रयोग भी कहीं-कहीं होता था । इसी युग में बनी सूर्य व इन्द्र की मूर्तिएं आज के प्राचीन बिहार के दालानों को सुशोभित कर रही हैं ।

मौर्य युग की कला का उत्कर्ष सम्राट अशोक (२७२-२३२ ई० पू०) के समय से आरम्भ होता है । अशोक के समय से ही बौद्ध धर्म आश्रित कला का बहुमुखी रूप दिखाई देता है । अशोक के पहले मे बौद्ध स्तूपों का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। आठ स्थानों पर ये स्तूप पाए गये हैं । अशोक की कलाकृतियें, बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार ८४,००० हैं । अशोक की संरक्षता में बौद्ध कला विकसित हुई । अतः बौद्ध कला में जो राजतन्त्र के तत्व विद्यमान थे वे अशोक के प्रभाव के कारण थे । अशोक की कृतियो को ६ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है; १-शिलालेख, २-स्तूप, ३-स्तम्भ, ४-चैत्य स्तम्भ, ५-महल व ६-गुफाएं । इनमें कला की दृष्टि से, ढांचे के महत्वता के कारण स्तूप, कलात्मक लक्षणो के कारण स्तम्भ, टेकनीक के दृष्टिकोण से गुफाएं और भवन निर्माण के दृष्टिकोण से महल प्रसिद्ध थे। बुद्ध की स्मृति को स्थायित्व देने के लिए स्तूपो का निर्माण शुरू हुआ । स्तम्भों के निर्माण में तो अशोक-युगीन कला पराकाष्ठा पर पहुच गई थी । एक ही स्थान से प्राप्त, एक ही पत्थर के बने ये स्तम्भ, आज भी अशोक-युगीन कला की विशेषताओ की ध्वजा फहरा रहे हैं । अशोक-कालीन महल की बनावट, स्तम्भो की सजावट और निर्माण को देख कर ५ वी सदी में चीनी यात्री फॉहियान चकित रह गया था लेकिन उन खन्डहरो को देख कर अब भी कौन आश्चर्य चकित नही रह जाता है ?

शुंग-आन्ध्र काल (१८५ ई० पू०-१५० ई०)

मौर्य युग में ईंटो व पत्थरों से आच्छादित वस्तुकला का निर्माण प्रारम्भ हुआ, जैसा कि सांची के बड़े स्तूप में बनी हुई एक ही पत्थर की

वेदिकाएं और बौद्ध गया के समीप लोमा ऋषि की गुफाओं में प्रतीत होता है। शुंग काल में (१८४–७२ ई०पू०) इस प्रकार की कला अधिक विकसित हुई। अशोक के समय राज्य व धर्मों का जो समन्वय हुआ वह उसकी मृत्यु के बाद समाप्त हो गया। शुंगकाल में सांची के स्तूप में सजावट और पत्थरों का प्रयोग अधिक हुआ। स्तूप के कठघरों (वेदिकाएं) व द्वार में परिवर्तन हुए। इसी काल में अमरावती के प्रारम्भिक शिल्प बने। भज, बेदसा, अजन्ता में चैत्य भवनों का निर्माण शुरू हुआ। उदयगिरि गुफाएं भी इसी काल की मानी जाती है। भरहुत का द्वार और अलंकृत वेदिकाएं भी धर्म प्रभावित होकर इसी काल में बनने शुरू हुए थे। भरहुत में जातक कथाओं को पाषाणों में चित्रित किया गया परन्तु साची में शुंग कला अधिक अलकृत बन पडी। आन्ध्रकाल में (२२० ई० पू०-१५० ई०) सांची के स्तूप के शानदार अलङ्कृत द्वार निर्मित हुए। इन द्वारो पर बुद्ध के जीवन सबन्धित घटनायें, यक्ष, पशु, पक्षी, साकेतिक चिन्ह व अलकरण बनाए गए। इस काल में बौद्ध कला राजकीय संरक्षता से हट कर जननिर्माण की कला बनने लगी। इसमें बौद्ध भिक्षुओ का प्रमुख हाथ रहा था। मूर्तिकला के क्षेत्र में जैनधर्म से प्रभावित इस समय चित्र कला का आभास हमें उन भित्तिचित्रो से मिलता है जो जोगीमारा की गुफाओं में अंकित है।

गन्धारकला–(सन २५० से ४५० ई०)

आन्ध्र युग मे ही बौद्धों ने विहारो[1] का निर्माण करना शुरू कर दिया था। बड़े-बड़े स्तूप[2] लकडी के बने चैत्य भवन[3] चट्टानो में से काटे हुए

[1] विहार—बौद्ध भिक्षुओं के रहवास के लिये आश्रम बनते थे जिनमें छात्रावास भी रहता था। यह विद्यालय से सटे हुए होते थे।

[2] स्तूप—प्रारम्भ में बुद्ध के पार्थिव अवशेषों पर स्थूल ईंटों के टीलों के रूप में बनते थे और फिर धार्मिक स्थलों पर, घटनाओं की स्मृति में यादगार के रूप में बनते गये।

[3] चैत्य—बौद्धों का प्रार्थना मन्दिर।

विहार बनने लगे। अब तक ये सब कृतिएँ बौद्धधर्म के हीनयान सम्प्रदाय से प्रभावित थी। जब कुशाण युग (सन् ७८—२२० ई०) में नागार्जुन के प्रयत्नो से बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय प्रारम्भ हुआ तो इसमें बुद्ध मूर्ति पूजा को अधिक महत्व दिया गया। इसका प्रभाव कला पर भी पड़ा। इसी समय एक नयी प्रकार की कला का समन्वय होरहा था जो कि कालान्तर में गन्धार शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई। गन्धार शैली, पश्चिम व पूर्व की शैलियो का मिश्रण थी। युनानी, पार्थियन, सीथियन और भारतीय शैलियां इसमें प्रमुख थी। इन सब क्षेत्रों में बुद्ध धर्म का प्रभाव था। यूनान की विचार युक्त कला का बौद्ध धर्म की सेवा में प्रयोग किया गया। बौद्ध सांकेतिक कला के स्थान पर यूनान की कला का मूर्त रूप काम में लाया जाने लगा। विहारों, चित्रों व मूर्तियों में यह शैली अपनाई गयी। गन्धार क्षेत्र में इस शैली का प्रादुर्भाव हुआ। अतः यह शैली गन्धार शैली कहलाई। स्थापत्य कला के क्षेत्र में इस शैली ने एक विशेप परिवर्तन किया। भवन निर्माण के उद्देश्य और तल पृष्ठ भाग, पूर्ण भारतीय रहे परन्तु बनाने के ढंग व ढाचे में यूनानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। भवनों के स्तम्भो, स्तूपों व मन्दिरों में यूनानी शीर्षभाग, तिकोने ध्वज, 'एन्टेबलेचर व मोडिलिअन' प्रकट होने लगे। शिल्प कला के क्षेत्र में गन्धार कला का प्रभाव भी स्पष्ट होने लगा। बुद्ध की मूर्ति में यूनानी देवताओं की झलक दिखाई देने लगी। मूर्तियों में आकर्षण पैदा किया गया और इसी से मूर्ति पूजा प्रारम्भ हुई। गन्धार कला में उन मठों को विशेप स्थान प्राप्त हुआ जिसमें स्तूप व संघाराम के कोष्ठ अलग-अलग बनाए जाते थे। तक्षशिला में इस प्रकार के कई अवशेप देखे जा सकते हैं।

इस कला के विकास क्षेत्र में मथुरा का कला केन्द्र बहुत महत्वपूर्ण था। कुशाण काल से ही मथुरा में भारतीय कला का केन्द्र बन गया था। बौद्ध व जैन मन्दिर के द्वार, व कठहरे पर अलकृत खुदाई उस युग में

आरम्भ हो चुकी थी। कनिष्क ने यहां स्तूप, चैत्य व विहारों का निर्माण करवाया था। उसी समय से मथुरा में गन्धार शैली का प्रभाव भी पड़ा। कालान्तर में मथुरा शुद्ध भारतीय कला का प्रतीक केन्द्र बन गई। मूर्ति कला के क्षेत्र में बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण इस स्थान पर से प्रारम्भ हुआ और दूर-दूर क्षेत्रों में लेजाकर मूर्ति स्थापित की जाने लगी। बुद्ध के भिन्न-भिन्न भावों को लेकर मूर्तियां गढ़ी जाती थी। क्षमा, अभय, दया, करुणा, आशीर्वाद आदि के भाव अंकित किए जाते थे। गुप्त युग के समय मथुरा का कला क्षेत्र विकास की पराकाष्ठा पर था। नाग सम्प्रदाय से सम्बन्धी मूर्तियां भी यहां पाई गई है। मथुरा शैली में निर्मित बुद्ध मूर्तियां सारनाथ में पाई गई है। बौद्ध धर्म के साथ ही जैन धर्म के स्तूप, मूर्तियें मथुरा केन्द्र में निर्मित हुई। जब ब्राह्मण धर्म का प्रभाव भारत में फैलने लगा तब भी मथुरा ब्राह्मण कला का केन्द्र भी बनी रही। यहाँ देवी देवताओं की मूर्तियों का निर्माण होने लगा। इसी काल में दक्षिण भारत में अमरावती कला का एक प्रमुख केन्द्र थी। वृहद चैत्यों का निर्माण इसी काल में प्रारम्भ हुआ। यों तो चैत्यों के निर्माण का प्रारम्भ २०० ई० पू० से हो गया था लेकिन इनका व्यापक रूप २५० ई० से शुरू हुआ था।

गुप्तयुग की कला (सन ३२० ई०–५५० ई०)

गुप्त युग कला का स्वर्ण युग कहलाता है। यह युग भारतीय जीवन का शान्तिकाल था। उस युग में साहित्य, धर्म, कला, संस्कृति और राजनैतिक शक्तियों में सामन्जस्य बना रहा। बौद्धिक, लौकिक और हार्दिक भावनाओं का मिश्रण इस युग की महान देन है। बौद्ध धर्म यद्यपि पतन की ओर अग्रसर हो रहा था तब भी वह एक प्रभावशाली धर्म था। इस युग में ब्राह्मणों का प्रभाव बढ़ने लगा। कला के क्षेत्र में भी परिवर्तन होने लगे। बौद्ध कला में उदासीनता आने लगी। ब्राह्मणों के मन्दिर व

देवी देवताओं की मूर्तियें बनने लगी। स्थापत्य कला, मूर्ति कला और चित्र कला में सिर्फ गूढ़ता ही नही आई बल्कि उनमें व्यापकता और स्थायित्व के तत्वो का प्रभाव भी बढ़ने लगा।

गुप्त स्थापत्य कला परम्परा की विशेषताओं को बनाए रखते हुए भी एक नए युग की प्रतीक थी। उस युग के स्तूप, चैत्यों व विहारों में नए विचार व भावनाए झलकती हैं। सारनाथ का धनेक स्तूप इस बात का प्रतीक है कि स्तूप निर्माण प्रणाली अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। अजन्ता की गुफाओं (नं० १६, १७, १६) मे पुराने तत्व होते हुए भी नए विचार स्पष्ट दिखाई देते हैं। भिन्न-भिन्न नमूनो के स्तम्भ, दीवारों व छतों पर चित्रित चित्र बहुत ही सुन्दर और कलापूर्ण बन पाये। ब्राह्मणों के मन्दिरों में भी परिवर्तन हुए। छोटे-छोटे परन्तु चौड़ी छत वाले मन्दिर जो कभी-कभी स्तम्भ भवनो से घिरे होते थे, गुप्त काल में निर्मित होने लगे हैं। साची का छोटा मन्दिर, देवगढ का दशावतार मन्दिर और भीटारगढ में ईंटों का मन्दिर गुप्त युगीन ब्राह्मण कला के द्योतक हैं। यद्यपि ये मन्दिर इतने सुन्दर तो नही हैं कि कला की दृष्टि से उच्च माने जा सकें परन्तु कालान्तर में मन्दिर निर्माण कला के ये प्रवर्तक रूप थे, इस हेतु अपना स्थान रखते है।

मूर्ति कला के क्षेत्र में गुप्त युग में बहुत उन्नति हुई। मथुरा इस कला का केन्द्र थी। गुप्त मूर्तिकला शुद्ध भारतीय ही नही बल्कि प्रत्येक रूप में सर्वांग पूर्ण थी। सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा, देवगढ़ मन्दिर में शिव, विष्णु व अन्य देवताओ की प्रतिमाएँ बहुत प्रभावशाली हैं। ये प्रतिमाएँ सिर्फ सुन्दर ही नहीं है बल्कि सात्विक व धार्मिक व्यजनो की अभिव्यक्ति भी करती हैं। मनुष्य और देवता, दोनों ही शिल्पियों के मुख्य विषय थे। गुप्त कलाकार धातुओं की बनी वस्तुओं को भी कला से सवारते थे। दिल्ली का लोह स्तम्भ, नालन्दा में बुद्ध की ताम्बे की मूर्ति और सुल्तानगज में प्राप्त साड़े सात फीट ऊँची बुद्ध प्रतिमा धातु कला के सुन्दर नमूने हैं।

इस काल में चित्रकला की उन्नति अभूतपूर्व हुई। जोगीमारा की गुफाओं (ई० पू० १००) में चित्रकारी के मुख्य अंश प्राप्त हुए हैं। सिंदेगा (३०० ई०) में भी भारतीय चित्रकारी की सूक्ष्म रेखायें अंकित मिलती है परन्तु गुप्त युग में चित्रकारी का जो व्यापक रूप प्रारम्भ हुआ वह कला के विकास में अपना विशेष स्थान रखता है। अजन्ता की गुफाएं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अजन्ता का निर्माणकाल ई० के १०० पूर्व प्रारम्भ होकर सन ७०० ई० तक चलता रहा है। परन्तु इसका मुख्य निर्माण ४०० ई० से ६४० ई० तक रहा। वाकाटका व चालुक्य शासकों की संरक्षता में अजन्ता की गुफाओं में चित्रकारी अधिक हुई। अजन्ता में पहले मिट्टी, गोबर से चट्टान को ढक दिया जाता था फिर चूने से पलस्तर किया जाता था। अर्द्ध गीली अवस्था में ही चित्रों का अंकन किया जाता था। रेखान्कित चित्र बनाने के बाद रंग भरे जाते थे। अधिकतर सफेद, भूरा, लाल, व नीला रंग काम में लाया जाता था। चित्रों के विषय भिन्न-भिन्न होते थे। जातक कथाओं की घटनाएं पशु व पक्षी, फूल पत्ते आदि चित्रित किये जाते थे। अजन्ता की चित्रकारी शुद्ध भारतीय कला की चरम सीमा थी। चित्रों को बड़ी चतुराई से पूर्ण करने का प्रयास किया जाता था। छोटे से छोटे अंश को भी चित्रित कर उसे वास्तविक रूप देने का प्रयत्न किया जाता था। भारतीय चित्रकला का इस समय का दूसरा क्षेत्र बाघ (ग्वालियर के पास) की गुफाएं हैं जिसमें अजन्ता की भांति ही चित्रण मिलता है।

उत्तर गुप्त युग (५५०–९५० ई०)

गुप्त युग के बाद और मुसलमानों के आक्रमणों के पहले भारतीय स्थापत्य कला के क्षेत्र में बहुत विकास हुआ। धर्म प्रभावित कला पुनः जागृत हुई। गुप्तकाल में गुफाओं के निर्माण में व्यापकता आई तो इस युग में गुफाओं का स्थान भवन सदृश गृहों ने ले लिया। ऐलोरा की गुफाओं

में बौद्ध, ब्राह्मण, व जैन शैलियों का प्रभाव बना रहा। प्रारम्भ में बौद्ध गुफाओं का निर्माण हुआ। बुद्ध प्रतिमा, चैत्य व विहारों का समागम बना रहा। स्तम्भ भवनों की भरमार बनी रही। ब्राह्मण धर्म से प्रभावित एलोरा का केलाश मन्दिर तो कला का अद्वितीय नमूना है। एक ही चट्टान से काटा हुआ यह मन्दिर (१६० फुट × २८० फुट) एक ही पत्थर से बना मन्दिर ध्वज स्तम्भ उस युग के कलाकारों की भावनाओं का द्योतक है। ऐलीफेन्टा और सालसीट टापुओं की गुफाओं में भी एलोरा की परम्परा बनी। एलोरा की गुफाओं के निर्माण का अन्तिम चरण जैन विचारों से प्रभावित था। इन्द्र सभा व जगन्नाथ सभा की गुफाएँ अत्यन्त कला पूर्ण बनी हैं पर उनमें ब्राह्मण कला का प्रभाव बना रहा। इसके बाद तो गुफा मन्दिरों का स्थान भवन सदृश मन्दिरों ने ले लिया।

सुघड़ पत्थरों के बने मन्दिर की परम्परा दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से हुई। दक्षिण व उत्तरी भारत में इस प्रकार के मन्दिर बनने लगे। उत्तरी भारत के मंदिर एक ठोस मीनार की तरह प्रतीत होते हैं जिनके बीच में आमलक होते थे। भुवनेश्वर (उडीसा) में इस प्रकार के मन्दिरों का श्रीगणेश हुआ दिखाई पड़ता है। भुवनेश्वर में मुक्तेश्वर, राजरानी व लिंगराज, जिसका शिखर १६० फीट ऊँचा है, मन्दिर प्रसिद्ध हैं। पुरी का जगन्नाथ मन्दिर इस शैली का है। ऐसे मन्दिरों की दो शैलियाँ हैं। एक तो ऐसा गृह, जिस पर शिखर और गृह के ऊपर मन्डप होता है। काश्मीर से उडीसा तक उत्तरी भारत में इस शैली के मन्दिर पाये जाते हैं। चन्देलों की राजधानी खजुराहो में ऐसे मन्दिरों का समूह है। कालान्तर में गुजरात व राजपूताने में इस शैली में थोड़ा परिवर्तन हुआ। संगमरमर के पत्थरों का प्रयोग, स्तम्भों को अलंकृत करने की प्रणाली और छतों को कला पूर्ण बनाने का ढंग अपनाया गया। आबू के मन्दिर भी इस परिवर्तित शैली के द्योतक हैं। दूसरी शैली के मन्दिर दक्षिण भारत में पाए गए हैं जिनके ऊपरी भाग पिरामिड की तरह बनते गए।

उत्तर गुप्त युग में मूर्तिकला का पतन होता गया। यह कला इतनी अधिक धार्मिक बन गई थी कि कलाकार धार्मिक पुस्तकों में वर्णित देवी देवताओं के अवतार अंकित करने लगा। अतः मूर्तियों का आकर्षण समाप्त होने लगा था। परन्तु बंगाल के पाल शासकों की संरक्षता में ऐसी मूर्तियों का निर्माण कुछ कला पूर्ण बन सका था। एलोरा व एलीफेन्टा की गुफाओं में निर्मित मूर्तिया भी इस युग की बहुत सुन्दर मूर्तिया थी।

अजन्ता व बाघ की चित्रकारी इस युग के प्रारम्भ मे बनी रही। एलोरा के कैलाश मन्दिर की छत इस प्रकार की शैली में अंकित चित्रो से भरी है। एलोरा की इन्द्र सभा, लोकेश्वर व गणेश लीला गुफाओ मे भी चित्रकारी हुई है परन्तु इनमें अजन्ता की शैली की सुघड परम्परा निभ नहीं पाई। इसके कुछ ही अवशेष अब बच गये थे। पाल युग में भी कुछ महत्वपूर्ण चित्रकारी हुई परन्तु वह अजन्ता की समानता नही कर सकती।

दक्षिण भारत की कला (६०० ई० से १००० ई०)

आंध्र काल के समय दक्षिण भारत में बौद्ध कला बहुत विकसित हुई परन्तु आन्ध्रो के बाद पल्लवो ने कला क्षेत्र मे विशेष ध्यान दिया। पल्लव शासकों की संरक्षता मे द्रविड शैली का जन्म हुआ। पल्लवो का काल ६०० ई० से ९०० ई० था। इस शैली के कला केन्द्र तन्जोर व पुदुकोटाई रहा। प्रारम्भ में द्रविड कला की चट्टान स्थापत्य कला बहुत प्रभावशाली रही। इसमें दो प्रकार की मूर्तियाँ होती थी, मन्डप व रथ शैली। मन्डप खोद कर बनाया जाता था और रथ एक ही पत्थर को काट कर बनाया जाता था। मन्डप एक खुला खेमा होता था जो कि चट्टान से काटा जाता था, और स्तम्भ भवनों से सुसज्जित होता था जिसमें पीछे की दीवार के पास एक कोष्ठ बना रहता था। महेन्द्र वर्मन पल्लव के समय से (६१० ई०

६४० ई०) यह कला दक्षिण भारत में अधिक व्यक्त होने लगी। मन्डप और रथ शैली का केन्द्र ममलपुरम् था। ७ वीं सदी के बाद भवन सदृश मन्दिर बनने लगे। दक्षिण भारत के मन्दिर के शिखर पिरामिड की तरह होते हैं और उनमें कई मंजिलें होती हैं। इन शिखरों की मंजिलों को मूर्तियों से अलंकृत किया जाता है। ममलपुरम् का धर्मराज रथ मन्दिर और माची का कैलाशनाथ वैकुन्ठ पल्लव शासकों की देन है। धर्मराज रथ के साथ एक ही कतार में बने सात रथों का समूह है जो एक ही चट्टान से काटा गया है।

पल्लवों के बाद चोल शासकों ने मन्दिर निर्माण की संरक्षता की। तन्जोर व गन्गोई कोन्ड चोलापुरम् के मन्दिर चोल कला के नमूने हैं। तन्जोर का शिव मन्दिर भारत के मन्दिरों में सबसे बड़ा मन्दिर है। १८० फीट लम्बा, ८० फीट आधार पर खड़ा जिसके ऊपर १३ मंजिलों का १६० फीट ऊँचा शिखर है। यह मन्दिर वाह्य रूप में मूर्तियों से सुशोभित और आन्तरिक कोष्ठों में चित्रकारी से सुसज्जित कला का अनुपम भण्डार है। चोल शासकों की संरक्षता में बनी नटराज की कांसे की प्रसिद्ध मूर्ति (ताण्डव नृत्य में तल्लीन नटराज) की कला की प्रशंसा आज तक की जा रही है। पल्लव शासक महेन्द्र वर्मन के समय पुदुकोटाई के शीतला वसन मन्दिर चित्रकारी कला की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। चोल शासकों का चित्रकला के प्रति अनुराग तजोर के शिव मन्दिर के आन्तरिक भाग से स्पष्ट मालूम होता है। उस कला की सुन्दरता और रंगो व रेखाओं की बारीकियां अजन्ता की चित्रकारी की परम्परा की याद पुनः ताजा कर देती हैं।

दक्षिण भारत की कला में १००० ई० के बाद एक नया परिवर्तन आने लगा जिसके विकास में एक नई शैली स्पष्ट होने लगी। उत्तरी भारत में भी मुसलमानो के आक्रमण के कारण भारतीय कला के विकास में मोड आया। अतः मध्यकाल में दक्षिण व उत्तर भारत की कला मे प्राचीन

भारत की कलात्मक विशेषताओं का समावेश होने में कई कठिनाइयां पैदा होने लगी। वस्तुतः प्राचीन परम्पराओं को जीवित रखने के लिए नए परिवर्तनो के साथ मेल करना पड़ा। फिर भी कई सदियो तक प्रत्यक्ष रूप से प्राचीन शैली व विषय कलाकारो को प्रभावित करते रहे।

□ □

—२—

सिन्धु घाटी की सभ्यता

१६२२ ई० के पहले तक इतिहासकारो और इतिहास विशेषज्ञो को सिन्धु घाटी की सभ्यता के बारे में कुछ भी ज्ञान नही था । वे आर्यों व भारत की आदि जातियों के बारे में ही विविध ज्ञान प्राप्त कर अपनी विलक्षण बुद्धि के द्वारा उस समय कि इतिहास की रूप रेखा बनाने मे संलग्न थे । १६२१ ई० में दक्षिण पंजाब में हडप्पा नामक स्थान पर रायबहादुर दयाराम साहनी ने, और सन् १६२२ में श्री राखालदास बनर्जी ने सिन्ध प्रान्त के लाड॰ काना जिला में "मोहेनजोदडो" नामक स्थान का पता लगाया । इससे सन् १६२६ ई० में सर जान मार्शल के प्रयत्नो से सिन्धु घाटी के कक्ष में एक नई सभ्यता का दिग्दर्शन हुआ । यह सभ्यता भारत के इतिहास को ३००० ई० पूर्व तक ले जाती है । इस सभ्यता द्वारा संरक्षित एक नई प्रकार की कला का उदय हुआ जिसके बारे में अभी तक कई विद्वान् एक मत नही हो सके हैं परन्तु यह कला अपनी विशेषताओ से ओत प्रोत है ।

स्थान व काल

प्रारम्भ में तो विद्वानो का यह मत रहा था कि सिन्धु घाटी की सभ्यता का किन्ही अन्य सभ्यताओ से कोई सम्बन्ध नही है । परन्तु ज्यों ज्यों खुदाई का कार्य आगे बढता गया, इस सभ्यता के बारे में विविध रूप

मे ज्ञान होने लगा और इस निष्कर्ष पर पहुँचाया कि सिन्धु प्रदेश की सम्यता का सम्पर्क सुमेरियन, मेसोपोटिमिया व मिश्र की सम्यताओं से था। सिन्धु घाटी की सम्यता का क्षेत्र सीमित नही था। पंजाब (पाकिस्तान) के मोटगुमरी जिले में स्थित हड़प्पा से दक्षिण की ओर बढ़ते हुए, सिन्धु नदी के किनारे, सिन्ध के लाड़काना जिले तक चले जाने पर इस सम्यता के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। यह भाग आजकल पाकिस्तान में है और सिंध व पंजाब क्षेत्रो में बँटा हुआ है। इस क्षेत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि सिन्धु युग की सम्यता पश्चिमी भारत में फैली हुई थी परन्तु हाल ही में नर्मदा नदी की घाटी में व आन्ध्र राज्य के तेलगाना हिस्से में इसी प्रकार की सम्यता के अवशेष मिले हैं। भारत सरकार द्वारा किए गए खुदाई के प्रयत्नो से देश के भिन्न भिन्न भागों मे भी इस प्रकार की सम्यता के चिह्न मिले हैं। अतः धीरे धीरे यह स्पष्ट होता जा रहा है कि सिन्धु घाटी की सम्यता का क्षेत्र सिर्फ सिन्धु नदी का किनारा ही नही था बल्कि यह सम्यता सम्पूर्ण भारत में फैली हुई थी। जब तक उस सम्यता के क्षेत्रों की व्यापकता के बारे में तथ्यपूर्ण अवशेष प्राप्त नही हो जाते तब तक मोहेनजोदड़ो व हड़प्पा के सम्यता-क्षेत्रों को ही सिन्धु घाटी की सम्यताओं के प्रतिरूप मानना पड़ेगा। खुदाई के कारण मोहेनजोदडो मे अट्टालिकाओ के सात परत निकले हैं जिन्हें तीन युगो में विभाजित किया जा सकता है, प्राचीन, मध्य और अन्त के युग की सम्यता। प्राचीन युग के अवशेष तो पानी की सतह तक मिले हैं। जो सम्यता सिन्धु घाटी की सम्यता के नाम से प्रसिद्ध हुई है वह सम्यता मोहेनजोदडो व हड़प्पा में थी और तीसरे युग की थी। परन्तु अमरी की प्रथम व झूकार, भांभर में प्राप्त सम्यता मध्य युग की मानी जाती है। मोहेनजोदड़ो सात बार बना और बसा था। सिन्धु नदी की बाढ़ के कारण यह नगर नष्ट हो गया। इतिहासकार नगर के बसने व नष्ट होने में ५०० वर्ष के अन्तर का समय बतलाते हैं। मोहेनजोदडो के सम्यता की तिथि के बारे में कई विचारात्मक विवाद हैं। ईसा के २७५० वर्ष पहले यह सम्यता अपने अन्तिम युग में

बस रही होगी। यदि इस पर विश्वास कर लिया जाय तो "स्नान नगर सम्यता" का युग उससे पांचसौ वर्ष पहले रहा होगा, ३२५० वर्ष ई० पूर्व। मोहेनजोदड़ो में बनी हुई कुछ मुद्राएं एशिया के भिन्न-भिन्न स्थानो पर पाई गई हैं। एस्युना में प्राप्त मुद्रा से मोहेनजोदड़ो का युग २६००-२५०० ई० पू० का माना जा सकता है। उर के एक मकबरे की खुदाई से निकली इस सम्यता की मुद्रा २१५० ई० पू० वर्ष की बतलाई जाती है। डाक्टर फ्रेन्कफर्ट ने 'तेल अग्रब' में प्राप्त सांड अंकित मुद्रा से सिन्धु घाटी का युग २८०० ई० पू० का बतलाया है। डाक्टर भिडे भी इसी युग को (२८०० ई० पू०) सिन्धु घाटी का युग मानते हैं। मोहेनजोदड़ो के अवशेषों से प्राप्त एक बड़ी सुराही पर बेबीलोनिया व सुमेरिया के अभिलेख से डाक्टर फबरी का कहना है कि मोहेनजोदड़ो की सम्यता का काल २८००–२५०० ई० पू० था। सुमेरियन, मिश्र व अक्कड़ सम्यताओं की समान तुलना मोहेनजोदड़ो के अवशेषों से की जाय तो उनमें कई बातें एक सी लगेंगी। इससे स्पष्ट होता है कि ये सब सम्यताएं एक ही युग की थी जिसका काल २५०० ई० पू० के आस-पास का माना जाता है। इसी आधार पर इस युग के प्रथम चरण की सम्यता जो कि अमरी में प्राप्त हुई है उसका युग ३००० ई० पू० माना जा सकता है। डाक्टर मेमे का कहना है कि इस सम्यता का सब से ऊपरी परत का युग, जैसे कि कन्होदड़ो में प्राप्त हुआ है, २३००–२२०० ई० पू० का है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिंधु घाटी की प्रारम्भिक सम्यता 'अमरी' की व अंत की सम्यता 'कन्होदड़ो' की रही। यह युग ३०००–२२०० ई० पू० का युग था। अतः सिंधु घाटी की सम्यता का युग ३००० से २२०० ई० पू० का युग माना जा सकता है।

निवासी

सिन्धु घाटी की सम्यता के निवासियों के बारे में कोई विचार निश्चित नहीं हैं। संस्कृत का अधिक अध्ययन न करने के कारण फिरंगी-जन तो

यह हठ पकड़े हैं कि आर्य्य भारत में बाहर से आये परन्तु पौराणिक प्रमाणों के आधारों पर आर्यों का मूल स्थान यह भारत (हिमालय) ही है और यही से वे अन्यत्र गये हैं। कुछ विदेशी इतिहासकार इस सभ्यता को आर्यों की सभ्यता के पूर्व की सभ्यता बतलाते हैं। कुछ आर्य युग के बाद की सभ्यता कहते हैं। कई विद्वानों का विश्वास है कि यह सभ्यता द्रविड हैं क्योंकि उनके मतानुसार आर्यों के पहले भारत में द्रविड रहा करते थे। वे भी बाहर से भारत में आए और उत्तर पश्चिम प्रदेश में बस गए। उन्हीं की विकसित सभ्यता यह सिन्धु घाटी की सभ्यता है। जब आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया तो द्रविड दक्षिण भारत में चले गये। वहां पर उन्होंने इसी सभ्यता को विकसित किया जिनके अवशेष अब प्राप्त हो रहे हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता, सुमेरियन सभ्यता के समकालीन थी और सुमेरियानिवासी द्रविड थे। अतः इन द्रविडों और मोहेनजोदड़ो के निवासियों में अवश्य सम्बन्ध रहा होगा। बलुचिस्तान की 'ब्रहुम' भाषा द्रविड भाषा मानी जाती है। द्रविडो की तरह सिन्धु घाटी के लोग अपने मृतकों को गाड़ते थे। परन्तु कई विद्वान इन आधारों पर इसे द्रविड सभ्यता स्वीकार नहीं करते क्योंकि सुमेरिया के द्रविड स्वयं मिश्रित जाति के थे। सर जान मार्शल के विचारों में यह सभ्यता पूर्व आर्य काल की है। इस सदी में जो नई खुदाई अगरेज पुरातत्वज्ञ सर विहलर ने की और अपना निर्णय स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया कि वेदों में जो युद्धों का वर्णन है, उनका क्षेत्र यह सिन्धु कांठा ही रहा है। मोहेनजोदडो की शिव-भक्ति के उपचार आर्यों ने लिए या वेदों का रुद्र इस सभ्यता में लिंग बना, विवादग्रस्त है, पर इतना तो निश्चित है कि जहाँ आर्य घोडे को अधिक महत्व देते थे, वहाँ मोहेनजोदड़ो में घोड़े का कोई अस्तित्व नहीं था। डाक्टर मजूमदार के विचारों में यह सभ्यता आर्य सभ्यता की फलस्वरूप नहीं तो कम से कम प्रारम्भिक समय की समकालीन थी। आर्यों के ऋगवेद के बारे में निश्चित तिथि नहीं आंकी जा सकती, क्योंकि प्रारम्भ में आर्य वेदों को कंठस्थ याद करते थे, लिखे तो बाद में गए हैं और सब मंत्र एक

ही लगातार काल मे न बने हों ? शिव का स्वरूप आर्यों का है। डाक्टर मेके का कहना है कि सिंधु घाटी की मुद्राओं में कुछ मुद्राएं ऐसी प्राप्त हुई हैं जिन पर घोड़ों के चिह्न हैं। कहीं-कहीं स्थानों पर घोड़े की काठिएं मिली हैं और कला के क्षेत्र में घोड़ों के चित्र इस बात के द्योतक हैं कि सिन्धु घाटी के लोग घोड़ों का प्रयोग जानते थे। आर्यों में जादू-टोना, भूत-पूजा आदि के भाव अनार्यों के सम्पर्क में आने के कारण आए, अतः मोहेनजोदड़ो की सभ्यता में आर्यों का महत्वपूर्ण भाग तो अवश्य रहा होगा। मोहेनजोदड़ो की खुदाई किये जाने पर कुछ मनुष्य की हड्डियाँ, शरीर का ढांचा व धड़ व सिर मिले हे। उनसे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के लोग न आर्य थे, न द्रविड और न कोई वे विशेष जाति के ही थे। वह तो सब जातियों की मिश्रित जाति कही जा सकती है जिसमें भूमध्य सागरीय जातियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा। डाक्टर मजूमदार का कहना है कि इस सभ्यता के निवासी द्रविड़, ग्रहुस, सुमेर, पणी, असुर, वृत्य, बहिक, दास, नाग व आर्य थे। इनमें आर्यों ने अपना महत्वपूर्ण स्थान रखा और सिन्धु घाटी की सभ्यता के विकास में बहुत सहयोग दिया। हड्डियों के अवशेषों से आर्यों की सिन्धु घाटी के समय की प्राचीनता स्पष्ट रूप से प्रगट होती है।

कला

सिन्धु घाटी में कला का जो प्रदर्शन होना चाहिये था वह पूर्ण रूप से प्राप्त नही हो सका है। नगर निर्माण में कोई स्थान ऐसा प्राप्त नहीं हुआ जिससे कि कला की सुन्दरता, सजावट और अलकृत रूप की झलक मिल सके। चित्रों में भी यह अभाव रहा है। धातु के बने गहनों में, मुद्राओं में और मिट्टी के बर्तनों पर अंकित रंगबिरंगे चित्रों में हम उस समय की कला का कम से कम आभास प्राप्त करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि सिन्धु घाटी के,निवासी सादगी और स्पष्ट जीवन पसन्द करते थे।

उनकी कला स्पष्ट और उपयोगिता लिए हुई थी। उसे ठोस कहा जा सकता है परन्तु सुन्दर नहीं। यह सभ्यता सुमेरियन सभ्यता के समकालीन अवश्य थी परन्तु सुमेरियों की कला का प्रभाव इस पर नहीं पड़ा क्योंकि सुमेरियनों के मन्दिरों व नील नदी की घाटी के मकबरों की तरह सुन्दर व अलंकृत न तो कोई अट्टालिका, न मंदिर और न मकबरे ही प्राप्त हुए हैं। अतः सिंधु घाटी के निवासियों का उद्देश्य जीवन को आराममय बनाना रहा होगा न कि कलात्मक रूप से सुंदर बनाना। इस दृष्टिकोण से सिंधु घाटी की कला सादगीपूर्ण थी। इस कला को चार अंगों में विभाजित कर सकते हैं—(१) नगर निर्माण कला, (२) मूर्तिकला, (३) धातुकला मुद्राएँ, गहने आदि (४) चित्रकारी।

नगर निर्माण कला

मोहेनजोदड़ो का अर्थ होता है 'मृतकों का टीला' या 'मरे हुए व्यक्तियों का टीला' या 'मोहन का टीला' परन्तु यह मृतकों का खंडहर जब खुलने लगा तो एक ऐसी कला का उदय हुआ जिसको देख कर खोदने वाले व इतिहासकार दंग रह गये। एक नगर प्रकट हुआ जिसमें थी आधुनिक प्रकार की चौड़ी सड़कें व ईंटों के बने गृह। इस नगर का आधुनिक रूप आज से पाँच हजार वर्ष पहले बना था। अंग्रेजी इतिहासकारों ने इसकी लंकाशायर नगर से तुलना की है। सड़कों के मिलन को 'आक्सफोर्ड सरकस' समझा गया। नगर निर्माण की योजना सुव्यवस्थित ढंग से की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि निर्माताओं ने पहले सम्पूर्ण नगर का विभाजन किया। फिर सड़कों का निर्माण हुआ। लम्बी और एक दूसरे के समानान्तर सड़कों के दोनों ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएं बनाई गई थी। सड़कें लम्बी होती थीं जो कभी-कभी तो आधे मील तक चली जाती थीं। उनकी चौड़ाई ६ फीट से ३४ फीट तक की पाई गई है। दूसरी ओर की सड़कें आकर बड़ी सड़क के साथ समकोण बनाती हुई मुड़ी प्राप्त हुई। इनसे

मालूम होता है कि शहर इस प्रकार समकोण चतुर्भुज में विभक्त था। चौराहों पर सड़कें चौड़ी हो जाती थीं। छोटी-छोटी गलियां भी समकोण की तरह और बड़ी सड़कों से जुड़ती थीं। नगर की अट्टालिकाएँ सड़कों पर नहीं झुकने दी जाती थी। नगर में सड़कों के दोनों ओर पानी बहने के नाले थे। जैसी सड़कें जाती वैसी ही नालिए सीधी, दायें बायें होकर शहर के गन्दे पानी को दूर ले जाती हुई बनाई जाती थीं। अतः नागरिक स्वास्थ्य का ध्यान इस कला का प्रधान ध्येय रहा होगा। हर गली व छोटी सड़क के पास कुएं होते थे। हड़प्पा में इतने कुए प्राप्त नहीं हुए हैं। चौराहों के पास स्नानागार होते थे। बड़ा स्नानागार नगर के केन्द्र के चौराहे पर स्थित था। मजदूरों के मकान, व्यापारियों की दुकानें, मध्यवर्ग के निवासियों के गृह, ऊँची अट्टालिकाएँ अब भी अवशेषों के भीतर दिखाई दे जाती हैं। इससे मालूम होता है कि नगर-निर्माण करते समय कलाकारों, इन्जीनियरों ने निवासियों के व्यवसाय व सामाजिक स्तर का बहुत ध्यान रखा होगा। नगर निर्माण से ऐसा प्रतीत होता है कि यह सभ्यता एक व्यापारिक जनतांत्रिक सभ्यता रही होगी।

सड़कें व स्नानागार ईंटों के बने पाए गए हैं। मकानों में ईंटें काम में लाई जाती थी अत. उस काल में ईंटों का व्यवसाय विस्तृत ही नहीं होगा बल्कि ईंटों को विभिन्न रूप में बनाने की कला भी विकसित हुई होगी। आधुनिक युग की तरह पकी हुई ईंटों के मकान उस समय बनते थे। मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा की उपजाऊ व चिकनी मिट्टी से ही ये ईंटें बनाई जाती थी। आमतौर पर ईंटें चौकोर बनाई जाती थी। कुँओं में स्फाना-कार ईंटों का प्रयोग किया जाता था। कुन्हदड़ों में ऐसी ईंटें कुँओं की पालों पर भी लगी हुई मिली हैं। मोहेनजोदड़ो में स्थान-स्थान पर ईंटों के पकाने की भट्टियाँ मिली हैं जो आधुनिक भट्टियों की तरह प्रतीत होती हैं। मकानों की नीवों को दृढ़ बनाने के लिए उबड़-खाबड़ ईंटों का प्रयोग किया जाता था। ईंटों के जोड़ने का ढंग अत्यन्त सुन्दर था। बहुत बारीकी

से ये गाड़ी जाती थी। इनके जोड़ में से चाकू की धार नहीं निकल सकती थी। पानी का असर न हो इसलिये कभी-कभी जतुकी (राल) काम में लिया जाता था। इन ईंटों का रंग पीला तथा चमकीला होता था। सड़कों पर काम में लाई जाने वाली ईंटें बहुत कड़ी और मजबूत होती थी। ईंटों के बनाए हुए रोशनदान सड़कों के दोनों ओर होते थे।

ईंटों की बनी अट्टालिकाओं में कला की अभिव्यक्ति स्पष्ट नहीं होती है। सड़कों व गलियों के दोनों ओर बने भवन बहुत सुन्दर लगते थे। ये मकान ऊँची चौंतरियों पर बनते थे क्योंकि नदी के बाढ़ का पानी शहर में आ जाता था। ये चौंतरिया गारा और चूने की बनी होती थी। चूना व जिप्सम दीवारों को पक्का व मजबूत बनाने के लिए काम में लाये जाते थे। सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेषों में तीन तरह की अट्टालिकायें पाई गई हैं—(१) रहने के लिए स्थान, (२) बड़ी बड़ी अट्टालिकायें, (३) जन-स्नानागार। गृहों में भिन्नताएँ हैं। जो गृह छोटे हैं उनमें दो कमरे होते थे। बड़े गृहों में कई कमरे होते थे। गृह के भीतर व बाहरी दीवारों पर कोई अलंकृत चित्रकारी नहीं होती थी। वे पूर्ण सादे होते थे। आमतौर पर सड़क पर मुख्य द्वार होता था। कई घरों में कुएँ होते थे। प्रत्येक घर में स्नानागार होता था। घर के भीतर एक चौक रहता था जो चोकोर रहता था और ईंटों की फर्श का बना हुआ होता था। चौक के एक कोने में रसोई गृह होता था। ऊपरी मंजिल पर भी स्नानागार होते थे। सुव्यवस्थित नालियों द्वारा सारे घर का पानी सड़क पर की नालियों में गिरता था। ऐसा मालूम होता है कि सिंधु घाटी के निवासी टट्टियों को मकानों में नहीं रखते थे। परन्तु बहुत से मकानों की छत पर से नीचे पानी और कूड़ाकरकट डालने के लिए मिट्टी के गोल पाइप होते थे। अतः संभव है टट्टियें छत के ऊपर हों। और ये गोल पाईप उसी काम में लिये जाते हों। मकानों के द्वार लकड़ी के बने हुए होते थे। द्वार पर कोई पच्चीकारी या कारीगरी नहीं होती थी। कमरों में साफ हवा आने के लिए

झरोखे व खिडकियाँ होती थी। ऊपर की छत पर जाने के लिए सीढिऐं होती थी। छतें चौड़ी, और लकड़ी की वनी होती थी। बड़ी बड़ी अट्टालिकायें कुछ तो मंदिरों के रूपों में विकसित हुई और कुछ शिक्षा केन्द्रों के रूप में। स्तूप के पास वाली अट्टालिकाएं जिन्हे 'कालेज अट्टालिका' कहकर पुकारा जाता है संभव है, बड़े कर्मचारियों या धर्माचार्यों का स्थान रहा हो। स्तम्भों पर स्थित भवन जो कि ८० वर्ग फीट का है, जन-सभा का भवन रहा होगा। इस भवन में लंबे-लंबे वरामदे है जिनमें एक-सी छोटी-छोटी बेन्चे हैं। वरामदों के बीच में मुख्य स्थान वना है जहां संभव है अधिपति वैठता है। हड़प्पा में खलिहान की शाला भी गृह कला का सुन्दर नमूना है। यह शाला '१६६×१३५' पाई गई है।

महान स्नानागार आधुनिक तैरने के कुण्ड के समान बना हुआ दिखाई देता है। उसका बाह्य क्षेत्र १०८ फीट लम्वा और ८० फीट चौड़ा है। पानी का कुड बहुत नीचाई पर हैं। आधुनिक वावडियों की तरह नीचे जाने के लिए सीढियाँ हैं। पाँच छः सीढियाँ के वाद एक छोटा सा चौड़ा प्लेटफार्म वना हुआ है। फिर सीढ़ियो की कतार शुरू होती है। पानी का कुण्ड ईंटो से वना है। इसकी लम्बाई ३६ फीट व चौड़ाई २३ फीट है और गहराई ८ फीट है। इसके चारों ओर वरन्डे वने हुए हैं। इसकी दीवारों को चूने, जिप्सम आदि के गारे से मजवूत वनाया गया है। पानी वाहर निकालने या प्राप्त करने के लिए एक नाली है जो ६ फीट ६ इंच ऊची दीवार पर वनाई गई है। वरन्डो के पीछे कमरे व गेलेरियां वनी हुई हैं। स्नानागार में जाने के लिए ६ द्वार हैं। स्नानागार के दक्षिण-पश्चिम की ओर एक गरम पानी का स्नानागार है। ५ फीट ऊचा समतल ईंटों का बना हुआ एक प्लेटफार्म भी है जहाँ सम्भवतः जनता स्नान करती थी। एक अन्य स्थान पर दो कतारें छोटे छोटे स्नानागारों की हैं। प्रत्येक स्नानागार में एक छोटा द्वार होता था और ईंटों की बनी हुई फर्श होती थी। ये स्नानागार धर्माचार्यों के लिए होते थे और बड़ा स्नानागार

जनता के काम में आता था। शहर में सड़कों के बीच नालियाँ होती थी जो पत्थरों या ईंटों से ढक दी जाती थी। स्थान-स्थान पर सफाई के द्वार भी होते थे। समय-समय पर इनकी सफाई होती थी। आम तौर पर सब मकान ईंटों के बने होते थे परन्तु सिन्धु नदी और किरथार पर्वत के बीच *पहाड़ी भागों में ईंटों का प्रयोग नहीं होता था। वहाँ मकान पत्थर के* बनते थे परन्तु सिर्फ आधार तक ही पत्थर काम में लाया जाता था। मिट्टी, लकड़ी व घास फूस द्वारा ढांचा तैयार होता था। हड़प्पा व मोहेनजोदड़ो में कोई किले नही प्राप्त हुए हैं। सिर्फ अलीमुराद व कोहत्रास में पत्थर के बने सुरक्षित भवन प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार सिन्धु घाटी की नगर निर्माण की कला नागरिक आदर्शों से ओत प्रोत थी। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि उस समय के नागरिकों की सभ्यता काफी प्रगतिशील रही होगी।

मूर्तिकला

सिन्धु घाटी की सभ्यता में मूर्ति-निर्माण की कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं। खुदाई से अधिक मूर्तियाँ तो प्राप्त नही हुई हैं परन्तु जो कुछ भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे भिन्न-भिन्न धातुओं की बनी मालूम होती हैं। पत्थर से लेकर काँसे तक की मूर्तियाँ हैं। सिन्धु घाटी के लोग लोहे का प्रयोग नहीं जानते थे *क्योंकि लोहे की बनी कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं हुई* है। अतः यह सभ्यता काँसे काल की सभ्यता ही मानी जाती है। मूर्ति बनाने के लिए अधिकतर मुलायम पत्थर काम में लाए जाते थे। कुछ भूरे, कुछ पीले रंग के पत्थरों पर बनी ये मूर्तियाँ वास्तव में बहुत आकर्षक लगती हैं। उस समय अल्बास्टर की भी मूर्तियाँ बनती थी। *मोहेनजोदड़ो में प्राप्त एक पुरुष की मूर्ति बहुत महत्वपूर्ण है जो संभवतः* उस समय के पुरुष समाज का चित्रण करती है। धड़ का भाग एक शाल से ढ़का हुआ है जिसमें सुन्दर कसीदे के रूप दिखाई पड़ते हैं।

मूर्ति का पुरुष कुछ योगी-सा जान पड़ता है। उसकी आँखें लम्बी तथा अधखुली हैं। नाक मामूली लम्बा है। होठ सुन्दर हैं, न अधिक मोटे न पतले। छोटी-छोटी मूंछें, घनी दाढ़ी और गहरे सिर के बालों से ठण्डे चेहरे पर गंभीरता छाई हुई प्रगट होती है। कान बड़े-बड़े हैं। सिर के बालों को पट्टी से बांध रखा है। गले में कुछ छिद्र दिखाई देते हैं जो संभव है कि नैंकलेस का द्योतक हो। दायें हाथ पर बाजूबन्द लगा हुआ है। पुरुष का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से इस मूर्ति द्वारा झलकता है। गला भरा हुआ, मोटे सुन्दर गाल और पतली व लंबी आँखें मोहेनजोदड़ो की मूर्तियों की विशेषता है। हड़प्पा से प्राप्त हुई दो मूर्तियों ने हमें सिन्धु घाटी की कला के बारे में एक नया दृष्टिकोण बनाने में सहायता दी है। ये मूर्तियाँ मनुष्यों की हैं परन्तु उनके हाथ, सिर आदि अलग-अलग हैं। सिर और धड़ के योग स्थान पर तथा बाजुओं और धड़ के योग स्थान पर छेद हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सिर, हाथ, पैर, धड़ सब अलग-अलग बना दिए जाते थे फिर उन्हें जोड़ा जाता था। दोनों मूर्तियें अलग-अलग पत्थर की बनी हुई हैं। एक लाल पत्थर की, दूसरी भूरे पत्थर की है। लाल पत्थर वाली मूर्ति में कोई अलंकार नहीं दिखाई पड़ते हैं; सादगी इसकी विशेषता है। हट्टे कट्टे कंधे, मोटी कमर और एक समान ढांचा इस मूर्ति का स्वरूप है। दूसरी मूर्ति भूरे पत्थर पर काटी गई है। इसके सिर व हाथ भी अलग हैं। पत्थर पर दाई टांग पर खडी यह मूर्ति नृत्य की तैयारी में है। हाथों का झुकाव और कमर की लचकन बायीं ओर झुके हुए हैं। बायीं टांग उठी हुई है। ऐसा मालूम होता है शिवजी नृत्य की मुद्रा में खड़े हैं। सम्भव है यह मूर्ति शिव नटराज की हो। कांसे की बनी ऐसी अन्य एक मूर्ति मिली है। वह एक नर्तकी मालूम होती है। इस मूर्ति से ऐसा ज्ञात होता है कि शृंगार से सजी नर्तकी नृत्य के लिए तैयार है। उसका दाया हाथ कमर पर है। बांया हाथ बांयी टांग पर रखा हुआ है। गले में नैंकलेस है जो कन्धों तक लटका हुआ है। हाथ व पैर संभवतः लम्बे हैं। कमर कुछ झुकी-सी प्रतीत होती है। उसके बाल

गुंथे हुए हैं, होंठ कुछ मोटे प्रतीत होते हैं। यह मूर्ति बहुत सुन्दर लगती है और सिन्धु घाटी की कला का अद्वितीय नमूना है। यद्यपि शैली के रूप में पत्थर की मूर्तियों से अधिक प्रभावोत्पादक है लेकिन यह मूर्ति, जो कि एक ही धातु के टुकड़े की बनी है अपने वास्तविक और शांत रूप में आश्चर्यजनक प्रतीत होती है।

धातु कला

सिन्धु घाटी की सभ्यता में लोहे का प्रयोग नहीं होता था। ऐसी कोई भी वस्तु प्राप्त नहीं हुई है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि यह सभ्यता लौहकाल की सभ्यता है। अतः धातु कला का आधार मुख्यतः कांसे की बनी मूर्तिएं ही हैं। मिट्टी के बने बर्तन, हाथी दांत की मुद्राएँ व सोने चांदी के बने गहने इस प्रकार की कला के अध्ययन बिन्दु कहे जा सकते हैं। सिन्धु घाटी में प्राप्त मिट्टी के बर्तनों की अपनी ही एक विशेषता है। ये बर्तन करचक्र द्वारा बनाए गए मालूम होते हैं। इन बर्तनों को अलंकृत करने का प्रयास नहीं किया गया और न पतली कोमल परत वाले बर्तन ही पाए गए हैं जैसे कि ईरान या मेसोपोटेमिया में मिले हैं। सिंधु घाटी के मिट्टी के बर्तन भारी हैं और व्यवहारिक भी हैं। माईका या चूने से मिश्रित उपजाऊ चिकनी मिट्टी के बने हुए ये बर्तन उस समय के मुख्य व्यवसाय को बतलाते हैं। पकाने की भट्टियों में इन बर्तनों के अवशेष मिले हैं। कई तरह के मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं। सादे मिट्टी के बर्तन, लाल मिट्टी के हैं। काली मिट्टी के बर्तन जिन पर लाल रंग की पुताई की हुई है, पुरुवर्णी हैं जो लाल, काले और हरे रंग को हैं। कागजी (अण्डे के खोह के समान मिट्टी) बर्तन का निर्माण जिस कोमलता व चातुर्य से हुआ है ऐसा समकालीन सभ्यताओं में कहीं नहीं पाया जाता है। निच्छिद्रित मिट्टी के बर्तनों के पेंदे में एक बड़ा सुराख होता था और सुराहीनुमा होती थी जिसकी दीवारों पर

छोटे छोटे सुराख होते थे। गृह कार्य के बर्तन भी मिट्टी के बने होते थे। छोटी बड़ी हांड़िएं आदि खाना बनाने की वस्तु बहुत चतुराई से बनाई जाती थी। 'कन्होदड़ो' में मिट्टी के खिलौने मिले हैं। ये खिलौने विभिन्न प्रकार के हैं। बैलगाड़ियें, बन्दर, गिलहरी आदि के खिलौनों का यह नगर केन्द्र रहा होगा। ये खिलौने इतने पक्के बने हुए हैं कि कोई भी खिलौना टूटी अवस्था में प्राप्त नहीं हुआ है।

इस सभ्यता की मुद्राओं ने इस समय के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने में अपूर्व सहायता दी है। अभी तक करीब ५५०, मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। ये मुद्राएं मुख्य कर सैलखड़ी, हाथी दांत और मिट्टी की बनी हुई हैं। ये मुद्राएं अधिकतर सैलखड़ी की बनी है जो अरवली (आडावला) पहाड़ से प्राप्त हुई हैं। इन्हें आरी से काटा छांटा गया है। फिर ये मुद्राएं चौकोर बनाई गई। उसका मुख्य भाग (चित्र) पहले काटा गया होगा और अभिलेख बाद में जोडे गये होंगे। करीब सब मुद्राएं किसी चिकने व चमकीले द्रव्य से रंगी गई होंगी और कड़ी बनाने के लिए अग्नि में गरम की गई होंगी। भिन्न भिन्न रूप की ये मुद्राएं हैं। परन्तु अधिकतर मुद्राएं चौकोर और आयताकार हैं। मुख्य भाग भिन्न-भिन्न चित्रों, विशेषकर पशु चित्रो से विभूषित हैं और उन पर अभिलेख अंकित हैं। अभिलेख व चित्रो का कोई सामन्जस्य नही है क्योंकि चित्र के आकार उन अभिलेखों की व्याख्या नही करते हैं, ऐसा अभी तक विश्वास किया जाता है।

कुछ मुद्राए वर्गाकार भी मिली हैं जो तावे की बनी हुई हैं। उन पर पशुओं और मनुष्यो के चित्र एक तरफ और अभिलेख दूसरी ओर हैं। कूंची से बड़ी चतुराई से इन चित्रो को अंकित किया गया है। ऐसा मालूम होता है कि ये तावे के सिक्के तावीज़ थे। अभिलेखों में चित्रों का अभिप्राय स्पष्ट मालूम होता है। ये मुद्राएं किस काम में ली जाती थी यह निश्चित तौर पर नही कहा जा सकता है। यह निश्चित है कि वे

सिक्के के रूप में काम में नहीं लाई गई होंगी। पकी हुई मिट्टी की मुद्राएं विशेष प्रयोग के लिए काम में लाई जाती थी। ये मुद्राएँ अमीर और गरीब घरों में पाई गई हैं। इसलिए इनका महत्व बहुत गिना जाता है।

सिंधु घाटी के निवासियों को गहने पहनने का बहुत शौक रहा होगा। कई प्रकार के गले के हार, कानों के इयरिंग, बाहों के भुजबंद, कंगन, पैरों के नूपुर आदि मिले हैं। हाथ में अंगूठी पहनने का भी रिवाज उस समय था। ये गहने उस समय की आर्थिक व्यवस्था की सफलता के ही द्योतक नहीं हैं बल्कि कला वृत्तियों पर प्रकाश डालते हैं। सुन्दर घड़ाई, पिरोई और आकर्षक चमकीले मोती व गुटके दर्शकों को आश्चर्य में डाल देते हैं। औरतें अपने सिर को सुन्दर बनाने के लिए अलंकारों से सजाती थी। हाथों के कंगन सोने व चांदी के बनते थे। परन्तु इसमें लाख का प्रयोग अवश्य होता था। गरीब व्यक्ति तांबे, कांसे व मिट्टी की बनी चूड़ियाँ पहनते थे। कमर के चारों ओर पट्टी बांधने का भी रिवाज रहा होगा। नाना प्रकार की धातुओं के मोती, गुटके आदि बनाए जाते थे। चतुराई से उनमें सुराख किया जाता था। मोतियों को चमकदार बनाने के लिए पॉलिश की जाती थी और उन्हे तारों से जोड़ा जाता था। समान कटाई व बनाने की कला अद्भुत थी। बड़े-बड़े धातुओं के टुकड़ों को सम-रूप बनाकर गहनों का रूप देना यह उनकी दक्षता का प्रमाण है। अर्द्ध मूल्यवान पत्थरों के बने अलंकार उस समय की विशेषता हैं। जिन धातुओं के गहने बनते थे उनमें मुख्य वैडूर्य (नीले रंग का पत्थर) फिरोजा, प्रहरिज पश्चिम देशों से प्राप्त किए जाते थे। राजस्थान, काठियावाड़ से सूर्यकान्त मणि, सुलेमानी पत्थर, हरि भासिज, रुधिर प्रस्तर जाते थे। इन धातुओं के विभिन्न रंगों और नापों की विशेषता को ध्यान में रखते हुए गुटके बनाये जाते थे। समान तोल और भार का पूर्ण ज्ञान रखा जाता था। छेद करने के पहले ही

उन पर पॉलिस व सम-भार बनाने का प्रयत्न किया जाता था। सोना सम्भव है कोलार से आता था और चादी फारस और अरमेनिया व अफगानिस्तान से। सोने चांदी के ठोस, गुटके और पत्तरों के इयरिंग, अंगूठी व चूड़ियें बनाई जाती थी। तांबे और कांसे के भी गहने बनते थे। सूई आदि भी इसी वस्तु की बनती थी। भारत के उस भाग में सम्भव है हाथियों की संख्या अधिक रही होगी। उस समय सिंधु घाटी की जलवायु गंगा जमुना की जलवायु के समान थी। अतः हाथियों का पाया जाना असम्भव प्रतीत नही होता है। हाथी दांत पर गड़ाई, खुदाई, कटाई और नक्कासी का कार्य बड़ी चतुराई से किया जाता था। यह धातु के गुटके और नेकलेस बनाने के काम में भी लिया जाता था। शुक्तिशंखादि भी उन धातुओं में प्रमुख हैं जिनसे कि गहने बनते थे। भिन्न-भिन्न प्रकार के शुक्तिशंखादि समुद्री किनारों व फारस की खाड़ियों से प्राप्त किए जाते और उन्हें हथोडी व करौती से साफ व खोखला कर गहनों के भिन्न भिन्न रूप दिये जाते थे। उस समय कांच का प्रयोग नहीं होता था। कांच की तरह चमकने वाला पदार्थ फेहन्स था। जिसका प्रयोग बहुत होता था। धातु-कला इस युग में बहुत प्रगति पर थी। गहनों को बनाने के लिए विशेष कारीगर होते थे और मिट्टी के बर्तन, मुद्राएँ भी कुटीर व्यवसाय की आधार पर बनती थी। उस समय तांबे कांसे आदि का प्रयोग शस्त्र बनाने में भी होता था। भिन्न-भिन्न प्रकार के शस्त्र भाले, गडासे, तीर-कमान आदि भी धातु कला के नमूने थे। चाकू व कटारें लम्बी व बहुत तेज होती थी। तलवारें चपटी होती थी और उनका बिन्दु (धार) अधिक तेज नही होता था।

चित्रकला

यह तो पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि "कला" के लिये कला का निर्माण सिन्धु घाटी की सभ्यता के युग में नही हुआ। सिन्धु घाटी

के निवासी व्यवहारिक व्यक्ति थे जिन्हें जीवन के आराम तो पसन्द थे परन्तु जीवन को सुसंस्कृत और कलात्मक ढंग से रचने का आदर्श प्राप्त नहीं था। चित्रकला के क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से चित्रों की कृतियाँ तो प्राप्त नहीं हो सकी हैं लेकिन मिट्टी के बर्तनों पर, मुद्राओं पर और खिलौनो पर चित्र अंकित मिले हैं जिनके आधार पर सिन्धु घाटी के नागरिकों का चित्र प्रेम जाना जा सकता है। मिट्टी के बर्तनों पर व घर के काम में लाए जाने वाले बर्तनों पर रेखा चित्र बने हैं। कहीं कहीं पर पशुओं के चित्र भी अंकित हैं। काले रंग से रंगे हुए एक गिलास पर लाल लाइनों से परछाई का रूप बहुत सुन्दर चित्रित हुआ है। इस प्रकार की चित्रकारी भिन्न भिन्न रंगों में की गई है। मुख्य रंग लाल, काला व हरा है लेकिन कभी कभी सफ़ेद व पीले रंग का भी प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार के रंग चित्रों के अलावा मुद्राओं पर भी मिलते हैं। छोटी छोटी मूर्तियें, मुद्राएँ, तावीज और अन्य छोटी छोटी वस्तुओं पर भी नाना प्रकार के चित्र पाए गए हैं। छोटी मूर्तियें पकी हुई मिट्टी की हैं और उनमें से कुछ लाल रंग से रंग दी गई हैं। मनुष्यों के चित्र भी अंकित हैं। मनुष्यों के चित्रों में स्त्रियों के ज्यादा हैं। उनके चित्र अधिकतर नग्न अवस्था में हैं। सिर्फ कटि के चारों ओर सकड़ा सा छिपाव है। मिट्टी के बर्तनों व मुद्राओं पर पशुओं के चित्र अधिक हैं। गिलहरी और बन्दर फेइन्स में चित्रित किए गए हैं और शुक्तिशंखादि में कछुआ, छोटे सींगो वाले बैल मुद्राओं में अंकित हैं। छोटी छोटी ताम्रवस्तुएँ जो तावीज की तरह प्रतीत होती हैं बहुत आकर्षक हैं। फेइन्स की गिलहरी अति आकर्षक है, यह करीब २" ऊँची होगी और उसकी पूँछ सीधी है। वह मुँह में कुछ तोड़ तोड़ कर खा रही है। छोटा बन्दर उदासीन भाव से बैठा हुआ है। एक गुटके में तीन बन्दर एक दूसरे के गले में हाथ डाले हुए बैठे दिखाये गए हैं। ये चित्र मनमोहक हैं और उस समय की कला की तीव्रता, भाव गरिमा और कल्पना की याद को बनाए रखते हैं। मुद्राओं में अंकित चित्रों में पशु चित्र—बड़ी कूठ का बैल, भैंसा

व सांड के चित्र मुख्य हैं। जिसको कलाकार ने सूक्ष्म से सूक्ष्म अभिभावों द्वारा चित्रित किया है। एक अन्य मुद्रा में एक देवता योगासन लगाए बैठे दिखाई देते हैं। यह मुद्रा नीले रंग की है। देवता के दोनों ओर भक्त झुके हुए हैं और उनके पीछे एक सर्प दिखाई देता है। चित्रकार की कल्पना में शिवजी का रूप दिखाया गया है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता की कला में कोई विशेषता हो या नहीं परन्तु भारत की कलाओं को प्रेरणा देने की पूर्ण सामग्री इस कला में पाई जाती है। उस समय के जीवन के सिद्धांतों का चित्रण इसी कला में मिलता है। सिन्धु घाटी के नागरिक व्यवहारिक, आराम पसन्द और सीधे सादे थे। कल्पना और सूक्ष्मता की ऊँची उडान से वे परे थे।

¤ ¤

—३—

पाटलीपुत्र

प्राचीन भारत की राजधानी पाटलीपुत्र की कहानी का आरंभ और अंत एक रोमांचकारी घटना है। सदियों से भारत के राजनैतिक वातावरण की सूत्रधार इस नगरी का प्रभाव जब कम होने लगा तो लोगों को विश्वास नहीं हुआ क्योंकि इस क्षेत्र में पाटलीपुत्र की शक्ति अजेय थी। कई राज वंशों के उत्थान व पतन का इतिहास इस नगरी के वक्षस्थल पर बिखरा पड़ा है। कई साम्राज्यों का विनाश उसके खण्डहरों की भग्नावस्था बतला रही है। कला के क्षेत्र में भी पाटलीपुत्र भारतीय शक्ति का सिरमौर रहा है। यद्यपि पाटलीपुत्र के खण्डहरों में पूर्ण प्राचीन कला का आभास कम मिलता है पर फिर भी मौर्यकालीन, अशोक युगीन, शुंग वंशीय समय के अवशेष आज भी पाये जाते हैं।

समय व स्थिति

कुछ इतिहासकारों का यह मत रहा है कि पाटलीपुत्र की स्थापना अनैतिहासिक काल में हुई परन्तु हमें पाटलीपुत्र की प्रारम्भिक कथा

दीघ्घनिकाय के महापरिनिब्बाए सुत्त में मिलती है । इस कथा के अनुसार यह नगरी गंगा नदी के किनारे बसी हुई थी । इसका नाम पाटलीग्राम था । जब वज्जियों ने मगध देश पर आक्रमण किया तो मगध के शक्तिशाली सम्राट अजातशत्रु ने मगध की रक्षा के लिए उसकी सीमा पर किलेबन्दी करनी शुरू की । पाटलीग्राम में भी इसी प्रकार का एक किला बनाया गया । गौतम बुद्ध ने अपने भ्रमण काल में इस किले को देखा था । इसी कथा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अजातशत्रु ने इस किले का निर्माण कार्य अपने दो मन्त्रियों को सौंप रखा था । उनके नाम सुनीधः व वशकर थे । बुद्ध ने इस नगर के बारे में भविष्य वाणी की कि एक दिन यह नगर अत्यन्त प्रभावशाली होगा । अपने प्रिय शिष्य आनन्द को सम्बोधित करते हुए बुद्ध ने कहा कि "हे आनन्द, व्यापारियों के लिए रहने व व्यापार करने का मुख्य शहर यह नगर होगा । सब प्रकार की वस्तुओं के आदान प्रदान का केन्द्र भी यह नगर रहेगा । परन्तु इस नगरी को अग्नि से, जल से व आंतरिक कलह से खतरा रहेगा ।" इस नगरी की स्थापना के बारे में इतिहासज्ञों में मतभेद चले आ रहे हैं, परन्तु सम्भव है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के काल में इस नगरी की प्रतिष्ठा हुई हो । अतः इस नगरी की स्थापना का काल ४८३ ई० पूर्व माना जा सकता है । अजातशत्रु के पुत्र उदयन ने कुसुमपुर (पाटलीपुत्र का एक अन्य नाम) को राज्य की राजधानी बनाई । पुराणों के अनुसार कुसुमपुर का निर्माता उदयन था और बौद्ध व जैन साहित्य के अनुसार उदयन अजातशत्रु का पुत्र था लेकिन पुराणों में इसका उल्लेख नहीं मिलता है । उदयन के समय से ही पाटलीपुत्र मगध शासकों की राजधानी रही है । बाद में तो पाटलीपुत्र मौर्य, काण्व, शुंग व गुप्त शासकों की राजधानी बनी रही । यह नगर गंगा व सोन नदी के संगम पर बसा हुआ था । यूनानी राजदूत मेगस्थनीज, जो कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य में रहता था, के अनुसार पाटलीपुत्र एक सुन्दर नगर था और उसका शासन प्रबन्ध एक नगरपालिका के अधिकार में था । इस नगर के चारों

ओर लकड़ी की दीवार थी और दीवार के चारों ओर खाई थी। दीवार में ६४ दरवाज़े व तीरन्दाजों के तीर फेंकने के अनेक सुराख थे। ५७० बुर्जों से सुरक्षित यह दीवार नगर की प्रथम रक्षापंक्ति थी। मेगस्थनीज के अनुसार यह नगर ९ मील लम्बा व १॥ मील चौड़ा था। यूनानी राजदूत का कहना था कि पाटलीपुत्र समचतुर्भुजाकार बसा हुआ था और नगर के चारों ओर खाई पर बने हुए पुल आवागमन के साधनों के लिए काम में लाए जाते थे। पुल की सुरक्षा का पूरा ध्यान दिया जाता था। गुप्तकाल में फाहियान (४०५ ई० से ४११ ई०) के पाटलीपुत्र की यात्रा के वर्णन से इस नगर की स्थिति के बारे में मेगस्थनीज का वक्तव्य सही प्रतीत होता है।

नगर का उत्थान व पतन

अजातशत्रु के बाद उदयन शासक हुआ। उसने कुसुमपुर को अपनी राजधानी बनाया। कुसुमपुर पाटलीग्राम का दूसरा नाम था। पाटलीग्राम का नाम पाटलीपुत्र हो गया। नन्दवंश की राजधानी भी पाटलीपुत्र रही। मौर्यों का उत्थान पाटलीपुत्र की शक्ति के उत्थान के साथ हुआ। अशोक के समय पाटलीपुत्र एक अन्तर्राष्ट्रीय नगर बन गया। मौर्यवंश के अंतिम शासक बृहद्रथ को मारकर जब पुष्यमित्र शुंग ने, शुंग वंश की नींव डाली तो उसने पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी बनाए रखा। कालिदास कृत "मालविकाग्निमित्र" में इस सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। कण्व शासकों की राजधानी के बारे में कुछ ज्ञात नहीं होता है। सम्भव है कि वे भी पाटलीपुत्र को राज्य का केन्द्र बनाए रखने में परम्परा को मानते थे। इसके बाद तो पाटलीपुत्र का महत्व गिरता गया। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग (६३०-६४५ ई०) लिखता है कि कनिष्क प्रथम के समय का प्रसिद्ध कवि अश्वघोष, जिसने बुद्ध चरित्र की रचना की थी, पाटलीपुत्र निवासी था। अतः कुशानयुग में पाटलीपुत्र राज्य-केन्द्र न होकर साहित्य

व संस्कृति का केन्द्र अवश्य रहा होगा, ऐसा प्रतीत होता है। गुप्तकाल में ३१६ ई० से पाटलीपुत्र का भाग्य पुनः जाग्रत हुआ। एक बार फिर भारत की राजधानी पाटलीपुत्र बनी। सम्राट यशोधर्मन (५३२ ई०) के शासन काल तक गुप्तों की राजधानी बनी रही। हर्ष के समय तो यह नगरी सिर्फ प्रांतीय शासन का केन्द्र थी। सामन्त माधवगुप्त उस समय पाटलीपुत्र का राज्यपाल था। गुप्त शासक आदित्यसेन ने पुनः गुप्त सत्ता स्थापित करके पाटलीपुत्र को राजधानी बनाया। जीवनगुप्त द्वितीय तक गुप्तों ने इस पर शासन किया। राजपूत युग में यह नगरी पुनः अवशेषों में विलीन हो गई। गौड के शक्तिशाली पाल शासक और कन्नौज के प्रतिहार गुर्जर शासको के समय से पाटलीपुत्र का अन्त होना शुरू हुआ। फिर तो इस नगरी की प्राचीन वैभव की सिर्फ स्मृति ही रह गई।

कला

पाटलीपुत्र से प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत की यह राजधानी कला-केन्द्र अवश्य रही होगी। मौर्य शासन के पहले इस नगरी की व्यवस्था, इसके भवन व मन्दिर आदि के अवशेष नहीं मिलते हैं फिर भी तत्कालीन साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि पाटलीपुत्र एक सुन्दर ढंग से बसी हुई नगरी थी जिसके निर्माताओं ने सूक्ष्म से सूक्ष्म सुन्दरता के तत्वों को लेकर नगर निर्माण किया था। मौर्य व उसके बाद के खण्डहर अस्त-व्यस्त रूप में आज भी पाए जाते हैं। इन खण्डहरों के आधार पर उस समय की स्थापत्य कला का मूल्यांकन किया जा सकता है। आधुनिक पटना नगर की हाल ही में खुदाई हुई है। खुदाई से प्राप्त अवशेषों का आधार प्राप्त करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि ये अवशेष मौर्य युग के हैं। चीनी यात्री फाईयान ने (४०५–४११ ई०) में भी पाटलीपुत्र में मौर्य कालीन अवशेष देखे थे। मौर्यों के राजप्रासादों की कला की प्रशंसा के पुल उसने बांध दिये थे। सातवीं

सदी के अर्द्धभाग में जब चीनी यात्री हुएनसांग भारत यात्रा को आया था, पाटलीपुत्र के बारे में सुन्दर वर्णन करता है। वह लिखता है कि पाटलीपुत्र अब खण्डहरों में बिखरा पड़ा है। १४ मील के क्षेत्र में यह नगर अपनी प्राचीन कला की स्मृति को दबाए हुए है। उसने निम्नलिखित अवशेष देखे थे जो भग्न अवस्था में आज भी सुरक्षित हैं—(१) महेन्द्र गुफा, (२) उपगुप्त की गुफा, (३) पंच स्तूप, (४) ककुत्तराम, (५) अश्वघोष के राजप्रासाद, (६) अग्नि कुआ तथा (७) मौर्य राजप्रासाद।

महेन्द्र गुफा

यह गुफा पत्थरों की बनी हुई है। अशोक ने इसका निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि जब महेन्द्र (हुएनसांग के अनुसार अशोक का भाई परन्तु अभिलेखों व अन्य साहित्य के अनुसार अशोक का पुत्र) ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और भिक्षु पद को प्राप्त हो गया तो अशोक ने इस गुफा का निर्माण उसके लिए करवाया था। यह गुफा एक अप्राकृतिक पहाड़ी पर बनी हुई है। अन्दर से यह कुछ ही फुट लम्बी व चौड़ी है। भीतर किसी प्रकार की कारीगरी व काट छाँट के अवशेष नहीं दिखलाई देते हैं। इस प्रकार की गुफाएँ अशोक के समय बहुत प्रचलित थीं। महेन्द्र की ताम्रपर्णी (लंका) यात्रा और वहाँ स्थायी निवास बना लेने के बाद इस गुफा का कोई विशेष प्रयोग नहीं हुआ।

उपगुप्त गुफा

अशोक के जीवन में धार्मिक क्रांति लाने का श्रेय महाभिक्षु उपगुप्त को था। अशोक ने अपने गुरु की उपासना हेतु इस गुफा का निर्माण करवाया। यह गुफा भी एक अप्राकृतिक पहाड़ी में स्थित है। यह पाटलीपुत्र के दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर है। महेन्द्र गुफा की तरह यह भी आंतरिक व बाह्य आवरणों में सादगी लिए हुए है।

पंच स्तूप

पाटलीपुत्र के दक्षिण-पश्चिमी पहाड़ी पर हुएनसांग ने पांच स्तूप देखे। इन स्तूपों के अवशेषों के सिर्फ आधार ही रह गए हैं अन्य भागों का कोई चिन्ह नहीं मिलता। डाक्टर स्पूनर ने इन स्तूपों को पंच पहाड़ी पर स्थित बतलाया है। पंच पहाड़ी या बड़ी पहाड़ी का क्षेत्र तीन हज़ार फीट लम्बाई में और छः सौ फीट चौडाई में है। इस अकृत्रिम पहाड़ी पर कई अन्य प्रकार के स्तूप भी पाए जाते हैं। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि इन पंच स्तूपों में नन्द राजा के कोष गड़े हैं। बड़ी पहाडी की खुदाई के बाद कुछ चुनार पत्थर की दीवारों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। ऊपर मौर्य कालीन चूने की पोलिश के चिन्ह हैं। इस पहाडी के अंतर्गत अशोक के स्तूपों का जमघट है। डाक्टर स्पूनर का विश्वास है कि ये स्तूप बड़े स्तूपों के समान भव्य नही थे। इन स्तूपों में से एक में एक कमरे के खण्डहर मिले हैं, पर उन खण्डहरों के भीतर कोई अवशेष नही मिला।

ककुत्तराम

पटना के दक्षिण हिस्से में हुएनसांग ने एक विहार के अवशेष भी देखे थे। ये अवशेष ककुत्तराम पर विशेष तौर पर पाए गए हैं। इस विहार से सम्बन्धित एक स्तूप भी है। स्थानीय लोग इसे अमोलक स्तूप कहते हैं। अशोक द्वारा निर्मित ये दोनों अवशेष धर्म प्रचार के आधार थे।

अश्वघोष का निवास स्थान

हुएनसांग ने महाकवि अश्वघोष के निवास स्थान को देखा था। अश्वघोष कनिष्क प्रथम का समकालीन था। इसके निवास के खण्डहरों में मौर्य कालीन व कुशानयुगीन कला के संमिश्रण का रूप था। यद्यपि गंधार कला का प्रभाव अभी तक पूर्व भारत में फल नहीं सका था परन्तु

मथुरा—जो उस समय नवीन व मिश्रित कला की केन्द्र बनती जा रही थी—का प्रभाव पाटलीपुत्र के नए निर्मित भवनों पर पड़ रहा था।

अग्नि कुआ

अशोक कालीन अवशेषों में अग्नि कुआ अपना विशेष स्थान रखता है। कर्नल वेडेल ने इस कुए को "नरक" कहकर पुकारा है। "दिव्यवदान" में इस "कुए" का वर्णन मिलता है। इस कुए को देखने से तो मालूम होता है कि यह अत्यन्त प्राचीन है परन्तु इसमें ऐसा कोई चिन्ह नहीं मिला है जिससे यह विश्वास किया जा सके कि यह अशोक के समय निर्मित हुआ था। फाहियान के अनुसार यह कुआ "अशोक का नरक" पाटलीपुत्र के दक्षिण की ओर था और हुएनसांग के अनुसार यह कुआ उत्तर की ओर था। हुएनसांग ने इस कुए के पास एक स्तूप देखा था परन्तु अभी तक अशोक का कोई स्तूप इसके पास नहीं मिला है। हुएनसांग का कहना है कि यह स्तूप जमीन में धंसा था, सिर्फ ऊपरी गुम्बज ही जमीन के ऊपर दिखाई देता था। हुएनसांग पर विश्वास किया जाय तो यह स्तूप अशोक ने बनवाया था जिसने कि बुद्ध के अवशेषों के कुछ अंश इसमें रखे थे। इसी स्तूप के पास एक पत्थर की पट्टी पर बुद्ध के पद चिन्ह थे। ये एक मन्दिर के अवशेष के रूप थे। फॉहियान भी इस पत्थर की पट्टी का उल्लेख करता है। उस समय यह कथा प्रचलित थी कि बंगाल के शासक शशाक ने इस पट्टी को गंगा में फेंक दिया था। इस पद-चिन्ह मन्दिर के पास एक पत्थर का स्तम्भ था जो तीस फीट ऊंचा था जिस पर एक अभिलेख अंकित था। अभिलेख इतना नष्ट हो चुका था कि हुएनसांग उसे पढ़ न सका। लोगों का कहना है कि यह स्तम्भ अशोक ने बनवाया था और इसके अनुसार जम्बूद्वीप के दान की कथा लिखी हुई है जो उसने बुद्ध संघ को दी थी।

मौर्यों के राजप्रासाद

पाटलीपुत्र के गौरव के अवशेष मौर्यों के राजप्रासादों में दिखाई देते हैं। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के वर्णन के अनुसार इन महलों का कलात्मक गौरव, शान और समृद्धि प्रसिद्ध फारसी अट्टालिकाओं, जो कि एकबतना और सुसा में पाई गई थी, से कम नही हैं। यह महल पाटलीपुत्र नगर के मध्य में स्थित था। इसके चारों ओर कलात्मक ढंग से सुसज्जित एक बाग था। यह महल पूर्णतया लकड़ी का बना था। इस महल में राज्य दरबार का भाग सबसे अधिक आकर्षक था। इस भवन को "सौ स्तम्भों का भवन" कहते थे। चांदी व सोने की पटालियों द्वारा अंकित, भूमती हुई वन्दन मालाएँ, चमकते हुए अलंकारों से सुसज्जित यह भवन मौर्य कालीन कला का प्रतिबिम्ब था। इस भवन की छतें व फर्श साफ व चमकीली लकड़ी की बनी थी। महल के चारों ओर एक सुन्दर बाग था जिसमें कतार-बन्द पेड महल की सुन्दरता में चार चांद लगा देते थे। इस बाग में कई छोटे-छोटे पानी के कुण्ड थे, जिनमें नाना प्रकार की रंग बिरंगी मछलिऐं नृत्य करती थी। खारवेल के हाथी-गुम्फा अभिलेख से व विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षस से मालूम होता है कि इस भवन का नाम "सुगगेय" था। सम्भव है कि गंगा नदी के तट पर बने होने के कारण इस महल का नाम "सुगगेय" रखा गया हो।

पटना के बुलन्दी बाग से प्राप्त मौर्य युग के अवशेषों में पाटलीपुत्र की प्राचीन कला के चिन्ह स्पष्ट रूप से ज्ञात होते हैं। १९१५-१९१६ ई० में डाक्टर स्पूनर ने २४ फीट गहरी खुदाई के बाद घने और भारी लकड़ी के पाट (शहतीर) प्राप्त किए। कुछ पाट कुछ झुके हुए स्तंभ के रूप में थे जिनके ऊपरी भाग दस फीट की खुदाई के बाद ही प्राप्त होने लगे थे। झुके हुए लकड़ी के पाट एक वर्ग फीट के थे। पहले प्राप्त हुए पाटों की सीध में ही लकड़ी की दो दीवारें एक दूसरे के समानान्तर पूर्व की ओर करीब २४ फीट तक चली गई थीं। पश्चिम की ओर के पाट झुके

हुए तथा उत्तरी व दक्षिणी भाग में शहतीर सीधे और खड़े मिले। ये खंभे पांच पांच इंच की दूरी पर स्थित थे। सम्पूर्ण ढांचे की चौड़ाई १२' ४" (आन्तरिक) थी और १' ५" (बाह्य) थी। उत्तरी और दक्षिणी दीवारों के बीच में, कोई २०' खुदाई के बाद फर्श प्राप्त हुई है। यह फर्श लम्बे व चौकोर लकड़ी की पाटों से बन्धी हुई थी। जोड़ के स्थान पर सोकेट का प्रयोग किया गया था। लम्ब स्थित खंभों का आधार कंकरों से बनी फर्श थी। दीवारों की लम्बाई २४' की थी और फर्श की लम्बाई ३५०' है। वह लम्ब स्थित खंभे दिखाई नहीं देते थे। उसके बाद पुनः लम्ब स्थित खंभे दिखाई देते थे। १६२३ में पुनः खुदाई हुई। ज्यों ज्यों पहले से अधिक गहरे गड्ढे खोदे गए फर्श के लकड़ी के पाट मिलते गए। जैसे रेलवे स्लीपर समानान्तर रखी जाती हैं उसी प्रकार ये भी समानान्तर पाए गए। उनके बीच में १' २" से १' ६" तक की दूरी थी। १०" वर्ग के टुकड़े १२' से १३' फीट लम्बे पाए गए। इस प्रकार के लकड़ी के खंभों पर स्थित महल के चिन्ह मिलते हैं। ढांचे की विशेषताओं से प्रकट होता है कि ये खण्डहर मौर्यों के शानदार राजप्रासादों के अवशेष ही हैं।

बुलन्दी बाग की खुदाई में से प्राप्त कुछ पुरावस्तुएँ ये हैं—(१) काफी मात्रा में चादी के पंच मार्का सिक्के, ये पंच मार्का सिक्के अशोक के युग के थे, (२) सफेद तांबे के दो बड़े कर्ण बटन, (३) काफी मात्रा में सुरक्षित रूप में तेज चाकू, (४) एक लम्बी तलवार, (५) धातु के बने तीरफल, (६) एक पूरा रथ का पहिया जिसके घेरे पर लोहे की चादर थी, (७) एक लम्बा नीला व हलका कांच, (८) एक कठपुतली जो कपड़ों से सुसज्जित थी। ये वस्तुएं मौर्यों के सामाजिक व राजनैतिक जीवन पर प्रकाश डालती है तथा इनसे समय की धातु कला का ज्ञान

कुमराहर में मौर्य कालीन अवशेषों की कला

आधुनिक पटना नगर के दक्षिण की ओर कुमराहर नामक एक ग्राम है। इस ग्राम के वाह्य भाग में एक पुराना तालाब है जिसे 'कालु तालाब' कह कर पुकारा जाता है। इस तालाब के दक्षिण की ओर कोई सौ गज की दूरी पर एक दूसरा तालाब और भी है जो "चमन तालाब" के नाम से प्रसिद्ध है। इन दो तालाबों के बीच की भूमि काफी ऊँची है। इसी ऊँची भूमि को खोदने पर मौर्यों के अन्य महल प्राप्त हुए हैं। इन दोनो तालाबों के बीच का क्षेत्र ३००′ × २५०′ है। खुदाई के कार्य काल में कर्नल वेडेल ने मौर्य कारीगरों द्वारा निर्मित स्वच्छ पत्थर के अवशेष प्राप्त किए थे। ये अवशेष अशोक के नीलीव स्तंभ के समान थे। १९१३ में डाक्टर स्पूनर ने पुनः खुदाई आरम्भ की। इस खुदाई में मौर्यों के महलों के अवशेष स्पष्टरूप से प्राप्त हुए हैं। धरातल के पास ही गुप्त युगीन ईंटों की दीवार प्रगट हुई जो कि सम्पूर्ण क्षेत्र में फैली हुई थी। धरातल के नीचे ७ फीट की गहरी खुदाई के वाद कोयले की तह मिली जो कि सम्पूर्ण क्षेत्र में फैली हुई थी। कोयले की तह पर चमकीले पत्थर (बालुकाश्य) बिखरे मिले हैं। प्रारम्भ में इन पत्थरों के तीन ढेर १५-१५ फीट की दूरी पर प्राप्त हुए थे। इस दूरी के आधार पर खुदाई करने के वाद इस प्रकार के पत्थरो के ढेर मिलते गए। इससे यह अनुमान लगाया गया कि ये ढेर स्तम्भों के ढेर हैं और यह कमरा मौर्य कालीन प्रसिद्ध स्तम्भों वाला महल था। इस विश्वास को लेकर और गहरी खुदाई की गई। ३० इंच और इससे अधिक गहराई में विशेषज्ञ पहुँचे और अन्त में इन स्तम्भों के आधार पर पत्थरों को प्राप्त कर ही लिया। कोयले की तह के १६ फीट गहराई पर एक नीली मिट्टी की पतली तह, जिसमे लकड़ी के अंश मिश्रित थे, प्राप्त हुई। कोयले की तह और नीली मिट्टी की तह के बीच में एक तह और थी। यह तह कड़ी थी परन्तु इस पर भूसे के समान घास बिखरी पड़ी थी। बाहर से तो ऐसा प्रतीत होता

है कि यह नदी के बहाव से जमा पदार्थ के समान था परन्तु राख की उपस्थिति से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूखी हुई ईंटों को पीस कर इसमें भरा गया था। यह भराई फर्श को ऊँची बनाने के लिए की गयी थी। डाक्टर स्पूनर ने इस महल के नष्ट होने के कारणों में दो बातें महत्वपूर्ण बतलाई। गंगा नदी में बाढ़ आ जाने के कारण यह महल ढह गया हो। यह बात चौथी व पांचवी शताब्दी के समय की बतलाई गई है। उनकी यह धारणा है कि महल का ऊपरी भाग अग्नि के कारण नष्ट हुआ था। डाक्टर स्पूनर के निपदन सिद्धान्त के अनुसार गुप्त कालीन दीवार का निर्माण ७ वीं या ८ वीं शताब्दी में हुआ था। कोयले की धरातल पर जो पत्थरों के ढेर हैं वे अग्नि काण्ड व गुप्त युग की दीवार के निर्माण के अन्तर वर्षों की देन प्रतीत होते हैं। अग्नि-काण्ड के बाद स्तम्भ कोयले की तह के नीचे दब गए और वास्तव में गुप्तयुगीन दीवार का आधार कोयले की तह ही रही थी। गंगा के पास की जमीन होने के कारण वह अधिक पोली थी। धीरे धीरे यह महल जमीन में धंसता गया। डाक्टर स्पूनर के अनुसार मौर्य महल के स्तम्भ बाढ के बाद ही धंसने लगे थे और दस वर्ष में एक फीट के अनुपात से धंसते गए। गुप्तों की दीवार भी इसी प्रकार नष्ट होने लगी। ऐसी अवस्था में यह महल त्याग दिया गया होगा। खुदाई क्षेत्र के पूर्व की ओर गुप्त दीवार के नीचे एक टूटा हुआ मौर्य स्तम्भ मिला है। यह पूर्ण प्रमार्जित (पोलिश्ड) था सिर्फ आधार पर एक इंच कुछ खुरदुरा था। इस स्तम्भ के निचले भाग में कुछ चिन्ह—तीन गोलाकार चिन्ह तीन कतारों में अंकित मिले हैं।

डाक्टर स्पूनर का कथन है कि मौर्यों का महल फारस में परसी-पोलिस के सौ स्तम्भों वाले महल के समान है। इस महल में स्तम्भों की पन्द्रह कतारें थी। प्रत्येक कतार में पन्द्रह स्तम्भ थे और एक स्तंभ दूसरे स्तंभ से पन्द्रह फीट की दूरी पर था। अतः महल की फर्श का क्षेत्र ६४०० वर्ग गज था। स्तम्भ क्षेत्र के दक्षिण की ओर १५ फीट सतह से

नीचे लकड़ी के सात मंच (प्लेटफार्म) थे। प्रत्येक मंच की लम्बाई ३०′ फीट और चौड़ाई ५′ ४″ व मोटाई ४′ ६″ थी। ये सुरक्षित रूप में प्राप्त हुए हैं। ये मंच लकड़ी के बने लम्ब रूप के स्तम्भों पर आधारित थे। ये मंच क्यों बनाए गए, इसका कारण नहीं जाना जा सकता है। स्तम्भ भवन के पूर्व की ओर महल की चहारदिवारी के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह दीवार ११″ मोटी लकड़ी की बनी थी। महल के चारों ओर बिखरी हुई नीली रेत इस दीवार के नष्ट होने का प्रमुख प्रमाण है।

उपसंहार

भारतीय कला के प्रतिनिधि रूप में तो पाटलीपुत्र के अवशेष स्वीकार नहीं किये जा सकते परन्तु भारत की प्राचीन राजधानी में कला का जो रूप था वह ही इस लेख का प्रमुख विषय रहा है। पाटलीपुत्र खण्डहरों का गिरजाघर कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही हो सकती। अभी तक इसकी भूमि में भारत की महानता छिपी है। पूर्ण रूप से अवशेष ज्ञात हो जाने पर पाटलीपुत्र की कला पर एक विहंगम दृष्टि डाली जा सकती है फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि यह कला एक युग की नही है या एक ही उद्देश्य को लेकर निर्मित नही हुई थी। फारस, लंका, यूनान आदि देशों से राजनैतिक सम्बन्ध हो जाने के बाद सांस्कृतिक आदान प्रदान अवश्य हुआ करता था। पाटलीपुत्र की कला में इसकी स्पष्ट छाप है। पाटलीपुत्र के अवशेषों में अशोक कालीन कला की भी विशेषता पाई गई है। गुप्त-युग के समय की ईंटों की दीवार के अवशेष पाटलीपुत्र के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। लकड़ी का इतना अधिक प्रयोग किसी और अन्य कला केन्द्र में नही हुआ जितना पाटलीपुत्र में हुआ था। पाटलीपुत्र की कला की अधूरी कहानी पूर्ण करने का प्रयास अभी तक हो रहा है।

☆ ☆

—४—

भरहुत

स्थिति

भरहुत शुंग कालीन मूर्तिकला का मुख्य केन्द्र था । यह स्थान भूतपूर्व मध्य भारत के नागदा जिले में है । इलाहाबाद से जबलपुर जाने वाली सेन्ट्रल रेल्वे की लाइन के उनचेरा और सतना के बीच का स्टेशन लंगरगाव लगता है । यह स्टेशन उनचेरा के उत्तर पूर्व में ६ मील तथा जबलपुर से १११ मील व इलाहबाद से ११६ मील है । यहाँ पर साची के स्तूप के ढग पर एक बहुत बड़ा बौद्ध स्तूप था । १८७३ ई० में जनरल कनिंघम को उस स्तूप के भग्नावशेष मिले थे । उसका अधिकांश भाग आस पास के ग्राम वासी पहले ही अपने मकानो को बनाने के काम में ले चुके थे । इस कारण कनिंघम की खुदाई में केवल स्तूप की कुछ विशाल वेदिकाऐं और पूर्वी तोरण ही मिले हैं जिन्हे उसने भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता भेज दिया था । वहाँ जो कुछ बचा रह गया था, वह बाद में विभिन्न सग्रहालयो को भेज दिया गया ।

समय

भरहुत पहले मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित था। अशोक के समय अवन्ति राष्ट्र के यह अन्तर्गत था। बाद में यह शुंगों के अधिकार में आया। उन्हीं के समय में यहाँ का स्तूप बना। मूर्ति पर लिखे लेख दूसरी शती ई० पू० में प्रचलित ब्राह्मी लिपि में हैं। यह ब्राह्मी लिपि अशोक के शिलालेखों की लिपि से काफी मिलती है। अतः भरहुत के स्तूप के बनने का समय भी लगभग दूसरी शती ई० पू० ही है। कला की दृष्टि से भी यह इसी समय का प्रतीत होता है। इस समय तक बौद्ध धर्म का जनता में काफी प्रचार हो गया था। अतः भरहुत के स्तूप पर बौद्ध धर्म का काफी प्रभाव पड़ा।

स्तूप

संग्रहालय की वेदिका पहले स्तूप के चारों ओर लगी हुई थी। बीच की जगह प्रदक्षिणा पथ कहलाती थी जिसको पहुँचने के लिए चारों ओर तोरण थे। स्तूप के अवशेष में केवल पूर्वी तोरण की ऊँचाई २२½' है। तोरण दो स्तम्भों पर अवलम्बित है। प्रत्येक स्तम्भ का सिर ४ भागों में विभक्त है। जिनके शिखर उलटे हुए कमल की तरह हैं जिसके ऊपर दो सिंह और दो बैल बैठे हैं। यह शिखर कमानीदार तीन तेहरीका बना है।

दाहिने तोरण पर दूसरी शती ई० पू० लगभग का ब्राह्मी लिपि में एक शिलालेख है—

> "सुगनं राजे रामो गार्गीपुतस विसदेवस
> पातेण गोति पुतस आगरजुस पुतेण
> वाछिपुतेन धनभूतिन कारित तोरण
> सिला कंमतो च उपंण (नो)"

अर्थात्, शुंग वंश के राज्य काल में यह तोरण गार्गीपुत्र विश्वदेव के पौत्र और गौतीपुत्र आगरजु के पुत्र वात्सीपुत्र धनभूति द्वारा बनवाया गया।

दो अन्य तोरणों पर भी इसी प्रकार के लेख मिले हैं। ये तोरण शुंग राज्य के अंतिम दिनों में बनवाये गये थे। वेदिका की ज्यादातर मूर्तियों पर विषय निर्देशक लेख तथा दानियों के नाम लिखे हैं। दान देने वाले ज्यादातर उपासक, भिक्षु या भिक्षुणियाँ थीं, जिनके निवास स्थान का भी यहाँ कुछ लेखा है। इनमें मुख्य कर विदिशा (ग्वालियर राज्य), नासिक, कौशाम्बी (आधुनिक कौसम, इलाहाबाद) और पाटलीपुत्र (पटना) आदि के थे। जिससे ज्ञात होता है कि यहाँ यात्री बहुत दूर दूर से आते थे।

इन तोरणों और वेदिकाओं पर नाना प्रकार के दृश्यों का चित्रण किया गया है जो इनकी सुन्दरता को बढ़ाने के साथ ही साथ बौद्ध यात्रियों की धार्मिक भावना को भी जागृत करते थे। वेदिकाओं में तनिक भी जगह बिना चित्रण किये नहीं छोड़ी गई है।

वेदिका के उष्णीषो के बाहरी तरफ नाना प्रकार के कमल बने हैं। अन्दर की तरफ सिंह, हाथी आदि पशु तथा भांति भांति के फलो के गुच्छे, अलंकारो आदि से सजा हुआ है। स्तम्भ के तले पर सम्पूर्ण भार को सहारा देने के लिए मोटे तोंदल कीचक बने हुए हैं। साथ ही साथ उनको खण्डहर तथा फूलो की जातक कथाओं तथा अन्य प्रकार के बेल-बूटो आदि से अलंकृत किया है।

मूर्तिएँ

भरहुत की मूर्तियो का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। प्रत्येक विषय पर यहाँ कुछ न कुछ मूर्तियां अवश्य मिल जायेंगी। ऐतिहासिक

विषयों पर यहाँ १०–११ दृश्य हैं। यह दृश्य भगवान् बुद्ध की जीवनी से सम्बन्धित है। इनमें सबसे मुख्य बात यह है कि बुद्ध को इन सब दृश्यों में सांकेतिक चिह्नों, धर्मचक्र, त्रिरत्न, सिंहासन, बोधिवृक्ष, स्तूप और पदचिह्नों से दर्शाया गया है। प्रारम्भ में बौद्ध धर्मावलम्बी किसी निर्वाण प्राप्त हुये की मूर्ति बनाना उचित नहीं समझते थे। अतः इसी कारण प्रथम शती ई० पू० तक बुद्ध को मूर्ति रूप नहीं दिया गया। यह सांकेतिक चिन्ह ही बुद्ध की उपस्थिति सूचित करते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध अजातशत्रु की सवारी का दृश्य है। जब अजातशत्रु को अपने पिता बिम्बिसार को मारने का पश्चात्ताप हुआ तब वह जीवक के साथ रात के समय अपने सुन्दरी दल के साथ भगवान् बुद्ध के पास गया। बुद्ध जीवक की आम्रवाटिका में उस समय ठहरे हुये थे। पेड़ों पर आम आम्रवाटिका का होना बतलाते हैं। राजा यहाँ हाथियों की सवारी के साथ जाता दिखाया गया है। बाद में वह हाथी से उतरता हुआ और फिर एक सिंहासन पर रखे पदचिन्हों को—जो बुद्ध का होना दिखाते हैं—प्रणाम करते दिखाई देता है। लेख है—

"अजातसत भगवतो वंदते" अर्थात् अजातशत्रु भगवान् की पूजा करता है।

अन्य दृश्य इस प्रकार हैं:—

(१) सर्व प्रथम दृश्य है, मायादेवी का स्वप्न। इसमें बोधिसत्व को सफेद हाथी के रूप में स्वर्ग से उतरता दिखाया गया है—जो स्वप्न माया ने गर्भ ठहरने के पहले देखा था। रानी अपनी दासियों सहित सोती हुई दिखाई गई है। पैरों के पास दीपक जल रहा है। लेख है—"भगवतो ऊकंति" यानि भगवान् स्वर्ग से उतरते हुए।

(२) बौद्ध गया में बुद्ध का ज्ञान प्राप्त करना—बोधिवृक्ष के नीचे सिंहासन पर दो त्रिरत्न बने हैं जिनकी उपासक उपासना कर

रहे हैं। दो देव ऊपर आनन्द से अपने कपड़े हिला रहे हैं। लेख है—"भगवतो सकमुनिनो बोधो" यानि भगवान् शाक्य मुनि का ज्ञान प्राप्त करना।

(३) देवों द्वारा मार की पराजय पर हर्ष प्रकट करना—मार एक पेड़ के नीचे अपनी हार का पश्चाताप कर रहा है। चार गिरोह पूजा करते दिखाये गये हैं।

(४) अप्सराओं द्वारा नृत्य—बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने पर देवों ने अप्सराओं के नृत्य का आयोजन किया। लेख में अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पद्मावती और सुभद्रा आदि अप्सराओं का नाम अंकित है। दूसरा लेख है—"शादिक समंदतुर देवान' (देवों द्वारा नृत्य और गायन)।

(५) नागराज एरापत की पूजा—एरापत बोधिवृक्ष के नीचे रखे सिंहासन की पूजा कर रहा है। नागराज पहले नाग रूप में और फिर मनुष्य रूप में दिखाया गया है। लेख है—"एरपतो नागराजा भगवतो वदते" (नागराज एरापत भगवान् की' पूजा करता है।

(६) इन्द्रशाल गुहा में इन्द्र द्वारा बुद्ध के दर्शन—इसमें बुद्ध का सिंहासन इन्द्रशाल गुहा (राजगृह) में दिखाया गया है। इन्द्र अपने सहचर पंचशिख के साथ दिखाया गया है। लेख है—"इडसाल ग्रुह" (इन्द्रशाल गुहा)।

(७) कोशलपति प्रसेनजित—राजसी ठाठ के साथ बुद्ध का उपदेश सुनते चार घोड़ों के रथ में बैठा जा रहा है। बुद्ध के बदले धर्मचक्र बना है। लेख है—"भगवतो धर्मचक्र (भगवान् का धर्मचक्र) और राजा पसेनजी कोसलो" (कोशलपति प्रसेनजित)।

(८) भगवान् का त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से उतरना—बुद्ध अपनी माता को धर्म का पाठ पढ़ाने त्रयस्त्रिंश स्वर्ग गये थे। वहीं से वह सीढ़ी से उतरते दिखाये गये हैं। बुद्ध के पदचिन्ह सब से ऊपर और नीचे वाली सीढ़ी पर दिखलाये गये हैं जो उनका उतरना बतलाता है। सीढ़ी के आसपास उपासक राह देखते दिखाये गये हैं।

(९) जेतवन के क्रय और दान दृश्य—श्रावस्ती के नगरसेठ सुदत्त जो अनाथों को अत्यधिक दान देने के कारण अनाथपिंडक कहलाता है—ने जेत का उपवन दान देना चाहा। जेत ने उस उपवन का मूल्य एक करोड़ रुपया मांगा। सुदत्त ने स्वीकार कर लिया, लेकिन जेत बाद में नटने लगा। दोनो ने न्यायालय की शरण ली और जिसमें निर्णय सेठ के पक्ष में हुआ। सेठ ने बाद में वह बाग खरीद कर और वहाँ विहार बनवा कर बुद्ध को दे दिया। इस शिलापट्ट में तीन वृक्ष तथा विहार जेतवन दिखाते हैं। एक बैलगाड़ी से स्वर्ण मुद्रायें उतारी जाकर बिछाई जा रही हैं। ये मुद्रायें चौकोर हैं जो उस वक्त प्रचलित थीं। अनाथपिंडक जल की भारी से वन को दान देने की रस्म पूरा कर रहा है। दोनों विहारो के नाम को सब कुटि और गंध कुटि लिखे हैं। लेख है—जेतवन अनाधपेडिको देति कोटि सथतेन केता (अनाथपिंडि करोड़ों से जेतवन खरीद कर दान देता है।) "इतिहासिक" अर्थात् इतिहासिक दृश्यो का जैसा वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में है वैसा ही अंकन यहाँ किया गया है। शाक्यमुनि के पूर्व के बुद्धो की मूर्तियां भी भरहुत में नही पाई गई हैं। उनके लिए भी सांकेतिक चिन्हों का प्रयोग किया गया है। इन पांच पूर्व बुद्धों—विपश्यी, विश्वभू, ककुच्छन्द, कनकमुनी और कश्यप को उनके भिन्न भिन्न बोधिवृक्षों के नीचे रखे सिंहासनों द्वारा

दिखाये गये हैं। विपश्यी का पाटलि विश्वभू का शाल, क्रकुच्छन्द की शिराप, कनक मुनि का उदुम्बर और काश्यप की निग्रोध वृक्ष हैं।

सांकेतिक चिन्ह

शुंगकाल तक मूर्ति पूजा आरम्भ नहीं हुई थी। बुद्ध की मूर्ति के बदले सांकेतिक चिन्हों—स्तूप, धर्मचक्र, बोधिवृक्षों, त्रिरत्न आदि चिह्नों का प्रयोग होता था। भरहुत, साँची, बोध गया, मथुरा, सारनाथ आदि धार्मिक स्थानों पर ईसवी शती के पूर्व तक इसी प्रकार के चिन्ह बहुतायत से मिले हैं। स्वयं बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य को तथागत की मूर्ति रूप में पूजा करने से मना किया था। उसके बदले तीन प्रकार के साकेतिक चिन्हों को प्रयोग में लाने की आज्ञा दी थी। वह थे—शारीरिक, उद्देशिक और परिभौगिक। जो वस्तुऐं भगवान के शरीर से सम्बन्धित थी यथा केश, नख, भस्म आदि वह शारीरिक कहलाते थे। जो बुद्ध के स्मारक थे—स्तूप, धर्मचक्र, त्रिरत्न आदि उद्देशिक कहलाते हैं। परिभौगिक वस्तुऐं वह हैं जिन्हे बुद्ध प्रयोग में लाया करते थे—जैसे मेखला, दानपत्र, सिंहासन, बोधिवृक्ष आदि।

शारीरिक वस्तुओं में सबसे सुन्दर नमूना है बुद्ध का सिर, जो देवों की सभा के मध्य में रखा दिखाया गया है। इस पर लेख है—"सुधम्म देव सभा भगवतो चरमहो"।

उद्देशिक स्मारकों के नमूनो के लिए प्रसेनजित के महलो में खम्भों के बीच स्तूप बना है। इन्ही के बीच एक धर्मचक्र लेख सहित है—

"भगवतो धम्मचक्रं" विश्वभू और शाक्यमुनि के सिंहासनो पर त्रिरत्न चिह्न भी सुन्दरता से दर्शाया गया है।

बुद्ध की परिभौगिक वस्तुओं का चित्रण भरहुत के शिल्पकारों ने बहुतायत से किया है। बुद्ध के चरण दो शिलापट्टो पर दिखाये गये है।

एक में चरण एक छत्रधारी सिंहासन पर रखे हैं। एक राजा श्रद्धा से उनके सामने झुक रहा है। दूसरे शिलापट्ट में वह दृश्य दिखाया गया है जब कि अजातशत्रु बुद्ध के दर्शन करने गया था। बुद्ध के सिंहासन में उनके चिह्न स्वरूप बनाये गये हैं। प्रत्येक का सिंहासन बोधिवृक्ष के नीचे दिखाया गया है। प्रत्येक सिंहासन छत्रधारी है जिनमें पुष्प मालायें लटक रही हैं। प्रत्येक बुद्ध के बोधिवृक्ष अलग-अलग हैं।

बुद्ध विपश्यी का सिंहासन पाटली वृक्ष के नीचे दिखाया गया है। दो मनुष्य श्रद्धा से उसकी ओर झुक रहे हैं और कुछ दूसरों का गिरोह बोधिवृक्ष के आस-पास खड़ा है। देख—भगवतो विपसिनो बोधि। द्वितीय बुद्ध सिरिवत का कोई चित्रण नहीं पाया गया है।

तीसरे बुद्ध विश्वभू का बोधिमण्ड (सिंहासन) साल वृक्ष के नीचे है। इस पर त्रिरत्न बना है और वृक्ष की शाखाओं से पुष्प मालायें लटक रही हैं। लेख है—"भगवतो वेसभुनोबोधिसालो"।

चौथे बुद्ध ककुच्छन्द का बोधिवृक्ष शिरीष है।

पांचवे बुद्ध कनक मुनि का स्तम्भों पर बना बोधिमण्डप उदुम्बर बोधिवृक्ष के नीचे बना है। लेख है—"भगवतो कोनाग मेनस बोधि"।

छठे बुद्ध काश्यप का औरो की तरह ही सिंहासन न्यग्रोध वृक्ष के नीचे है। एक सुन्दरी श्रद्धा से उस पर झुक रही है। लेख—"भगवतो कसपस बोधि"।

अन्तिम बुद्ध शाक्यमुनि का बोधिवृक्ष पीपल एक महल के स्तम्भो द्वारा घिरा है। दो छत्र जिनमें पुष्प मालायें लटक रही हैं, वृक्ष के ऊपर लगे हैं। दोनों तरफ दो गगनचारी पुष्पमालायें लिये हैं। उनके नीचे दो पुरुष हाथ में कुछ लिए खडे हैं। महल के निचले भाग मे त्रिरत्नों से घिरा सिंहासन रखा है। लेख—"भगवतो सकमुनि नो बोधि"।

एक दूसरे शिलापट्ट में एक हाथियों का झुण्ड बोधिवृक्ष की पूजा कर रहा है। एक वेदिका की सूची पर एक हाथी शिखर वाले स्तम्भों का महल बना है। इन्ही के बीच क्रकुच्छन्द का बोधिवृक्ष शिरीष जान पड़ता है। दो अन्य शिलापट्टों पर हाथियों को बोधिवृक्ष की पूजा करते दिखाया गया है। एक शिलापट्ट में छः मृग बोधिवृक्ष और सिंहासन की अर्चना करते दिखाये गये हैं।

अन्य मूर्तियां

भरहुत में बहुतेरे देवलोकीय पुरुषों की आदमकद मूर्तियां मिली हैं। इनमें मुख्य कर देव, यक्ष-यक्षिणियां, नागों, अप्सराओं आदि की खुदे नामों की मूर्तियां है। यहां यक्ष-यक्षिणियां, नागों आदि का चित्रण हिन्दू देवी-देवताओं के रूप में दिखाया गया है। इस समय साधारण लोगों में इसका ही ज्यादा प्रचार था। इसी कारण बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए इनका चित्रण बहुत ही उपयुक्त समझा गया। सांची में भी इसी कारण इनका चित्रण बहुतायत से पाते हैं। कोई छः यक्षों—कुबेर, विरुढक, सूचिलोम, सुपावस आदि की मूर्तियां हैं।

जलवासी नाग प्रारम्भ में बुद्ध के उपासक माने जाते हैं। इस कारण नागों को विविध रूपों में हम भरहुत में पाते हैं। कहीं नागराज अपनी नागिनों के साथ, तो कहीं बुद्ध की पूजा करते दिखाये गये हैं। किसी में स्वयं बुद्ध नाग को उपदेश देते, तो कहीं चक्रवाक नाग या इलापत्र नाग धर्म वशीभूत हुए दिखाये गये हैं।

देव मूर्तियों में चुलका की और सिरिया की मूर्तियां हैं। कुछ एक मूर्तियों पर निर्देशक लेख न होने के कारण उनको पहिचानना कठिन है। इनमें कुछ अपने-अपने विशेष कारणों या वाहनों से पहिचानी जाती हैं। यथा गगिता सुपावस और घुलकोका अपने वाहन हाथी से,

चन्द्रा और सुदर्शना मकर से, महीमाता कमल से और सरस्वती अपनी वीणा से।

समुद्र कन्यायें

अप्सराएँ नृत्य, संगीत और सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध हैं। ये ज्यादातर तपस्वियों की तपस्या भग करने में लगी रहती हैं। भरहुत में मुख्य कर सुभद्रा, सुदर्शना, मिश्रकेशी और अलम्बुषा अप्सराओं को दिखाया गया है। एक शिलापट्ट में यह वाद्य यन्त्रों के साथ नृत्य करती दिखायी गई है। इस नृत्य का आयोजन बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने की खुशी में किया गया था।

अट्टालिकाएँ

विविध प्रकार के भवन भी भरहुत में दिखाये गये हैं। इनमें केवल राजमहल ही नही दिखाये गये हैं बल्कि प्रत्येक श्रेणी के पुरुषों के निवास स्थान हैं। कही राजाओं के महल हैं तो कहीं साधारण पुरुषों के मकान या झोपड़ियाँ हैं। कहीं मन्दिर या चैत्य हैं तो कही पर्णशालाएं हैं। इस प्रकार सभी प्रकार की इमारतें दिखायी गई हैं। राज महलों में तीन मंजिल का विजयत प्रासाद है जो स्तम्भों के ऊपर अवलम्बित है। ऊपर गुम्बददार छत है। दूसरा महल पुण्यशाला है जो प्रसेनजित के नाम से प्रसिद्ध है। बहुत से महलों के स्तम्भ अशोकीय स्तम्भों की नकल पर बने हैं। दो ऐसे ही स्तम्भो के शिखर पर हाथी बनाये गये हैं। धनवानों के साथ ही साथ गरीबों का होना भी आवश्यक है। एक तरफ महल बने हैं तो फिर गरीबों की झोंपड़ियाँ भी क्यों न भरहुत में होती। झोंपड़ियाँ एक मंजिली हैं जिनमें गुम्बददार छत वाला बड़ा कमरा है। हवा तथा प्रकाश आने के लिए भी छेद बने हैं। छतें छाई हुई हैं। मकान बिना

पकाई ईंटों का बना है। दीवारों में आले भी बने हैं। गोलाई गुम्बद वाली छतों वाली कुटियां भी दिखाई पड़ती हैं। इनके दरवाजे बहुत ही संकड़े हैं। छतें छाई हुई हैं। दीवारें गोबर से लीपी हुई हैं। यह योगियों के निवास स्थान हैं। 'जेतवन विहार के दृश्य में कोसम्ब और गंधकुटी दिखायी गई हैं। यह एकमंजिला है। इन कुटियों पर कलश भी बने हैं। दोमंजिला इमारतों में धर्मचक्र को धारण करने वाली इमारत मुख्य हैं। विभिन्न दृश्यों में स्तूप भी दिखाये गये हैं।

सार्वजनिक पुरुषों की मूर्तियां

भिन्न-भिन्न पुरुषों की मूर्तियों में काफी सजीवता और स्वाभाविकता है। राजपुरुषों में बुद्ध की माता मायादेवी, अजातशत्रु, प्रसेनजित आदि की मूर्तियां हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के गहने बहुतायत से पहने हैं। राजसी ठाठ भी पूर्णतया दिखता है।

साधारण स्त्री पुरुष ज्यादातर धोती पहने हैं जिसकी पट्टी की तह आगे की ओर लटकी रहती है। आदमी कन्धे पर दुपट्टा लटकाये हुए हैं लेकिन औरतों के सिवाय गहनों के कुछ नहीं है। सिर पर आदमी साफा भी बांधे रहते हैं। औरतें भी सिर पर ओढ़नी ओढ़े हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही गहने पहनने का शौक रखते थे। दोनों ही कुण्डल, हार, भुजबंद, मेखला आदि धारण करते थे। कुछ सुन्दरियों के हार में त्रिरत्न चिन्ह भी लटका रहता है। कपड़े बहुत ही महीन और सूती होते थे। ओढ़नियों और साफों पर कसीदा कढ़ा रहता है। स्त्रियां सुन्दरता के लिए अपने गालों आदि को गोदाती भी थीं। ऐसी ही गोदाई चोड़ पक्षी के मुंह पर फूलों से की गई है।

एक वेदिका स्तम्भ पर एक योद्धा की मूर्ति बनी है। इस योद्धा की शकल सूरत से इसको उत्तर पश्चिमी देश का वासी होना मालूम होता है। वह लम्बी बाहों का घुटनों तक लम्बा चोगा पहने है। पैरों में जूते और

बांयी तरफ तलवार लटक रही है। दायें हाथ में फूलों का गुच्छा लिये है। सिर के बाल छोटे और गुच्छेदार हैं। योद्धा का यह वर्णन मेगस्थनीज के समय के योद्धा के वर्णन से बहुत मिलता है। कुछ लेखक तो इसको असुर राज वेपचित्ति और कुछ इसे सूर्यदेव मानते हैं।

बहुत से शिखा बांधे जटीले साधु तपस्वी और अग्निपूजक, परिव्राजक अग्नि पात्र लिये, बाल और नाखून बढाये भी यहां अंकित हैं।

पशु-पक्षी

विभिन्न प्रकार के पशु और पक्षी भी यहां दिखाये गये हैं। इनमें कुछ अलौकिक पशु भी हैं। अलौकिक पशुओं में सिंह की पूंछ मयं एक हाथी और एक उड़ता घोड़ा है।

सिंह, गेंडा, बैल, हाथी, शूकर, हरिण, बिल्ली, भेड़, कुत्ता, गिलहरी, बन्दर आदि १४ प्रकार के साधारण पशु हैं। हाथी नाना प्रकार से दिखाया गया है। वह दौड़ते, खाते, चलते, पानी पीते, पानी उछालते व बोधिवृक्ष के सामने श्रद्धा से झुकता दिखाया गया है। बन्दर भी आदमियों से लड़ता, हाथियों को फासता, आदमियों से बातें करते दिखाया गया है। एक दृश्य में चार बन्दर एक हाथी को मोटे रस्से से बांधे लिये जा रहे हैं। दूसरे दृश्य में हाथी के पीछे ढोल और तुरही बजाते दिखाये गये हैं। एक अन्य दृश्य में बन्दर एक बड़े चिमटे से एक पक्षी का दांत निकाल रहे हैं। चिमटा रस्सी से बन्धा है जिसे एक हाथी खींच रहा है। हाथी को जल्दी खींचने के लिए बन्दर ढोल और तुरही बजा रहे हैं। एक बन्दर हाथी को गोद रहा है। एक दूसरे दृश्य में दो कुत्ते एक शूकर पर आक्रमण कर रहे हैं। पक्षियों में मुख्यः कर तोता, मोर, हंस, बत्तक, मुर्गा आदि हैं।

बहुत से गोलाकार तथा अर्द्ध-गोलाकार मण्डलों में अलंकरण किया गया है। इनमें मुख्य. कर पशुओं, पुष्पों और वृत्ताकार चित्रों का चित्रण

है। बहुत से फूलों में स्त्रियों व पुरुषों के मुख बने हैं। कई दृश्यों में अलंकरण के लिए कमल की बेलें भी बनी हैं। सबसे सुन्दर नमूना वह है जिसमें एक गमले में कमल दिखाये गये है जिसके पास ही कुछ पक्षी बैठे हैं। एक गोल मण्डल में गजलक्ष्मी बनी है।

विविध दृश्य

भरहुत के बहुत से दृश्यों पर विषय निर्देशक लेख नहीं हैं। इस कारण उनके विषय में जानना बहुत ही कठिन है, लेकिन इनमें बहुत से काम करते व्यक्तियों के दृश्य हैं। यह दृश्य उस काल के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं। ये दृश्य निम्नलिखित हैं:—

(१) एक भेड़ को लिए जाते हुए एक गडरिया।

(२) एक निर्धन पुरुष की झोपड़ी।

(३) दो बैलो की बैलगाडी, जिसके पास ही जमीन पर हांकने वाला बैठा है।

(४) अपनी मालकिन की सेवा करती हुई एक दासी।

(५) एक तपस्वी एक ऊंचे आसन पर चार शिष्यो के साथ बैठा है।

(६) खड़े हुए स्त्री पुरुष। स्त्री के हाथ में एक पक्षी है और पुरुष के हाथ में एक फूल।

(७) कुछ केले जैसे फल लिए हुए दो मनुष्य बैठे हैं। दो अन्य पुरुष खड़े हैं। भाव-तोल कर रहे है।

(८) मकान के आंगन में गृहस्वामिनी टोकरे की कुछ वस्तुओं को दूसरे टोकरे में खाली कर रही है जिसको शायद उसका पति पकड़े है। एक दूसरा आदमी भार सम्हाले है।

(९) एक झोपडे के छेद से एक स्त्री बाहर खडे दो आदमियों की बातें सुनने का प्रयत्न कर रही है।

(१०) एक ऋषि तीन स्त्री पुरुषों के साथ अपनी कुटिया में बैठा है। शायद यह ऋषि भारद्वाज हो और ये स्त्री पुरुष राम, सीता और लक्ष्मण हों।

(११) एक आदमी थाली में चपाती खाता दिखलाया गया है।

(१२) दो बन्दरों के साथ एक आदमी पानी के घड़े ले जा रहा है।

(१३) एक ऋषि एक शिकारी को हरिण मारने से रोक रहा है।

(१४) दो स्वदेशी व्यापारी दो विदेशियों से हाथी दांत बेचने के लिए भाव तोल कर रहे हैं।

(१५) एक मोढ़े पर बैठा ऋषि एक स्त्री से वार्तालाप कर रहा है।

(१६) दैनिक कार्यों में उपयोग होने वाली वस्तुएँ—बरतन, वाद्ययंत्र, नाव, रथ आदि की प्रतिकृतियां देखने योग्य हैं।

जातक कथाओं के दृश्य

भरहुत में अनेक जातकों के दृश्य हैं। गौतम के रूप में जन्म लेने के पहले बोधिसत्व कई प्रकार के पशु तथा मनुष्य रूप में जन्मे थे। अपने पूर्व जन्मों में वह सदा ही परोपकारी जीव रहे। इन्हीं का दिग्दर्शन यहाँ बहुत ही संक्षेप में कराया गया है। इन पर लिखे लेखों से दर्शक बहुत ही शीघ्र जातक कथा को पहचान लेता है। कुछ एक पर लेख नहीं है, लेकिन वह भी दृश्य देखने से ज्ञात हो जाते हैं। शिल्पकारों ने यही सोच कर चित्रण किया है कि देखने वाले दर्शक यात्री जातक कथाओं से पूर्णतया परिचित है।

(१) लटुकिक जातक—हाथी को पहाड़ के ऊपर चढते और फिर वहाँ से गिरते दिखाया गया है।

(२) *सुजात जातक—सुजात (बोधिसत्व)* बैल को दाना पानी देते दिखाया गया है।

(३) कुक्कुट जातक—मुर्गा पेड़ पर से बांग दे रहा है और नीचे बैठी बिल्ली उसे उतर आने को कह रही है।

(४) निग्रोधमृग जातक—वधिक कुल्हाड़ा लिए वनवान मृग के पास खड़ा है। उपवन को दिखाने के लिए पेड़ बना है।

(५) मिग पोतक जातक—बोधिसत्व तपस्वी को उपदेश दे रहे हैं, जो एक मृग के मर जाने का शोक कर रहा है।

(६) मखादेव जातक—राजा मखादेव कुर्सी पर बैठे नाई से बाल बनवा रहे हैं। दूसरे दृश्य में नाई राजा के सामने हाथ जोड़े खड़ा दिखाया गया है।

(७) भिस जातक—शक्रदेव कमल नालों को बोधिसत्व को देते दिखाये गये हैं। पीछे की ओर कुटिया के पास उनकी बहन, हाथी और बन्दर दिखाये गये हैं।

(८) घडिक जातक—घडिक एक फल का रस घड़े में निकाल रहा है।

(९) असदिस जातक—असदिस अपने ज्येष्ठ भ्राता बोधिसत्व को शत्रुओं से बचाने के लिए धनुष और बाण लिए खड़ा है।

(१०) चम्मसाटक जातक—भिक्षुक एक डण्डे पर कुछ लिये जा रहा है, उधर एक भेड़ा उस पर आक्रमण करने का विचार कर रहा है। दूसरे में भिक्षुक पूर्णतया धराशायी हो जाता है।

(११) मणिकण्ठ जातक—एक वैरागी और मणिकण्ठ नामक नाग दिखाये गये हैं। नाग के रत्न भी लगा है।

(१२) महाजनक जातक—राजा महाजनक, उनकी रानी सिवली और तीरंदाज दिखाये गये हैं।

(१३) वेस्संतर जातक—राजकुमार वेस्संतर अपने हाथों से उनके

हैं और दान की रस्म पूरी कर, घड़े से ब्राह्मण को जल देकर हाथी दान कर रहे हैं।

(१४) महाकपि जातक—राजा अपने सहचरों के साथ आम्रवृक्ष के नीचे खड़ा है। बोधिसत्व (महाकपि) दो वृक्षों के बीच झूल रहे हैं, जिनके ऊपर से दूसरे बन्दर निकल रहे हैं।

(१५) छद्दन्त जातक—बनारस की रानी के आज्ञानुसार वधिक हाथी के दांत काट रहा है।

(१६) अलम्बुसा जातक—एक तपस्वी एक मृगी से उत्पन्न शिशु को उठा रहा है।

(१७) महाबोधि जातक—एक तपस्वी अपने एक हाथ में छाता तथा दूसरे में डण्डे के एक सिरे पर कुछ बंधी वस्तुएँ लिये जा रहा है।

(१८) सस जातक—मृग (बोधिसत्व) वणिक को नदी के किनारे पर ला रहा है। एक राजा, हरिण की ओर तीर चला रहा है, लेकिन बाद में हाथ जोडे उपदेश सुन रहा है।

(१९) कक्कट जातक—हाथी अपने पैरों के नीचे केंकड़े कुचल रहा है।

(२०) दुमिप मक्कट जातक—बोधिसत्व बन्दर को पानी पिला रहे हैं, जो बाद में पेड पर चढ कर मुँह बना रहा है।

समीक्षा

भरहुत इस प्रकार विषयों की अनेकता और विभिन्नता के लिए प्रसिद्ध है। मूर्तियों में सौन्दर्य और पूर्णता है। इनमें सजीवता और स्वाभाविकता है। यह सब कुछ होते हुए भी इस कला में वह खूबी नहीं है जो मौर्यकाल में थी। इनमें वह सुथरापन नहीं जो अशोकीय स्मारकों में

है। अशोकीय कला और भरहुत की समानता करना न्याययुक्त भी नहीं है। अशोकीय कला राज कला है, वे कलाकार राजाश्रित थे। इधर भरहुत की कला लोक-कला है। इन स्मारकों के विभिन्न दृश्य, विभिन्न कलाकारों ने विभिन्न समयों में बनाये हैं। ये तो केवल दानी यात्रियों द्वारा बनवाये गये थे। अतः इनमें कई दक्ष और अदक्ष शिल्पकारों के हाथ लगे। फिर इनमें कैसे वह समानता और सुथरापन आता! यह कला भी केवल भरहुत तक ही नहीं रही। भरहुत से दूर स्थानों मथुरा, सारनाथ, बुद्ध गया आदि में यही लोक कला विद्यमान है। इस समय तक सर्व साधारण जनता में बौद्ध धर्म का पूर्णतया प्रचार हो गया था और इस कारण अपने धार्मिक विचारों को अपने ही लोकरूप में देखना चाहते थे। इसी कारण भरहुत लोककला उनके ही जीवन से ओतप्रोत है। उनके भावों की छाया है। सच पूछो तो इनको मूर्तियां न कह कर पत्थर से काटे गये चित्र कहना अच्छा होगा। सब ही चिपटे शैल की मूर्तियां हैं। ये चित्र भरहुत शैली की विशेषता हैं। भरहुत की कला का समय दूसरी शती ई० पू० का है। इस समय तक बुद्ध की मूर्ति का आविर्भाव नहीं हुआ था। भरहुत में जहाँ कहीं बुद्ध को दिखाने की आवश्यकता पड़ी वहीं सांकेतिक चिन्हों का प्रयोग किया गया। इसी काल में बने सांची में भी इसी प्रकार सांकेतिक चिन्हों—छत्र, धर्मचक्र, आसन आदि से बुद्ध का बोध कराया गया है। भरहुत का यह आधार विषय आज भी धर्म प्रचार का विषय बन रहा है।

¤ ¤

—५—

सांची

स्थिति

मध्य भारत राज्य की राजधानी भोपाल के पास भिलसा पांच बौद्ध स्मारकों के लिए प्रसिद्ध है। इसके चारों ओर-सोनारी, सतधारा, [illegible], अंधेर, सांची आदि में बहुत से बौद्ध स्मारक पाए गए हैं। इनमें सबसे ज्यादा और महत्वपूर्ण स्मारक सांची में पाये गये हैं। सांची भिलसा से दक्षिण-पश्चिम की ओर कोई ७ मील दूर है। सेन्ट्रल रेलवे की मुख्य लाइन पर यह भोपाल और भिलसा स्टेशनों के बीच पड़ता है। भिलसा बेस और बेतवा के संगम पर बसा है। इसका प्राचीन नाम विदिशा है, जो पूर्वी-मालवा की राजधानी थी। सांची (प्राचीन [illegible]) इसी के अन्तर्गत था। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के सांची लेख के अनुसार चौथी सदी के आस पास इसका नाम काकनादबोट भी मिलता है।

समय व इतिहास

सांची का प्रारम्भिक इतिहास तीसरी सदी ई० पू० से मिलता है,

जब कि युवराज अशोक उज्जैन का शासक था। महावंश के अनुसार अशोक ने विदिशा के नगर सेठ की पुत्री देवी से विवाह किया था। जिससे दो पुत्र—उज्जेनिय और महेन्द्र तथा एक पुत्री संघमित्रा उत्पन्न हुई थी। देवी विदिशा की होने के कारण विदिशा देवी शाक्यकुमारी कहलाती थी। महेन्द्र और संघमित्रा अपनी युवावस्था में बौद्ध धर्म का प्रचार करने लंका चले गये थे। देवी कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बी थी। उसी की प्रेरणा से विदिशागिरी पर उसकी पूजा के लिए स्तूप बनवाया गया। बाद में भिक्षुओं के रहने के लिए यहाँ एक विहार भी बनवाया गया। अशोक ने बाद में और भी बहुत से स्मारक यहाँ बनवाये। यहाँ की खुदाई में अभी तक अशोक का केवल एक स्तम्भ मिला है, जिस पर उसका लघु लेख खुदा है। लेख से ज्ञात होता है कि अशोक के समय में यहाँ एक बहुत ही बड़ा और महत्वपूर्ण विहार था। सम्राट् को डर था कि इस संघ में कहीं फूट न पड़ जाय और इसी कारण इस लेख में भिक्षु और भिक्षुणियों को संघ में किसी तरह की फूट डालने के विरुद्ध चेतावनी दी गई है। अशोक का यह स्तम्भ पहले ४० फीट था, लेकिन अब इसके टुकड़े ही रह गये हैं। स्तम्भ के ऊपर चार सुन्दर सिंहों की मूर्तियां थीं, लेकिन अब बहुत ही नष्ट प्रायः हालत में अलग से पड़ी हुई हैं। फिर भी इनकी आँखों, पैरों की फड़कती हुई नसों आदि का चित्रण भारतीय स्थापत्य कला का बहुत ही उत्तम नमूना है। इसका प्रत्येक भाग बहुत ही सुन्दरता से तराशा गया है। स्तम्भ आदि की पालिश आज भी जगमगाती है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि इस विशालकाय स्तम्भ को पाटलीपुत्र से लाया गया और फिर इस ऊँची जगह पर इसको खड़ा किया गया था। उस काल के शिल्प विशारदों की प्रज्ञता प्रशंसनीय है। अशोक के बाद यहाँ शुंगों ने अशोक के स्तूप पर दोहरी शिलायें लगवायी। इनके साथ ही स्तम्भ संख्या २५, बड़े स्तूप का आँगन वाला परिक्रमा पथ और दूसरे और तीसरे स्तूप इसी काल में बने। इस काल की मूर्तियों में विशेष सजीवता दिखाई नहीं पड़ती है। मूर्तियां अकड़ी-अकड़ी सी लगती हैं। मूर्तियों का चित्रण

चिपटा और कम उभारदार है। इस समय तक बुद्ध की मूर्तियां बननी आरम्भ नहीं हुई थीं। इसके बदले पूजा के लिये सांकेतिक चिन्हों का प्रयोग होता था।

ई० पू० ७७ के लगभग आंध्रों ने पूर्वी मालवा पर अधिकार कर लिया था। इनके समय में शिल्प कला का पूर्णतया विकास हुआ। भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने इसी काल के हैं। पश्चिमी भारत में मिले स्मारकों में सबसे प्रसिद्ध बड़े स्तूप के चारों तोरण हैं। इसी के आस पास मिले कुछ शिलापट्ट और तीसरे स्तूप का तोरण आंध्र काल के ही हैं। आंध्र नरेश सतकर्णी का, बड़े स्तूप के दक्षिणी द्वार पर खुदा एक लेख इन तोरणों को प्रथम शती ई० पू० में होना प्रकट करता है। तोरण विविध प्रकार की मूर्तियों और शिल्पकला के नमूनों से अलंकृत है। आकृतियां पूर्णतया सजीव और प्राकृतिक हैं। इन पर बने कुछ उड़ते जानवरों तथा कुछ फूलों की शैली इन कला-कुशल शिल्पकारों द्वारा किया जान पडता है। पत्थरों के रूप में बौद्ध धर्म की पूर्ण कथा यहां खुदी मिलती है।

आंध्रों के बाद पूर्वी मालवा पर क्षहरातों और बाद में पश्चिमी क्षत्रपों का राज्य हुआ। क्षत्रप कुशानों के अधीन थे। क्षत्रपों के समय की कुछ मूर्तियां यहां मिली हैं। यह सब ही मथुरा शैली पर बनी हैं। एक मूर्ति पर कुशान सम्राट् वासिष्क के राज्य वर्ष २८ का लेख भी मिला है। इसी काल के कुछ सिक्के भी यहां मिले हैं। सम्पूर्ण मालवा पर सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त द्वितीय का अधिकार हुआ। उसके समय गुप्त सवत ९३ (ई० सन् ४१२–१३) का बडे स्तूप की चहारदिवारी पर एक लेख भी है। गुप्तों का राज्य पश्चिमी मालवा पर ई० सन् ४८० तक रहा जब कि हूणों ने उसको विजय कर लिया, लेकिन पूर्वी मालवा पर गुप्तों का राज्य ई० सन् ५०० तक बना रहा जब कि उस पर भी तोरमाण ने अधिकार कर लिया। हूणों की विजय भी स्थायी न रही। थानेश्वर के वैस राजा

हर्षवर्धन ने सातवीं शती के आरम्भ में इसको विजय कर लिया और अपने साम्राज्य में मिला लिया। गुप्त तथा उसके बाद के समय के स्मारक ज्यादातर सांची पहाड़ी की ऊपरी सतह पर मिले हैं। इनकी वही शैली है, जैसी कि हम उत्तरी भारत के स्मारकों में पाते हैं। सब ही मूर्तियाँ पूर्णतया सजीव और कलापूर्ण हैं। मूर्तियो के अलंकरण में चमत्कार और कौशल का पूर्ण परिचय मिलता है। गुप्त सम्राट् हिन्दू धर्मावलंबी थे। अतः स्तूपों की जगह मन्दिरों ने ली। मूर्तिपूजा का आरम्भ पहली शती से ही आरम्भ हो गया था। साची में बुद्ध की मूर्ति इसी प्रकार के मन्दिरों में मिली है। बौद्धों के ये चैत्य पूर्णतया हिन्दू शैली पर बने हुए हैं। मन्दिरों का ऐसा बाह्य अलंकरण तक इनमें पाया जाता है, जो बौद्ध मन्दिरों में नही पाया जाना चाहिये। मूर्तियों में पूर्णतया सुडौलता और अवयवसंगति है। यह सुन्दरता इसके पहले की मूर्तियो में नही है। कला और विचारों का इनमें पूर्णतया मिश्रण है।

हर्ष के बाद का सांची का इतिहास अन्धकारमय है। सांची मध्यकालीन युग में कन्नोज के मिहिर भोज, मालवा के परमारों, अनहिलवाड़ा (पाटन) के चालुक्यों (सोलंकियों) आदि के अधिकार में रहा। इस काल के बहुत से स्तूप और मूर्तियाँ मिली हैं। बौद्ध धर्म और स्थापत्य कला की अवनति इनमें पूर्णतया टपकती है। ११वी शती के लगभग बने एक बौद्ध मन्दिर में हिन्दू शैली का काफी प्रभाव पड़ा दिखाई देता है। कलाकार यहाँ इस समय कला से केवल खिलवाड़ करते प्रतीत होते हैं। इनमें गुप्तकाल जैसी सुडौलता और अवयव संगति नहीं है। १३ वीं शती के लगभग सांची बहुत ही मामूली सा गांव रह गया। इसी समय के लगभग मुसलमानो के यहाँ आक्रमण हुये, जिन्होंने यहाँ के धार्मिक स्थानों को तोड़-फोड़ डाला। सन् १८१८ में जनरल टेलर ने सर्व प्रथम इसकी सुन्दरता का अनुमान कर, इसके प्राचीन गौरव को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया। इसके बाद तो इस पर कई लेख लिखे गये, जिससे लोगों का ध्यान उधर गया। सन् १८२२ ई० में सर्व प्रथम केप्टन जानसन

ने बड़े स्तूप की खुदाई आरम्भ की। इसके बाद सन् १८५१ में कनिंघम ने भी यहाँ खुदाई का दुस्साहस किया। इन खुदाइयों में यह स्मारक और भी ज्यादा नष्ट हो गये। सन् १९१२ और १९१९ में सर जान मार्शल ने सुव्यवस्थित और व्यापक रूप से इसकी खुदाई की। इनके प्रयत्न से बहुत सी भूगर्भस्थ वस्तुएँ प्रकाश में आईं जो यहाँ के संग्रहालय में रखी हुई हैं। अन्य स्मारकों की भी मरम्मत करवाई गई। इस प्रकार सांची पुनः कला प्रेमियों का एक दर्शनीय तीर्थ स्थान हो गया। आधुनिक ढंग पर एक बौद्ध मन्दिर १९५० ई० में बनाया गया और पुनः सांची को बौद्धायन का केन्द्र बनाने की परम्परा शुरू हुई।

सांची का बड़ा स्तूप

सांची का बड़ा स्तूप सबसे पहले अशोक या विदिशा के प्रारम्भिक शासकों के समय में बना था। मूल स्तूप पर दोहरी शिलायें बाद में आंध्रों के समय लगाई गई थीं जब कि इसके तोरण भी बने थे। प्रारम्भिक स्तूप के मौर्य काल में बनने की साक्षी उसकी ईंटें देती हैं। यह ईंटें दूसरे मौर्य कालीन स्मारकों की ईंटों की तरह १६" × १०" × ३" नाप की हैं। ऊपरी तथा नीचे वाली वेदिका भी इसी काल में बनी। मूल स्तूप की ऊंचाई आदि के विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता, क्योंकि वह दूसरी शिलाओं से पूर्णतया ढका हुआ है। वर्तमान स्तूप का तले का व्यास १२०′ तथा ऊँचाई ५४′ है। स्तूप के चारों ओर ऊँची मेधि है, जो प्रदक्षिणा पथ का काम देती है। इस मेधि पर पहुँचने के लिए दोहरी सोपान है। तले पर दूसरा प्रदक्षिणापथ है। दोनों प्रदक्षिणापथों को घेरे वेदिकायें हैं। ये वेदिकायें किसी लकड़ी के कटे नमूने की नकल पर बनी हैं। इन वेदिकाओं पर इनके दान देने वालों के नाम आदि अंकित हैं। बहुत से लेख प्रारम्भिक ब्राह्मी या गुप्ता ब्राह्मी लिपि में लिखे हुए हैं। प्रदक्षिणापथ की फर्श में लगी शिलाओं पर भी दान देने वालों के नाम

लिखे हैं। ऊपरी वेदिका कलात्मक चित्रणों से अंकित है। वेदिका स्तूप के चारों ओर चहार-दिवारी का काम देती है, जिसके निम्नलिखित चार भाग होते हैं:—

(१) बुद्ध अष्टकोणी सीधे स्तम्भ।

(२) दो खंभों के बीच लगने वाला आडा पत्थर जो सूची कहलाता है।

(३) दो सीधे स्तम्भों को जोड़ने वाला उन पर रखा सिर दल जो उष्णीष कहलाता है।

(४) पिण्डिका जिसमें सीधे खंभे फंसे रहते हैं।

स्तूप अर्ध गोलाकार है, जो ऊपर जाकर मिल जाता है। इसको खड कहते हैं। शिखर पर छत्र है, जिसको चौकोर वेदिका घेरे हैं। छत्र के दण्ड को सम्हालने के लिए एक चौकोर हर्मिका है। इस स्तूप की हर्मिका एक बड़ा सन्दूक है, जो १८ फीट ऊँचा है, जिसमें कभी भगवान् बुद्ध के अवशेष रखे थे।

स्तूप के चारों दिशाओं में चार बड़े तोरण हैं, जिन पर अनेक दृश्यों का सुन्दरता से अंकन किया गया है। चारों तोरण लगभग एक ही समय आन्ध्र काल के हैं, जैसा कि पश्चिमी और दक्षिणी तोरण पर एक ही दानी बलमित्र के नाम से ज्ञात होता है। प्रत्येक तोरण दो चौकोर स्तम्भों से बना है जो १४, १४ फीट ऊँचे हैं। इन पर शिखर भी हैं। शिखर चौमुखे हाथी, सिंह, बौने आदि से बने हैं। कुछ कमानीदार तेहरी बड़ेरियां का भार लिये हैं। इनके सिरे गोल हैं। बड़ेरियों को एक दूसरे से अलग करने के लिये चार चौकोर शिलायें हैं। इनके बीच की जगह में भांति-भांति के दृश्य दिखाये गये हैं। तोरण के शिखर पर बौद्ध चिन्ह, धर्म चक्र, त्रिरत्न, सिंह, हाथी आदि बने हैं। तोरण के दोनों स्तम्भ और बड़ेरियों आदि पर जातक कथायें, बुद्ध के जीवन की मुख्य घटनाएँ अंकित हैं। यह सब ही उभरे चित्र हैं, जिनमें पूर्ण सजीवता और बारीकी का चित्रण

है। प्रत्येक वडेरी का भार उसके नीचे वाली वडेरी सम्हाले है। सबसे नीचे वाली वडेरी का भार यानी तीनों का भार तोरण स्तम्भों पर के बने चौमुखे हाथियो या बौनों तथा सालभंजिका पर है। तोरणों पर दान देने वालों के नाम अंकित हैं, लेकिन इन पर भरहुत की तरह मूर्तियों के विषय निर्देशक लेख नहीं हैं। इस कारण इनका विषय पहचानने में बड़ी कठिनाई पड़ती हैं।

तोरणों का चित्रण

सांची के तोरण और वेदिकायें भरहुत की तरह यद्यपि पत्थर की रचनायें है फिर भी इनकी बनावट पूर्णतया काठ के नमूनों की नकल पर है। बहुत सी मूर्तियां तथा दृश्य दोहराये गये हैं, लेकिन फिर भी विभिन्न तोरणों मे काफी विभिन्नता है। यहाँ की ज्यादातर मूर्तियों का बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध होते हुए भी इनमें कहीं बुद्ध की मूर्ति नहीं पायी जाती है। इस काल तक भगवान् बुद्ध की मूर्ति पूजा नहीं होती थी, इस कारण बुद्ध के दर्शन के लिए उनके सांकेतिक चिन्हों का उपयोग किया जाता था। यहाँ भी भरहुत तथा अन्य ईसा के पूर्व कालीन स्मारकों की तरह बुद्ध की उपस्थिति सांकेतिक चिन्हो बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, आसन आदि से की गई है। बुद्ध के जीवन की मुख्य पांचो घटनाओं—जन्म, महल से अभियान, निर्वाण, प्रथम उपदेश और परिनिर्वाण–को चारों तोरणों पर बहुतायत से दिखाया गया है। जन्म का दृश्य कमल या दो नागों के मध्य कमलासीन माया देवी द्वारा दिखाया गया है। दोनो ओर से हाथी उसके सिर पर पानी गिरा रहे हैं। किसी में वह खड़ी भी दिखाई गई है। प्राचीन बौद्धिक विचारो के अनुसार बुद्ध की प्रतिमा इनमें नही दिखायी गई है। बुद्ध घोड़े पर कपिलवस्तु को छो ते भी दिखाये गये हैं। एक ओर शहर है, घोड़ा भागा जा रहा है। बुद्ध के बदले घोड़े पर छत्र बना है। घोड़े की टापों की आवाज को रोकने के लिए देवगण टाप को हाथों

पर सम्हाल रहे हैं। बुद्ध का निर्वाण प्राप्त करना पीपल वृक्ष के नीचे रखे सिंहासन से दिखाया गया है। जिसमें कुछ लोगों को पूजा करते दिखाया गया है। बुद्ध अपना प्रथम उपदेश सारनाथ में देते सिंहासन पर रखे धर्मचक्र द्वारा दिखाये गये हैं। मृगदाव को दिखाने के लिए दो मृग खड़े है। बुद्ध की मृत्यु का दृश्य स्तूप के द्वारा दिखाया गया है, जिसकी कुछ लोग पूजा कर रहे हैं।

इन दृश्यों के अलावा अपने सहायकों के साथ अन्य दृश्य भी बहुधा दोहराये गये हैं। बहुत से पशु—बैल, घोड़ा, सिंह, हाथी, बकरी, ऊँट आदि तथा पक्षी—मोर, हंस आदि की भी मूर्तियाँ है। नाना प्रकार की बेलें, कमल आदि भी बहुत ही सुन्दरता व कलापूर्ण ढंग से दिखायी गई हैं। प्रदक्षिणा पथ पहुँचने के पहले पूर्वी तोरण पर अशोक द्वारा बोधिवृक्ष की पूजा दिखायी गई है। राजा अपने राजसीठाठ के साथ रानी सहित हाथी से उतर रहा है। एक दृश्य में शुद्धोधन अपने पुत्र का आदर सत्कार कर रहे हैं। राजा बिम्बिसार भी एक दूसरे दृश्य में राजगृह से बुद्ध के दर्शन के लिए जा रहे हैं। खम्भों पर सातों बुद्धों को उनके बोधिवृक्षों के नीचे रखे सिंहासनों द्वारा सांकेतिक रूप से दिखाया गया है। उनके स्तूप भी बने हैं, जिनकी पूजा की जा रही हैं। एक दृश्य में बुद्ध नंरंजना नदी को पार कर रहे हैं। दक्षिणी तोरण पर निम्नलिखित दृश्य दिखाये गये हैं:—

(१) अशोक रामग्राम (नेपाल तराई) के स्तूप के दर्शन कर रहा है।

(२) सातों बुद्धो के लिए तीन स्तूप और चार बोधिवृक्ष बने हैं।

(३) बुद्ध के अवशेषों के लिए सात राज्यो का कुशीनारा के मल्लों से युद्ध हुआ था। इस दृश्य में कुशीनारा का घेरा पडा है। दूसरी तरफ अवशेषों को जीत कर ले जारहे हैं।

(४) अशोक को अपनी रानियों के साथ मृगदाव में दिखाया गया है।

(५) अशोक बोध गया में भी रानियों के साथ है।

(६) छदन्त जातक। हाथियों का गिरोह दिखाया गया है।

इस तोरण के दृश्य सबसे सुन्दर हैं। जैसी कुशलता और कला इसमें दिखाई पड़ती है, वैसी और किसी तोरण में नही है। पश्चिमी तोरण भी कला पूर्ण है। इसमें चारों तोरणों के सामान्य दृश्यों के अलावा निम्न-लिखित दृश्य देखने योग्य हैं:—

(१) कुशीनारा के मल्ल नेता हाथी पर बुद्ध के अवशेष ले जा रहे हैं। नगर द्वार के पास साल वृक्ष दिखाया गया है, जिसके नीचे बुद्ध ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था। मल्ल लोग इस अवसर पर हर्ष मना रहे हैं।

(२) इस दृश्य में अवशेषों के लिए युद्ध हो रहा है। प्रत्येक राज्य के छत्र दिखाये गये हैं, जो अपने अपने राज्य के सूचक हैं।

(३) छदन्त, महाकपि और श्याम जातक की कथा के दृश्य।

(४) बुद्ध का सिंहासन पीपल के वृक्ष के नीचे है। मार की सेना हार कर भाग रही है। देवता इस विजय पर हर्ष मना रहे हैं।

सबसे आखरी तोरण है उत्तर का, जहां कि यात्रा की परिक्रमा समाप्त होती है। इस द्वार के अंकित दृश्य दूसरे तोरणों के दृश्य की भांति कलापूर्ण नही है। इस पर निम्नलिखित दृश्य दिखाये गये हैं:—

(१) सातों बुद्धों के सिंहासन वृक्ष के नीचे दिखाये गये हैं। दूसरे पास के दृश्य में पांच स्तूप और दो वृक्ष हैं।

(२) मार अपनी कन्याओं और सेना की सहायता से बुद्ध को विचलित करने के प्रयत्न में है। बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे वज्रासन में बैठे हैं।

(३) अलम्बुसा वेस्सन्तर और छदन्त जातक के दृश्य।

(४) बुद्ध अपनी माता माया देवी को स्वर्ग में उपदेश दे संकाश्य में उतर रहे हैं।

(५) राजा शुद्धोधन बुद्ध से कपिलवस्तु के बाहर मिल कर उन्हें तथा उनके संघ को एक उपवन दान कर रहे हैं।

(६) एक बन्दर बुद्ध को शहद भरा प्याला दे रहा है।

(७) अनाथ पिंडक सेठ बुद्ध को जेतवन दान कर रहा है। सोने के सिक्के चारों ओर फैले हैं।

(८) कौशल नरेश प्रसेनजित बुद्ध से मिलने जा रहा है।

(९) बुद्ध श्रावस्ती में अपना अलौकिक चमत्कार दिखा रहे हैं।

सांची के अन्य स्मारक

सांची पहाड़ी पर इस बड़े स्तूप के चारों ओर बहुत से स्तूप हैं। यह स्तूप बाद में बड़े स्तूप की खुदाई के समय साफ कर दिये गये। अब बहुत ही कम स्तूप रह गये हैं। इन स्तूपों में बहुत से गुप्तकाल के भी हैं। एक स्तूप में सारिपुत्र और महामोगालान के अवशेष थे। इस स्तूप का केवल एक ही तोरण है। इस तोरण के अलंकरण की शैली बड़े स्तूप के तोरणों के समान ही है। इसके बनने का समय भी लगभग यही था।

दूसरे स्तूप इतने महत्व के नहीं हैं। स्तूप संख्या १२ में एक चौकी पर लेख मिला है जिससे ज्ञात होता है कि यहाँ कुषाण काल में बोधिसत्व मैत्रेय की मूर्ति स्थापित की गई थी। मूर्ति का ऊपरी भाग गायब है।

इन स्तूपों के अलावा कुछ स्तम्भ और मन्दिर भी यहाँ हैं। स्तम्भ तो काफी ज्यादा संख्या में पाये गए हैं। सबसे मुख्य और महत्व का स्तंभ अशोक की लाट है। इस भाग पर चार बैठे सिंहों की मूर्तियाँ थीं। दूसरा स्तम्भ ई० पू० दूसरी शती का है, जैसा कि इसकी शैली बतला रही है। यह स्तम्भ १५ फीट १ इंच ऊँचा है। इसके शिरोभाग पर भी

शायद सिंह प्रतिमा थी, लेकिन अब वह गायब है। इस पर बाद में एक लेख भी अंकित किया गया था। तीसरा स्तम्भ गुप्तकाल का है, जैसा कि उस अंकित लेख की लिपि से ज्ञात होता है। यह स्तम्भ २२ फीट ६ इंच ऊंचा है। इस पर सिंह शिखर और धर्मचक्र है। इस में वह सुन्दरता नहीं, जो मौर्य स्तम्भों में है और न इसमें वह सजीवता भी है। उत्तरी तोरण के पास ही गुप्तकाल का एक और विशालकाय स्तम्भ है। इनका तला चौकोर है। स्तम्भ में मौर्यकालीन स्तम्भों की तरह पालिश भी नहीं। पूर्व तोरण के पास ही एक और स्तम्भ के टुकड़े मिले हैं। एक परगहे का तथा दूसरा शिखर का टुकड़ा है। यह भी गुप्तकाल के ही हैं।

बड़े स्तूप के दक्षिणी तोरण के सामने नीचे की ओर एक मन्दिर है। इसका नकशा कार्ली के चैत्यों से काफी मिलता है। मन्दिर के स्तंभों को देखने से यह सातवीं शती का मालूम होता है। इसी काल की यहां कुछ मूर्तियां भी मिली हैं। एक मूर्ति पर भूमि स्पर्श मुद्रा में कमलासीन बुद्ध दिखाई देते हैं। इस मन्दिर के पास एक और पांचवी शती का यूनानी शैली का मन्दिर है। कमलासीन बुद्ध की मूर्ति है। यह भी सातवीं शती के लगभग बना। मन्दिर के प्लेटफार्म (चबूतरे) की खुदाई में यहां से एक ७'६" की नग्न मूर्ति मिली है। यह मूर्ति पाचवी शती के लगभग बनी होगी।

सांची पहाडी के पश्चिमी उतार की तरफ एक स्तूप है। इस स्तूप में मौर्यकालीन बौद्ध अर्हतों की अस्थियां मिली हैं। ये सब चार सन्दूकों में प्राप्त हुई हैं। इनके ढक्कनों पर अर्हतों के नाम अंकित हैं। इन्होंने अशोक की बुलवायी हुई तीसरी बौद्ध सभा में भाग लिया था और बाद में धर्म प्रचारार्थ विभिन्न प्रदेशों को गये थे। अतः यह स्तूप अशोक की मृत्यु के बाद ही बना होगा। यहाँ से मिली वेदिकाओं पर भी बुद्ध के जीवन की चारों मुख्य घटनायें दर्शायी गयी हैं, लेकिन इनमें पहले जैसी सुन्दरता

और सजीवता नहीं है। इनके अलावा नागों, यक्षिणियों तथा विविध पशुओं प्राकृतिक और अप्राकृतिक की मूर्तियां भी हैं।

समीक्षा

सांची की कला का मुख्य विषय बौद्ध धर्म का प्रचार है। यों तो उसमें धर्म निरपेक्ष तत्वों का समावेश अवश्य है, परन्तु कलाकार का मुख्य ध्येय अपने देवता के विश्वास, चरित्र, सिद्धान्त व आख्यायिकाओं का चित्रण करना था। कला के क्षेत्र में सांची के स्तूप भरहुत के स्तूपों की तरह महत्वपूर्ण हैं। बुद्ध की मूर्तिकला का यहां पर भी अभाव रहा। भरहुत की तरह सांची मुसलमानी-युग के विनाशकारी तत्वों से बचा रहा। १९ वीं शती के मध्यकालीन अर्द्धशिक्षित पुरातत्व प्रेमियों के कारण सांची की कला-कृतियों का नुकसान हुआ परन्तु शीघ्र ही भारत सरकार द्वारा संरक्षण मिलने पर भारत की महानता का सूचक बच गया। एक नया विहार आधुनिक कला के ढंग पर सन् १९५० ई० में सांची में बनाया गया है। आज सांची पुरातत्व पुनर्निर्माण का विजय स्तम्भ है।

¤ ¤

—६—

तक्षिला

स्थिति

प्राचीन काल में तक्षिला अथवा तक्षशिला विश्वविद्यालय भारतवर्ष का एक अति प्रसिद्ध विद्या केन्द्र था। यह नगर वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिण्डी नगर से २० मील उत्तर-पश्चिम में है। तक्षिला एक रेलवे स्टेशन भी है। तक्षिला के प्राचीन खण्डहर हथिग्राल पहाडी की उत्तरी घाटी में स्थित हैं। ये खण्डहर तीन विभिन्न शहरों में वटे हैं, जो एक दूसरे से लगभग ४ मील दूर हैं। सबसे पुराना और दूर का शहर भीरमठ है, जो यूनानियों के आने के पहले पूर्णतया आवाद था। वाद में यह नगर उजड़ गया और इसके वदले सिरकप आवाद हुआ। भीरमठ में मुख्यकर मौर्यकाल व उसके पूर्व के अवशेष मिले हैं। सिरकप नगर की चहारदीवारी अभी तक दिखाई देती है, जो यूनानियों ने वनवायी थी। इसकी लम्वाई लगभग ६००० गज है। इसके आस पास की जगह अब वावरखाना या कच्चा कोट कहलाती है क्योंकि इसके चारो ओर मिट्टी का कोट था। तक्षिला

का अन्तिम नगर सिरसुख है। यहाँ कुशान व उत्तर कुशान काल के भग्नावशेष मिले हैं। इसको शायद कनिष्क ने बसाया था। इन तीनों शहरों के आस-पास बहुत से और भी बौद्ध स्तूप और विहार मिले हैं। इन सब में धर्मराजिक स्तूप और कुणाल स्तूप व विहार प्रसिद्ध हैं।

समय व इतिहास

इसका प्राचीन नाम तक्षशिला या तकसिला था, लेकिन यूनानियों ने इसे तक्षिशा नाम से उल्लेख किया है। कहा जाता है कि भरत के पुत्र तक्ष ने इस नगरी की नींव डाली थी। महाभारत में इसका नाम उन विजित देशों में है जिसे जनमेजय ने जीतकर नाग यज्ञ किया था। महाभारत में तक्षिला गान्धार जनपद की राजधानी थी। पांचवी शती ई० पूर्व के लगभग यह ईरानियों द्वारा जीता गया। उनके समय में भीरमठ तक्षिला का मुख्य नगर था। डेरियस के एक शिला लेख से ज्ञात होता है कि उसके भारतीय प्रदेश सम्पूर्ण राज्य में सबसे ज्यादा धनवान थे। यह प्रदेश गान्धार ही था, जिसकी राजधानी तक्षिला थी। यहाँ से तीसरी शती ई० पूर्व का एक शिलालेख मिला है। यह लेख सिरकप से मिले एक अठकोने स्तम्भ पर अंकित है। इसकी लिपि अरेमीक तथा भाषा हिब्रू है, जो अशोक के समय ईरान में प्रचलित थी। इस लेख पर प्रियदर्शी नाम भी अंकित है। खरोष्ठी लिपि इसी अरेमिक लिपि से निकली है। तक्षशिला की विशेष प्रसिद्धि उसके शिक्षण केन्द्र होने के कारण थी। ईसा से सातवीं शती पूर्व में ही यह विश्व का एक सर्वश्रेष्ठ विद्यापीठ माना जाता था। जातक कथाओं तथा अन्य सूत्रों से ज्ञात होता है कि तक्षिला नगर विश्वविद्यालय के लिए इस काल में बहुत प्रसिद्ध था। यहाँ साहित्य तथा विज्ञान, मुख्यकर चिकित्सा शास्त्र के लिए, दूर दूर से विद्यार्थी पढ़ने आया करते थे। प्रत्येक विषय के लिए यहाँ अलग-अलग विद्यालय थे। संस्कृत, व्याकरण, पाणिनि और राजनीति

शिरोमणि चाणक्य ने इसी विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। बुद्ध के मित्र, अनुयायी और बिम्बिसार के राजवैद्य जीवक ने चिकित्सा शास्त्र का यहीं अध्ययन किया था। यहाँ के शिक्षक अपनी विद्वता के लिये सर्वत्र प्रख्यात थे। वेद वेदांगों और षड् दर्शनों से लेकर आचार नीति, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थ शास्त्र, ज्योतिष आदि की शिक्षा यहां दी जाती थी। यहां की शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी, लेकिन लिपि ब्राह्मी तथा खरोष्टी थी। शिक्षा केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य ही पाने के अधिकारी थे। मौर्यकाल से कुशाणकाल तक इसकी बराबर उन्नति और प्रसिद्धि होती गई। इसके बाद तक्षिला पतन की ओर उन्मुख हुआ। पांचवीं शती में भारत पर हूणों के आक्रमण होने से तक्षिला की बहुत क्षति हुई और इसके साथ ही यहां का विश्वविद्यालय भी नष्ट हो गया।

मौर्यकाल के यहाँ भीरमठ से बहुत से देशी ठप्पेदार सिक्के और कुछ सोने के गहने मिले हैं। कुछ सिक्के सिकन्दर के समकालीन राजा सहभूति के मिले हैं। तीसरी शती ई० पू० के लगभग के डिओडोटस के कुछ सोने के सिक्कों के साथ दो बहुत ही सुन्दर व कलापूर्ण सोने और चांदी के गहने भी मिले हैं। इसी काल में ही धर्मराजिक स्तूप, कुणाल स्तूप और इसके पास के विहार बने थे।

अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य छिन्नभिन्न हो गया। साम्राज्य की यह दशा देख कर यूनानियों ने तक्षशिला पर आधिपत्य जमाया। इनके सिक्के पंजाब और सीमाप्रान्त (पाकिस्तान) में काफी संख्या में मिले हैं। तक्षशिला के राजा अन्तिल्टिडस के विदिशा को भेजे एक राजदूत हैलिओडोरस का एक स्तम्भ लेख विदिशा में मिला है। यह स्तम्भ इसी यूनानी ने स्थापित किया था। वह अपने को भागवत कहता था। इस प्रकार वह यूनानी होते हुए भी हिन्दू धर्मावलम्बी था। सिरकप की खुदाई में सबसे नीचे वाली तह में इन यूनानियों के सिक्के, मूर्तियाँ व बर्तन आदि मिले हैं। यूनानी यहां पर अधिक वर्ष राज्य न कर सके।

शकों और पार्थिअनों ने उन्हें यहां से मार भगाया। उनके सरदार मौस ने ८० ई० पू० के लगभग तक्षशिला पर अधिकार कर लिया। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा एजस प्रथम था। जिसने अपना राज्य यमुना के तट तक फैलाया। इस काल के स्तूपों और विहारों में मल्लर और चील स्तूप तथा मोहरा मौरादू कलवान, पिप्पल और जोलिअन के स्तूप और विहार प्रसिद्ध हैं। यह सब ही सिरकप में स्थित हैं। जान मार्शल के विचारों से हथिआल पहाड़ी के पूर्व की गिरी का किला भी उसी समय में बना। यूनानी विचारों का प्रभाव यहां पर काफी पड़ा, जैसा कि इस काल के मिले अवशेषों से ज्ञात होता है। वास्तुकला के अनेक नमूने इसकी साक्षी हैं। स्तम्भों और इमारतों में यह शैली मुख्यकर पाई जाती है। अन्य अवशेषों में निम्नलिखित मुख्य हैं:—

(१) चांदी का बना डिओनिसस का सिर और सिक्के।

(२) मिश्र के बाल देवता हरपोक्रेट्स जो शांति के देवता माने जाते हैं, की तांबे की मूर्ति।

सिरकप राजधानी होने के कारण यहां बहुत से चांदी के सिक्के और स्तूप मिले हैं। सबसे महत्वपूर्ण यहां की खोज में मिली जो वस्तुएं हैं वे हैं—एजस प्रथम का शिला लेख और स्तूप में मिली अस्थियां।

ई० सन् ६४ के लगभग कुजूल कडफिसस ने पार्थिअनों से तक्षशिला जीत लिया। कुषाण तथा कुषाणों के बाद के वंश—हूणों आदि के समय के अवशेष तक्षशिला की तीसरी व अन्तिम नगरी सिरसुख (वर्तमान हजारा जिला, सीमाप्रान्त पाकिस्तान) से मिले हैं। अभी तक इस स्थान की आधुनिक ढंग से खुदाई नहीं हुई है अतः इसके लिए कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। कुषाणों की विजय के कारण बौद्ध स्तूपों और विहारों में एक नई कला की धारा प्रवाहित हुई। सम्राट् कनिष्क द्वारा अपनी राजधानी पेशावर (पुरुषपुर) में स्थापित किए हुए स्तूपों में यह प्रगट हुई थी। अतः कला को और भी उत्तेजना मिली।

एक नई शैली का आविर्भाव हुआ, जो गान्धार शैली कहलायी। इस शैली की हजारों मूर्तियां तक्षशिला में प्राप्त हुई हैं। इन सबका मुख्य विषय बौद्ध धर्म है, लेकिन शैली यूनानी हैं। यह सब की सब स्वात घाटी से मिले काले स्लेट पत्थर की बनी है। किसी भी मूर्ति पर अभी तक ऐसा कोई लेख नहीं मिला है जिससे इनका निर्माण काल ज्ञात हो सके।

भीर मठ

यह सम्भवतः पुरानी तक्षशिला की भूमि है व संग्रहालय के पास में है। यहां की खुदाई में चार स्तर मिले हैं। सबसे ऊपर का तीसरी शती ई० पू० का, उसके नीचे का मौर्य काल का, उसके बाद का प्राक् मौर्य-काल व अन्तिम छठी या सातवीं शती ई० के लगभग का है। पहले स्तर में कोई विशेष उल्लेखनीय अवशेष नहीं मिले हैं। दूसरे स्तर में कुछ रहने के मकानों के खण्डहर सकड़ी गलियों में मिले हैं। इन मकानों का कोई सुव्यवस्थित ढांचा नहीं है। मकानों के पास ही कुछ चौकोर कुएँ आदि हैं जो पीने के पानी के लिए नहीं बल्कि कचरा आदि डालने के लिए हैं। दो एक कुएँ मिट्टी के बर्तन आदि से पटे मिले हैं। यहां की मिली वस्तुओं में मुख्यकर मिट्टी के बर्तन, खिलौने, मूर्तियां, हड्डियों व हाथी दांत की शृंगारिक वस्तुएँ, सोने व तांबे के गहने व सिक्के आदि हैं। इस जगह के मिले मूल्यवान पत्थरों पर बहुत ही ओपदार पालिश है। सोने के गहनों पर भी काम अच्छा किया गया है। बहुत से सिक्के व जवाहरातों के मिले ढेरों में मुख्य चांदी के टप्पेदार सिक्के हैं। सोने का डिओडोटस का सुनहरा सिक्का, एक सोने का कड़ा आदि हैं। यह ढेर तीसरी शती ई० पू० का है जब कि मौर्यों की विजय के समय यहां वालों ने अपनी सम्पत्ति को इधर-उधर छिपा दिया था।

सिरकप

दूसरी शती ई० पू० के आरम्भ में भीरमठ से राजधानी बदलकर सिरकप हो गई जो यूनानियों, शकों, पल्लवों और कुशानों के अधिकार में रही। यह नगर पूर्णतया मिट्टी की बनी चहार दिवारी से घिरा था जो लगभग २० से ३० फीट ऊंची थी। इस दीवार में पत्थर भी पाए गए हैं। यहां की मुख्य इमारतों में एक अर्ध गोलाकार बौद्ध मंदिर और कुछ जैनियों के विहार हैं। एक राजमहल भी यहां स्थित था जो ३५० या ४०० वर्ग फीट था। यह प्रथम शताब्दी का ज्ञात होता है लेकिन इसकी मरम्मत व घटाई बढाई बाद में होती रही, प्रतीत होती है। महल के सभी दरवाजे छोटे हैं। महल, दीवाने आम, दीवाने खास, संतरी गृह, अतिथि-गृह, जनानखाना, मरदाना आदि में बंटा है। महल में हमाम भी बने हैं। प्राचीनकाल में अपने ढंग का बना महल यह एक ही है। यह महल मार्शल के अनुसार असीरिया के महलों की नकल पर बना है।

इस महल के मृण्मूर्तियां, मिट्टी के बर्तन, बहुत सी लोहे तांबे की वस्तुएँ, सिक्के आदि मिले हैं। सिक्के मुख्यकर एजस प्रथम व द्वितीय, कडफीसस प्रथम आदि के हैं। सिक्के ढालने का यंत्र भी मिला है। साधारण लोगों के मकान पत्थर के बने हैं, जिनकी छतों में लकड़ी बहुतायत से काम में ली गई है। प्रत्येक गृह में पूजागृह भी होता था ऐसा प्रतीत होता है। मकानों में तहखाने बने रहते थे। यहां एक पूजागृह है जो कोरिंथियन शैली पर बना है। मध्य के ऊपर जाने की सीढ़ी बनी है। इसके दोनों ओर की दीवारों में आले बने हैं। इन आलों पर दो मुंही चीलें बनी हैं। ऐसी चीलों का चित्रण प्रारंभ में स्पार्टा तथा बेबीलोनियां की मूर्तियों पर होता था, लेकिन यहां इनका प्रचार सीथियनों ने किया। इसका गुम्बद पहले चित्रणों से अलङ्कृत था। इस पर बने स्तूप के चारों ओर पहले वेदिका बनी थी जिसके टुकड़े आंगन में बिखरे मिले हैं। गुम्बद पर भी पहले तीन छत्र थे।

एक सफेद संगमरमर के अष्टकोणी स्तम्भ पर एक खंडित अरेमिक शिलालेख मिला है जो किसी उच्च पदाधिकारी से सम्बन्धित है। एक स्तूप से बहुत से जवाहरात, तांबे की हरमोक्रेटस की मूर्ति, सोने के गहने, कामदेव की मूर्तियाँ, सिक्के आदि मिले हैं। सिरकप की खुदाई में बहुत से सोने चादी के सिक्कों के ढेर मिले हैं। कई प्रकार के बर्तन, खिलौने आदि भी मिले हैं जो अब स्थानीय संग्रहालय में रखे हैं। यह सभी कुशाण काल के हैं। नगर के एक भाग में विश्वविद्यालय भी स्थित था। सैकड़ों विद्यार्थियों और शिक्षकों के रहने के लिए मकान बने ज्ञात होते हैं। कमरे काफी बड़े बने हैं। सिरकप नगर भी कितनी ही बार बना और बिगड़ा होगा क्योंकि खुदाई के बाद इसके ६ स्तर मिले हैं।

धर्मराजिक स्तूप

धर्मराजिक स्तूप संग्रहालय से दो मील उत्तर की ओर है। इसके चारों ओर अनेक छोटे-छोटे स्तूप और विहार हैं। इनमें मिट्टी की अनेक सुन्दर बौद्ध मूर्तियाँ हैं। यहाँ बुद्ध की एक मूर्ति और ३५५ मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं जो एजेसस्र, हुविश्क व वसुदेव की हैं। धर्मराजिक स्तूप के दक्षिण पूर्व मे कलावन विहार के खंडहर हैं। इसकी इमारते तीन खंड की हैं। प्राचीन तक्षशिला का विश्वविद्यालय यही पर था।

सिरकप के उत्तर की ओर जाडियल के खडहर हैं। यहाँ सूर्य देवता का अति भव्य मन्दिर था। जाडियल से ढाई मील उत्तर पूर्व में मोहरा मोराडू नामक एक पहाडी पर स्थान है। यहाँ पर बौद्ध विहारो व स्तूप के कई भग्नावशेष हैं। यहाँ पर कई मिट्टी की बनी हुई कलापूर्ण बुद्ध मूर्तियाँ भी मिली हैं।

सिरकप

दूसरी शती ई० पू० के आरम्भ में भीरमठ से राजधानी बदलकर सिरकप हो गई जो यूनानियों, शकों, पल्लवों और कुशानों के अधिकार में रही। यह नगर पूर्णतया मिट्टी की बनी चहार दिवारी से घिरा था जो लगभग २० से ३० फीट ऊंची थी। इस दीवार में पत्थर भी पाए गए हैं। यहां की मुख्य इमारतों में एक अर्ध गोलाकार बौद्ध मंदिर और कुछ जैनियों के विहार हैं। एक राजमहल भी यहां स्थित था जो ३५० या ४०० वर्ग फीट था। यह प्रथम शताब्दी का ज्ञात होता है लेकिन इसकी मरम्मत व घटाई बढाई बाद में होती रही, प्रतीत होती है। महल के सभी दरवाजे छोटे हैं। महल, दीवाने आम, दीवाने खास, संतरी गृह, अतिथि-गृह, जनानखाना, मरदाना आदि में बटा है। महल में हमाम भी बने हैं। प्राचीनकाल में अपने ढंग का बना महल यह एक ही है। यह महल मार्शल के अनुसार असीरिया के महलो की नकल पर बना है।

इस महल के मृण्मूर्तियां, मिट्टी के बर्तन, बहुत सी लोहे तांबे की वस्तुएँ, सिक्के आदि मिले हैं। सिक्के मुख्यकर एजस प्रथम व द्वितीय, कडफीसस प्रथम आदि के हैं। सिक्के ढालने का यंत्र भी मिला है। साधारण लोगों के मकान पत्थर के बने हैं, जिनकी छतों में लकड़ी बहुतायत से काम में ली गई है। प्रत्येक गृह में पूजागृह भी होता था ऐसा प्रतीत होता है। मकानों में तहखाने बने रहते थे। यहां एक पूजागृह है जो कोरिंथियन शैली पर बना है। मध्य के ऊपर जाने की सीढी बनी है। इसके दोनों ओर की दीवारों में आले बने हैं। इन आलो पर दो मुंही चीलें बनी हैं। ऐसी चीलो का चित्रण प्रारंभ में स्पार्टा तथा बेबीलोनियां की मूर्तियों पर होता था, लेकिन यहां इनका प्रचार सीथियनों ने किया। इसका गुम्बद पहले चित्रणों से अलंकृत था। इस पर बने स्तूप के चारों ओर पहले वेदिका बनी थी जिसके टुकड़े आगन में बिखरे मिले हैं। गुम्बद पर भी पहले तीन छत्र थे।

एक सफेद संगमरमर के अष्टकोणी स्तम्भ पर एक खंडित अरेमिक शिलालेख मिला है जो किसी उच्च पदाधिकारी से सम्बन्धित है। एक स्तूप से बहुत से जवाहरात, तांबे की हरमोक्रेटस की मूर्ति, सोने के गहने, कामदेव की मूर्तियां, सिक्के आदि मिले हैं। सिरकप की खुदाई में बहुत से सोने चांदी के सिक्कों के ढेर मिले हैं। कई प्रकार के बर्तन, खिलौने आदि भी मिले हैं जो अब स्थानीय संग्रहालय में रखे हैं। यह सभी कुशाण काल के हैं। नगर के एक भाग मे विश्वविद्यालय भी स्थित था। सैकड़ों विद्यार्थियों और शिक्षकों के रहने के लिए मकान बने ज्ञात होते हैं। कमरे काफी बड़े बने हैं। सिरकप नगर भी कितनी ही बार बना और बिगड़ा होगा क्योंकि खुदाई के बाद इसके ६ स्तर मिले हैं।

धर्मराजिक स्तूप

धर्मराजिक स्तूप संग्रहालय से दो मील उत्तर की ओर है। इसके चारो ओर अनेक छोटे-छोटे स्तूप और विहार हैं। इनमें मिट्टी की अनेक सुन्दर बौद्ध मूर्तियां हैं। यहां बुद्ध की एक मूर्ति और २११ मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं जो एजेसस, हुविस्क व वसुदेव की हैं। धर्मराजिक स्तूप के दक्षिण पूर्व में कलावन विहार के खंडहर हैं। इसकी इमारतें तीन खंड की हैं। प्राचीन तक्षशिला का विश्वविद्यालय यहीं पर था।

सिरकप के उत्तर की ओर जांडियल के खंडहर हैं। यहां सूर्य देवता का अति भव्य मन्दिर था। जांडियल से ढाई मील उत्तर पूर्व में मोहरा मोरादू नामक एक पहाड़ी पर स्थान है। यहां पर बौद्ध विहारों व स्तूप के कई भग्नावशेष हैं। यहां पर कई मिट्टी की बनी हुई स्वच्छ बुद्ध मूर्तियां भी मिली हैं।

—७—

सारनाथ

भारतीय इतिहास में सारनाथ का एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इसी जगह पर भगवान् बुद्ध ने सर्व प्रथम अपने प्रथम पांच शिष्यों को उपदेश देकर बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। इसी कारण यह बौद्धों के लिए बहुत ही पवित्र तथा महत्वपूर्ण तीर्थ स्थान है। सारनाथ बनारस (वाराणसी) से चार मील उत्तर की ओर गाजीपुर जाने वाली सड़क पर स्थित है। सारनाथ की पुरानी कथा अब सिर्फ खण्डहरों में ही मिलती है। धर्म व संस्कृति के इस प्राचीन केन्द्र की खुदाई के बाद भारतीय इतिहास व कला के क्षेत्र में नए दृष्टिकोण अपनाने पड़े जिसमे प्राचीन भारतीय कलाकारों के विविध आदर्शों व कार्यों पर आश्चर्य होने लगा है।

नामोत्पत्ति

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार इस स्थान का नाम "ऋषि पतन" या "मृगदाव" मिलता है। चीनी यात्री फाहियान के अनुसार प्रथम नाम

"ऋषि पतन" का अर्थ है—वह स्थान जहाँ किसी वृद्ध ने गोतम बुद्ध के भावी सम्बोधि को जान कर निर्वाण प्राप्त किया था। दूसरे नाम का अर्थ एक जातक कथा के अनुसार पड़ा। इस कथा के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि पूर्व समय में बोधिसत्व ने मृग की योनि में जन्म ग्रहण किया था। बनारस के राजा को अबाध रूप से शिकार खेलने से रोकने के लिये मृगों को वध के लिये एक एक कर भेजने का प्रबन्ध मृगराज (बोधिसत्व) ने किया था। मृगराज एक बार गर्भिणी हरिणी के बदले में स्वयं चले गये। राजा इस त्याग से बहुत अधिक प्रभावित हुआ और सब नतुष्पदों तथा पक्षियों को अभयदान दे दिया और उस अरण्य में मृगों को निडर हो घूमने के लिये छोड़ दिया। इसी कारण इस वन का नाम "मृगदाव" पड गया।

जनरल कनिंघम के विचारानुसार सारनाथ की उत्पत्ति "सारंगनाथ" यानी "मृगों के नाथ" गौतम बुद्ध से हुई। इस स्थान से मिले शिलालेखों में इसका नाम धर्मचक्र प्रवर्तन विहार भी मिलता है जिसका अर्थ है—वह विहार या स्थान जहाँ से कि पवित्र धर्म के चक्र का घूमना आरम्भ हुआ। यह घटना भगवान् बुद्ध के ३५ वें वर्ष यानी ५२८ ई० पू० की है जब कि बुद्ध ने अपने बिछुड़े पांच शिष्यों अलार, कौदिन्य आदि को सम्बोधि प्राप्त करने के बाद सर्व प्रथम उपदेश दे अपने धर्म में दीक्षित किया था। इस प्रथम उपदेश का सार एक पत्थर पर अंकित सर जान मार्शल को सन् १९०६ ई० में मिला था।

इतिहास

कहा नही जा सकता कि सर्व प्रथम यहाँ विहार कब से बनने प्रारंभ हुए। लेकिन इसमें कोई सन्देह नही कि सम्राट् अशोक के समय से पहले एक विहार यहाँ अवश्य ही स्थापित हो चुका था। बहुत सम्भव है कि बुद्ध की मृत्यु के बाद ही यहां एक स्तूप पंचवर्गीय भिक्षुओं को धर्म में

परिवर्तित करने की याद में बनाया गया हो। 'महापरिनिर्वाण सूत्र' (दीर्घनिकाय) के अनुसार भगवान् ने स्वयं चार स्थानों को उपासकों के लिये पवित्र बतलाया है—(१) लुम्बिनी वन, जहां भगवान् का जन्म हुआ था (२) बोद्ध गया, जहां बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था (३) ऋषि पतन, जहां भगवान् ने ज्ञान प्राप्ति के बाद सर्व प्रथम उपदेश दिया था (४) कुशी नगर (कसिया), जहां भगवान् ने परिनिर्वाण (मृत्यु) प्राप्त किया था। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि वह स्थान जिसे भगवान् ने स्वयं पवित्र बतलाया हो बिना उनके स्मृतिगृहों के रह गया हो। इसी कारण इतनी बाहुल्यता से बौद्ध स्मारक यहां पाये जाते हैं। "दिव्यावदान" के अनुसार सम्राट् अशोक स्वयं यहां धर्मयात्री के रूप में आया था। अशोक ने यहां चार स्मारक बनाए थे—अशोक स्तम्भ, धर्मराजिक स्तूप, पत्थर की चहार दीवारी और एक गोल मन्दिर जो चैत्यगृह के आकार का है। अशोक के बाद उसके उत्तराधिकारी न तो राज्य की ओर न बौद्ध धर्म की ही उन्नति कर सके। इसी कारण उनके काल का कोई स्मारक यहां नहीं है।

शुंग काल का कोई भी विशेष बड़ा स्मारक यहां नहीं मिला है। मुख्य मन्दिर की खुदाई में एक सिर के दो टुकड़े तथा एक पत्थर की वेदिका मिली है जो लगभग दूसरी सदी ई० पू० की है। बहुत से अन्य शिलापट्ट भी खुदाई में मिले हैं जो इस बात के प्रमाण हैं कि शुंग काल में सारनाथ उन्नत दशा में था। शुंगों के बाद कुषाणों ने सम्पूर्ण उत्तरी तथा मध्य भारत पर अपना शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। इस काल के बारह वेदिका स्तम्भ मुख्य मन्दिर के उत्तर पश्चिम में मिले हैं। इस काल के दो पट्ट भी मिले हैं जिन पर भगवान् बुद्ध के जीवन की घटनायें अंकित हैं। खुदाई में मिली बुद्ध मूर्तियां कुषाण साम्राज्य का यहां तक फैला होना बतला रही हैं। धर्मराजिक स्तूप के पास ही एक बृहत्काय भारी बोधिसत्व की मूर्ति मिली है जिस पर कनिष्क के तीसरे राज्य

संवत्सर (ई० सन् ८१) का लेख है। कुशान साम्राज्य के ढह जाने पर गुप्तों ने अपना साम्राज्य सम्पूर्ण उत्तरी भारत में फैलाया। यह काल भारत के लिये स्वर्णयुग था। इस काल में प्रत्येक दिशा में बहुत उन्नति हुई। इसकी छाप सारनाथ पर भी पड़ी दिखाई देती है। इस काल में सारनाथ स्थापत्य कला का एक प्रधान केन्द्र हो गया था। उस समय की चार मूर्तियां देखने योग्य हैं। भिन्न-भिन्न गुप्त सम्राटों के राज्यकाल में भी अनेक मूर्तियां प्रतिस्थापित की गई थीं।

पांचवीं शती में बौद्ध धर्म के मुख्य शत्रु हूणों ने गुप्त साम्राज्य को नष्ट करने के साथ ही साथ सारनाथ को भी नही छोड़ा। वहाँ की अनेक मूर्तियों तथा इमारतो को नष्ट कर दिया गया, लेकिन ई० सन् ५२८ में *मगध सम्राट् बालादित्य तथा मालवा अधिपति यशोधर्मन ने* हूणों को भारत से निकाल बाहर किया। इसी काल के लगभग मौखरी तथा वर्धन वंशो ने उत्तरी भारत में अपना शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। उन्ही दिनों चीनी यात्री हुएनत्सांग (ई० सन् ६३०–६४५) भारत में आया और उसने सारनाथ को बहुत ही अच्छी हालत में पाया। वर्धन वंश के अन्धकार में चले जाने पर सारनाथ को भी हम कुछ समय के लिये भूल जाते हैं। नवी शती में सारनाथ पर प्रतिहार (परिहार) वंश का आधिपत्य हुआ लेकिन उस काल का यहाँ कोई भी स्मारक नही मिलता है। प्रतिहारो के बाद के कलचुरी वश का देव नागरी में खुदा हुआ एक संस्कृत का लेख मिला है। सारनाथ के वैभव के अन्तिम दिनों में कन्नौज के गहरवालो ने इस पर कब्जा जमाया। राजा गोविन्दचन्द्र की बौद्ध रानी कुमारी देवी ने यहाँ एक बडा विहार "सद्धर्मचक्र जिन विहार" के नाम से बनवाया था। इसी वंश का अन्तिम राजा जयचन्द्र मुहम्मद गौरी द्वारा मारा गया था। शायद इसी समय विधर्मियों द्वारा सारनाथ के विहार तथा मन्दिर तोडे गये थे। टूटी तथा जली हुई मूर्तियां इसकी साक्षी दे रही हैं। काल की क्रूर दृष्टि से धीरे-धीरे सारनाथ का अस्तित्व ही मिट गया।

सन् १७९४ में सारनाथ फिर प्रकाश में आया। काशी के तत्कालीन प्रधान मन्त्री जगतसिंह ने जगतगंज को बसाने के लिये यहाँ की इमारतों को खुदवाया। बहुत सा पत्थर यहाँ से ले जाया जाकर जगतगंज की इमारतों में लगवाया गया। इससे सारनाथ के कई स्मारक लुप्त हो गये। कुछ पुरातत्ववेत्ताओं का ध्यान इसी वक्त सारनाथ के खण्डहरों की ओर गया। जनरल कनिंघम ने इसकी खुदवाई में विशेष भाग लिया। यहां से मिली बहुत सी मूर्तियां सुरक्षा के लिये कलकत्ता के अजायबघर में भेज दी गई। सन् १९०२ ई० में भारतीय पुरातत्व विभाग के स्थापित हो जाने पर सारनाथ की खुदाई सुव्यवस्थित ढग से हुई जिससे कई अमूल्य कला स्मारक व मूर्तियें प्रकाश में आई। इस खुदाई में भाग लेने वालों में ओर्टेल, सर जान मार्शल, श्री हार ग्रीव्स और राय बहादुर दयाराम साहनी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ की खुदाई से अब तक लगभग दस हजार वस्तुएँ मिली हैं जिनमें कई प्रकार की मूर्तियां, वेदिकाएं, शिलालेख, बर्तन, खिलौने, मुहरें आदि हैं।

चौखण्डी स्तूप

सारनाथ के मुख्य स्थान पर पहुँचने से कुछ पहले सडक के किनारे पर ईंटों की एक ऊँची इमारत दिखाई देती है। यह अठकोणी है व चौखण्डी के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि गौतमबुद्ध सबसे पहले इसी जगह पर पंचभद्रवर्गीय भिक्षुओं से मिले और बाद में उसी की याद को बनाये रखने के लिये यह स्मारक बनाया गया। श्री ओर्टेल को इस स्तूप की खुदाई में कुछ मूर्तियां, स्तूप की अठकोणी चौकी का एक भाग और १२ फीट ऊँचा चबूतरा मिला। स्तूप की वर्तमान ऊँचाई ८४ फीट है लेकिन हुएनसांग के अनुसार पहले इसकी ऊँचाई ३०० फीट थी। अठकोणी मीनार सम्राट् अकबर ने अपने पिता हुमायू के वहाँ जाने की याद में ई० सन् १५८८ में बनवायी थी जैसा कि दरवाजे पर के शिलालेख

से ज्ञात होता है। सम्पूर्ण स्तूप ईंटों का बना हुआ है। इस मीनार के ऊपर से आस-पास का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है।

विहार

मुख्य स्थान के पास पहुँचते ही सड़क के दाहिनी तरफ एक बौद्ध विहार के खण्डहर दिखाई देते हैं। पहले यह एक संघाराम था जिसमें भिक्षु रहा करते थे लेकिन अब इसके ६ खण्डहर मिले हैं जो लगभग आठवीं शती के हैं। इसी के नीचे एक और विहार के खण्डहर दिखाई देते है। बहुत सम्भव है कि यह दोनों विहार आग लगाये जाने से नष्ट हो गये हो।

धर्मराजिक स्तूप

आगे उत्तर की ओर बढ़ने पर हमें धर्मराजिक स्तूप के खण्डहर मिलते है। इस स्तूप को बहुत ही जर्जर दशा में देख कर बनारस-राज्य के दीवान बाबू जगतसिंह ने इसको पूर्णतया ढहा दिया। इसके पत्थर बाद में जगतगंज का बाजार बनाने के काम में लाये गये। मलब मे एक हरे संगमरमर की मञ्जूषा (पेटी) मिली थी जिसमें बुद्ध के शरीर के अवशेष थे। एक हिन्दू होने के नाते उसने शरीर के उन अवशेषों को गगा में वहा दिया। इस स्तूप को सब से पहले सम्राट् अशोक ने बनवाया था जिसकी गवाही उस काल की ईंटें दे रही हैं। बाद में इसकी मरम्मत कुशाण काल में हुई। छठी शती में इसके चारों ओर १६ फीट चौडा एक प्रदक्षिणा पथ बनाया गया था। सातवी शती में यह प्रदक्षिणा पथ ईंटों से भर दिया गया और स्तूप पर जाने के लिये चारों तरफ छः डण्डों की सीढ़िया बनाई गईं। बंगाल नरेश महीपाल तथा रानी कुमारी देवी ने भी इसका पुनरुद्धार किया था। इस स्तूप को जगतसिंह का स्तूप भी कहते हैं।

मुख्य मन्दिर

धर्मराजिक स्तूप से कोई बीस गज दूर एक मन्दिर के निशान मिलते हैं जो लगभग १८ फीट ऊँचे हैं। यह ईंटों से बनी ६० फीट की वर्गाकार एक इमारत है। ह्वएनसांग ने अपने भ्रमण वृत्तान्त में इसको २०० फीट ऊँचा तथा सुनहरी आम्र शिखर से सुशोभित मूलगंध कुटी के नाम से पुकारा है। इस मन्दिर का बहुत सा भाग अशोककालीन है। बहुत सम्भव है कि बुद्ध की मृत्यु के बाद ही यहाँ कोई स्मृतिगृह बनाया गया हो जिस पर यह मन्दिर बना हो। मौर्यकालीन पत्थर की काटी हुई वेदिका इसकी साक्षी देती है। शायद यह वेदिका अशोक ने मूल स्तूप के चारों ओर बनवायी हो। यह वेदिका पालिश व कटाई के लिये मौर्यकालीन कारीगरी का बहुत ही सुन्दर नमूना है। ऋषि पतन में अशोक से भी पहले एक स्तूप का होना "दिव्यावदान" के एक अवतरण से ज्ञात होता है। गुप्त काल की भगवान् बुद्ध की मूर्तियां भी इस जगह से मिली हैं जिन पर शिला लेख अंकित हैं। मन्दिर के बीच में बुद्ध की एक आदमकद मूर्ति स्थापित थी जिसकी पूजा की जाती थी। दर्शन और परिक्रमा के लिये द्वार तथा प्रदक्षिणा पथ बने हुए थे। बाद में मन्दिर की छतें कमजोर हो जाने पर भीतरी प्रदक्षिणा पथ मोटी मोटी दीवारें उठा कर बन्द कर दिया गया जिनसे बने तीन तरफ कमरे बाद में छोटे-छोटे मन्दिर बना दिये गये। ह्वएनसांग के अनुसार इसी जगह पर भगवान् बुद्ध ने सर्व प्रथम उपदेश दिया था जिसकी याद में यह मन्दिर बनवाया गया था।

अशोक स्तम्भ

मुख्य मन्दिर में पश्चिम की ओर सम्राट् अशोक का बनवाया हुआ शिला स्तम्भ है। इस वक्त इसकी ऊँचाई केवल ६ फीट ८ इंच है लेकिन इसके पास ही पड़े स्तम्भ के टुकड़े बताते रहे हैं कि यह कभी कम से कम

५० फीट ऊँचा था। यह चुनार के पत्थर का बना खम्भा भारी पत्थर की चौकी पर स्थापित किया गया है। खम्भा गोल है जो नीचे चौड़ाई लिये हुए है लेकिन जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं चौड़ाई कम होती जाती है। स्तम्भ की चमकीली पालिश शीशे की तरह चमकती है। ऐसा भ्रम होता है कि यह संगमरमर का ही स्तम्भ हो। खम्भे पर ब्राह्मी लिपि में अशोक का वह प्रसिद्ध लेख अंकित है जिसमें उसने उन भिक्षु और भिक्षुणियों को, जो संघ में भेद डालते थे, दण्ड देने का लिखा है। स्थापत्य तथा शिल्पकला के लिये यह स्तम्भ बहुत ही प्रसिद्ध है। स्तम्भ पर कुशान तथा गुप्तकाल के अन्य दो लेख भी खुदे हैं।

धर्मचक्र जिन विहार

मुख्य मन्दिर के उत्तर की ओर ऊपर चढ़ने पर हमें "धर्मचक्र जिन-विहार" मिलता है जिसे कन्नौजपति गोविन्दचन्द्र गहरवार की बौद्ध रानी कुमार देवी ने बनवाया था। इसकी बनावट दक्षिण भारत के गोपुरी जैसी है। पूर्व से पश्चिम की ओर इसकी लम्बाई ७६० फीट है। पश्चिम की ओर एक सुरंग लगी है जो मोटी-मोटी पत्थर की पट्टियों से ढकी है। अन्दर का फर्श पक्का है। इसमें जाने के लिये पत्थर की सीढ़ियां भी बनी है। शायद यह कुमारदेवी के लिये मन्दिर में जाने का निजी रास्ता हो। इस विहार के नीचे तीन पुराने संघाराम दबे हुये थे जो अब खोद कर निकाले गये हैं। सारनाथ के अन्य विहारों से यह काफी मिलते जुलते हैं। यह विहार पहले कुषाण काल में बने होंगे लेकिन बाद में हूणों द्वारा नष्ट किये जाने के बाद उत्तरगुप्तकाल में फिर से बनाये गये होंगे।

धमेक स्तूप

यह ठोस विशालकाय स्तूप १४३ फीट ऊँचा है तथा घेरे में ९३ फीट

है। इस स्तूप की नीव अशोक के समय में पड़ी थी लेकिन यह कुशाण काल में बना था। गुप्त काल में यह ईंटों का ढाचा पत्थरों से सजाया गया जिस पर गुप्त लिपि में कारीगरों के निशान अंकित हैं। शिला-पट्ट एक दूसरे से लोहे की कड़ियों से जुड़े हुये हैं। पत्थरों पर सुन्दर फूलों की गोट काढ़ी हुई है। स्तूप की चौकी अठकोणी है जिसकी प्रत्येक दिशा में मूर्ति रखने के आले बने हैं। नवी शती की तीन मूर्तियां भी इन आलों से मिली हैं। सजावट का यह सब काम बहुत ही सुन्दर तथा कलापूर्ण है।

मुख्य मन्दिर के पूर्व की ओर लगभग ३०० फीट लम्बा एक मैदान है जिसमें दो मन्दिर तथा कई छोटे-छोटे स्तूप हैं। इनमें गुप्तकाल का एक स्तूप उल्लेखनीय है जो कमल की पंखुड़ियों आदि से सजा हुआ है।

धमेक स्तूप के पास ही एक दूसरा संघाराम है जहाँ भिक्षु रहा करते थे। हाल ही की खुदाई से ज्ञात हुआ है कि इस विहार के नीचे गुप्त और कुशाण काल के विहारों के खण्डहर दबे पड़े हैं। इसी के पास एक जैन मन्दिर है जो जैन धर्म के संस्थापक महावीर के तेरहवें पूर्वज श्रेयांसनाथ द्वारा यहाँ पर सन्यास लेने तथा यहीं पर स्वर्ग यात्रा प्राप्त करने की याद में बना है। वर्तमान मन्दिर कोई पुराना नहीं है लेकिन जैनियों के लिये यह बहुत ही पवित्र स्थान है। इस मन्दिर के पास ही एक घेरा बना हुआ है जिसमें कुछ हिन्दू व जैन मूर्तियां रक्खी हैं। हिन्दू मूर्तियों में गंगा, यमुना, शिव-पार्वती, गणेश, ब्रह्मा, नवग्रहों आदि की मूर्तियां देखने योग्य हैं। जैन मूर्तियों में महावीर, आदिनाथ, शान्तिनाथ, अजितनाथ व श्रेयांसनाथ की मूर्तियां हैं।

मूर्तियें

मृगदाव के पास ही प्राचीन बौद्ध संघाराम के ढंग पर संग्रहालय बना हुआ है। सारनाथ की खुदाई में पायी गई मूर्तियां इसमें रक्खी हुई हैं। ईसा के पूर्व ३०० से १२०० वर्ष तक की हजारों मूर्तियें, वेदिकायें,

शिलालेख, खिलौने, उत्कीर्ण शिलापट्ट आदि के सुन्दर नमूने ऐतिहासिक क्रम से यहाँ सजाये गये हैं।

संग्रहालय के मुख्य कमरे में प्रवेश द्वार के सामने ही अशोक स्तम्भ का शिरोभाग रक्खा है। सम्पूर्ण स्तम्भ एक ही पत्थर का बना था और उसके ऊपर का शिरोभाग भी एक ही पत्थर का है। इस पर सिंहो की चार सुन्दर मूर्तियां हैं जो एक दूसरे से पीठ सटाकर बैठे हैं। इनका मुँह खुला तथा जीभ बाहर लटकती है। बाल और पैरों की नसों का बहुत ही सुन्दरता से चित्रण किया हुआ है। डाक्टर स्मिथ की सम्मति में ये सिंहों की मूर्तियां संसार की सबसे सुन्दर पशु प्रतिमाओं में से हैं। सिंहों के निचले भाग में एक फलक है जो चौकी का काम देती है। उस पर चारों दिशाओं में भागते हुये हाथी, बैल, घोड़ा तथा सिंह दिखाये गये हैं। प्रत्येक पशु के आस पास एक धर्मचक्र बना है। यह चारों पशु विभिन्न प्रतीक हैं जो भगवान् बुद्ध के जीवन की चार मुख्य घटनाओं को बतलाते हैं। हाथी माया देवी के उस स्वप्न की याद दिलाता है जब भगवान् ने श्वेत हाथी के रूप में माया के गर्भ में प्रवेश किया था। बैल वृषराशि को बतलाता है जब कि भगवान् का जन्म हुआ था। घोड़ा वही प्रसिद्ध कन्टक है जिस पर चढ कर भगवान् ने सत्य की खोज में अपने राज्य को छोड़ा था। सिंह स्वयं भगवान् बुद्ध को शाक्यवंश में सिंह समान होना बतलाता है। इन चिह्नों के विषय के अनेक अन्य आशय निकाले गये हैं लेकिन वे सन्देहजनक प्रतीत होते हैं। चौबीस आरियों के यह चक्र भगवान् बुद्ध के चारों दिशाओं में धर्मचक्र प्रवर्तन को दर्शाते हैं जिन्होंने बौद्ध धर्म के चौबीस हेतु बतलाये। फलक के नीचे का भाग उलटे हुए कमल की सोलह पंखुडियों से बना है। भगवान् बुद्ध के धर्म की चारों दिशाओं में घोषणा करते हुए ये सिंह पहले बत्तीस आरियों के एक चक्र का भार सम्हाले थे। चक्र की बत्तीस आरिया भगवान् के बत्तीस गुणों से युक्त महापुरुष के लक्षण बतलाती है। पहले यह चक्र २ फीट ९ इंच व्यास का था जिसके अब केवल टुकड़े ही बच गये हैं। स्वतन्त्र भारत

का अब यह शिरोभाग राज चिह्न है तथा राष्ट्र पताका के बीच का चक्र इन्हीं चक्रों के आधार पर माना गया है।

सिंह शिखर के पास ही बोधिसत्व की एक बृहत्काय मूर्ति है। जिस पर किसी समय में एक खिले हुए कमल की शक्ल का बड़ा छाता था। छाता कल्पित पशु-पक्षियों तथा शुभ चिह्नों से अलंकृत था। यह मूर्ति मथुरा के भिक्षु बल ने कनिष्क के राज्य काल के तीसरे वर्ष में दान की थी। इसके कुछ हिस्से अब खण्डित हो गये हैं। बांये कन्धे पर एकांसिक संघाटी है और नीचे घुटने तक लटकता हुआ अन्तर्वासक है। अन्तर्वासक के ऊपर दो लपेटों वाला मेखला है। सिर पर भिक्षुओं जैसे छुटे बाल हैं। पहले सिर पर उष्णीष था लेकिन अब टूट गया है। पहले मस्तक के पीछे गोल प्रभा मण्डल भी था। मूर्ति पर लेख भी खुदा है।

सारनाथ में पाई गयी कला और चित्रण के नाते सबसे श्रेष्ठ, सुन्दर व भव्य मूर्ति वह है जिसमें भगवान् धर्मचक्र मुद्रा में दिखाये गये हैं। सारनाथ के शिल्पी इसके बनाने में अपनी मूर्तिकला कौशल की पराकाष्ठा पर पहुँचे दिखाई देते हैं। बुद्ध के आध्यात्मिक भावों को बड़ी कुशलता से प्रत्यक्ष रूप से इस मूर्ति में अंकित किया गया है। बुद्ध धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बैठे धर्मोपदेश देते दिखाये गये हैं। नीचे चौकी पर पांचों भिक्षु दिखाये गये हैं। बीच में धर्मचक्र तथा मृगदाव को जतलाने के लिये एक चक्र तथा दो मृग दिखाये गये हैं। अलग से एक नारी की बच्चे सहित मूर्ति है जो शायद इस बड़ी प्रतिमा के स्थापक की है। सिर के पीछे कमल तथा मणिबन्धों से सजा हुआ एक सुन्दर छाया मण्डल है जिसके ऊपर दोनों ओर से देवगण पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। भगवान् बुद्ध की शान्त तथा आनन्दमय मुद्रा में यह मूर्ति भारतीय कला की सर्व श्रेष्ठ मूर्तियों में गिनी जाती है।

एक दूसरी मूर्ति में भगवान् बुद्ध भूमि स्पर्श मुद्रा में दिखाये गये हैं। यह मुद्रा उस समय की याद दिलाती है जब भगवान् ने वज्रासन पर बैठ

कर मार को हराया था और निर्वाण प्राप्त किया था। आसन पीठिका के एक ओर देवी वसुन्धरा तथा दूसरी ओर मार की नाचती हुई कन्यायें दिखाई गयी हैं। बोधिवृक्ष कुछ पत्तों द्वारा दिखाया गया है। मूर्ति को भेंट करने वाले का नाम बौद्ध भिक्षु स्थविर बन्धुगुप्त संस्कृत में लिखा है जिसकी लिखावट छठी शती की है।

बौद्ध धर्म की महायान शाखा में कई देवी देवताओं की भी कल्पना की गई है। इनमें पांच ध्यानी बुद्ध आदि बुद्ध माने जाते हैं। देवियों में तारा का मुख्य स्थान है। वह अवलोकितेश्वर की शक्ति भी मानी जाती है। तारा मूर्तियों में साड़ी पहने तथा हाथ में कमण्डल लिये दिखाई गयी है। भावी बुद्ध बोधिसत्व मैत्रेय की भी छठी शती की यहां एक मूर्ति है जो बांये हाथ में नागकेशर का फूल लिये है। बोधिसत्व वज्रपाणी दाहिने हाथ में वज्र तथा बांये हाथ में घण्टी लिये रहते हैं। अवलोकितेश्वर, लोकनाथ, बोधिसत्व, मंजुश्री आदि की यहाँ कई मूर्तियां है। ये सब मूर्तियां निर्माण शैली के अनुसार पांचवी व सातवी शती के बीच की ठहरती हैं। बौद्धों की अन्य देवियों, प्रभात देवी, मारीची, विद्या की देवी सरस्वती, संवृद्धि की देवी वसुन्धरा आदि, की भी यहाँ मूर्तियां हैं। हिन्दू धर्म की मूर्तियों में अतिप्रसिद्ध त्रिशूल लिये शिवजी की मूर्ति है।

संग्रहालय के एक कमरे में बुद्ध मूर्तियां तथा उनके जीवन की मुख्य घटनायें, माता के गर्भ में प्रवेश करना, घर से बाहर घोडे पर निकलना, निर्वाण, प्रथम उपदेश देना, महापरिनिर्वाण आदि प्रदर्शित करने वाले कई शिलापट्ट रक्खे हैं। भगवान् बुद्ध विभिन्न मूर्तियों में अभयमुद्रा, वर-मुद्रा (वरदान देते हुए), ध्यान मुद्रा, भूमि स्पर्श मुद्रा, धर्मचक्र मुद्रा आदि में दिखाये गये हैं। एक अलमारी में नाना प्रकार के देशी व विदेशी पुरषों के सिर रक्खे हुए हैं। यहाँ की खुदाई में मिले कई प्रकार के सिक्के, ताम्रपत्र, चांदी या तांबे के गहने आदि भी यहाँ प्रदर्शित हैं। जैन तथा हिन्दू देवताओं की मूर्तियां भी यहाँ रक्खी हुई हैं।

अन्य अवशेष

यहाँ गुप्तकाल के एक स्तम्भ का शिखर भी है जो लगभग पहली शती का है। इसके एक ओर भागते हुये घुड़सवार की मूर्ति भी है और दूसरी ओर दो आदमी एक हाथी पर जाते दिखाये गये हैं। यहाँ की खुदाई में कई शिलालेख भी मिले थे। ये शिलालेख संग्रहालय में रक्खे हैं। यहीं पर कन्नोज के राजा गोविन्दचन्द्र की बौद्धरानी कुमारदेवी का एक शिला लेख है जिसमें रानी द्वारा सारनाथ में धर्मचक्र जिन विहार नामक विहार बनवाने का कथन है।

बौद्धों के स्तूप, चैत्य, धर्म वृक्ष आदि के चारों ओर एक चहार दिवारी बनी होती है जो वेदिका कहलाती है। इसमें चार भाग होते हैं—स्तम्भ, सूची जो आड़ी रक्खी जाती है, पिण्डिका, वह पत्थर जिसमें दोनों खम्भे फंसे रहते हैं। इस संग्रहालय में बहुत सी इस प्रकार की वेदिकायें रखी हैं। इनके खम्भों पर नाना प्रकार के स्तूप, धर्मचक्र, त्रिरत्न, कमल आदि अंकित हैं जो आंध्र काल के हैं। इनकी कारीगरी काल्पनिक होते हुए भी अवसर के अनुकूल है।

सारनाथ की कला

सारनाथ की खुदाई से मिली वस्तुओं की कृतियां अपनी एक नई ही शैली बतलाती है। इस शैली की कृतियां मुख्य कर मौर्य, कुशाण, गुप्त व गहडवाल काल की है। यों तो सारनाथ में मौर्य काल के पहले भी कुछ न कुछ स्मारक अवश्य बने लेकिन खुदाई में उस काल की कोई ऐसी विशेष कृति नहीं मिली है।

भारत के इतिहास में सर्व प्रथम सम्राट् अशोक ने ही स्मारक बनाये थे। कहते हैं कि उसने ८४,००० स्तूप भारत के विभिन्न नगरों में बनवाये थे। कहा नहीं जा सकता कि यह संख्या कहाँ तक ठीक है, क्यों कि अभी

तक हमें कुछ ही अशोक के स्तूप मिले हैं। सारनाथ के मौर्यकालीन स्मारक चुनार के पत्थर के बने हैं। उन पर की हुई ओप में इतनी चमक है कि आंख फिसलती है। ऐसा ज्ञात होता है कि आज ही इस पर काम किया गया हो। बहुत से इतिहासज्ञ इसी कारण से भ्रम से शीशे का स्तम्भ मान बैठे थे। इस प्रकार की ओप करने की कला में आज तक कोई भी इसकी बराबरी नही कर सका है। सिंहों तथा अन्य पशुओं के कोरने में बड़ी सफाई तथा सजीवता दिखलाई गई है। उनकी आकृति भव्य तथा अंग प्रत्यंग स्पष्ट तथा समविभक्त हैं। स्तम्भ पर खुदे अक्षर बहुत ही सुन्दर तथा एक से है। उनमें पूर्ण गोलाई तथा तनाव है। इस काल के स्मारक भी अपने भारीपन लेकिन सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक कलाकार का काम नाप तोल कर किया गया दिखता है। यद्यपि बहुत सी इमारतें नष्ट हो गई हैं लेकिन जो कुछ भी बची हैं वह नष्ट हुई का भी अच्छी तरह से प्रतिनिधित्व कर देती हैं। प्रत्येक काम में बारीकी और समानता है। अशोक के समय की यहाँ एक चौकोर वेदिका भी मिली है। यह एक ईंटों के बने स्तूप के चारों ओर लगी थी। सम्पूर्ण वेदिका एक ही पत्थर की काटी हुई है जो ओप तथा कारीगरी में मौर्य कला का प्रतिनिधित्व करती है।

मौर्यों के बाद शुंगों नें सारनाथ पर अपना अधिकार जमाया। इस काल के यहाँ बहुत से शिलापट्ट, वेदिकायें तथा एक स्तम्भ का शिखर मिला है। मौर्य काल की टक्कर के ये नही हैं लेकिन फिर भी वे बहुत सुन्दर हैं। इनकी आकृतियों में ज्यादा चिपटापन है और उभार कम है। इनमें विशेष सुथरापन भी नही है। ज्यादातर आकृतिया काल्पनिक है।

दक्षिण में सातवाहनों ने मौर्य युग में ही अपना राज्य स्थापित कर लिया था। आंध्र प्रदेश पर अधिकार कर लेने पर इनका वंश आंध्रवंश कहलाने लगा। धीरे-धीरे उन्होंने उत्तरी भारत को भी जीत लिया। आंध्रों के समय के यहाँ बारह वेदिका स्तम्भ मिले हैं। इनकी शैली तथा

अलंकरण भरहुत, सांची आदि के स्तम्भों के समान ही है। इन पर धर्म-चक्र, स्तूप आदि उभार कर बनाये गये हैं।

इसी समय के लगभग भारत के उत्तर पश्चिम में कुषाणों ने अपना राज्य स्थापित किया। इसी वंश के सुप्रसिद्ध राजा कनिष्क ने सारनाथ तक अपना राज्य फैलाया था। कनिष्क के समय में ही सर्व प्रथम बुद्ध की मूर्तियों का बनना प्रारम्भ हुआ। इस काल की मुख्य विशालकाय मूर्ति बोधिसत्व की है। ये मूर्तियां लाल पत्थर की बनी हैं। इन मूर्तियों की बनावट भी विशेष सुन्दर नहीं है। इनमें बुद्ध सदैव खड़े दिखाये गये हैं तथा उनका मस्तक प्रायः मुंडा रहता है। कपड़ों की रेखायें बहुत ही मोटी दिखलाई गयी हैं।

ईसवी सन् ३२० के लगभग गुप्तों ने उत्तरी भारत में अपना राज्य स्थापित किया। गुप्तों का कला प्रेम उनके समय की प्रत्येक कृति में मिलता है। सारनाथ की कला का भी यह स्वर्ण युग था। स्थापत्य शिल्प का सारनाथ एक प्रधान केन्द्र हो गया। इस काल की मूर्तियों में सबसे मुख्य बोधिसत्व सिद्धार्थ की विशालकाय मूर्ति है। अभयमुद्रा में खड़ी कुछ और मूर्तिया भी इसी कान की हैं। दो तीन मूर्तियों पर भेंट करने वाले का नाम तथा सम्वत् भी दिया हुआ है। सबसे प्रसिद्ध मूर्ति वह है जिसमें बुद्ध धर्मचक्र मुद्रा में दिखाये गये हैं। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह सर्वश्रेष्ठ मूर्ति है। भगवान् के मुख मण्डल पर इतनी अपूर्व शान्ति, प्रभा और गंभीरता शायद ही कोई और किसी मूर्ति में ला सका हो। एक दूसरी मूर्ति में बुद्ध भूमि स्पर्श मुद्रा में बोधिवृक्ष के नीचे बैठे दिखाये गये हैं। यह मूर्तिया हमें गुप्त शैली के पूर्ण विकसित रूप को दिखाती हैं। इस शैली पर मथुरा की कुषान शैली का काफी प्रभाव पड़ा। इस काल की मूर्तियां बहुत ही सुन्दर हैं। मस्तक पर छल्लेदार बाल तथा कपड़े बहुत ही हल्के और पतले रहते हैं। ऐसा ज्ञात होता है जैसे कपड़े हैं ही नहीं। प्रभा मण्डल बहुत ही अलंकृत रहता है।

गुप्त साम्राज्य के अन्त के साथ ही हमारी कला का भी अन्त दीख पड़ता है। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय में अनेक देवियों और देवताओं की कल्पना की जाने लगी। तारा, मैत्रेय, भृकुटीतारा, वज्रपाणी आदि की अलंकृत मूर्तियां मथुरा शैली पर बनायी गईं, लेकिन उनमें वह बात नही जो गुप्त काल में दिखाई देती है। इस समय के बाद की हमें कोई विशेष मूर्ति नहीं मिलती है।

सारनाथ का कलाकेन्द्र प्राचीन इतिहास जानने का एक स्रोत बन गया है। भिन्न-भिन्न समय के साम्राज्यों की कला का समन्वय व हिन्दू, बौद्ध व जैन धर्म के विचारों का समीकरण सारनाथ के पत्थर, शिलाओं व अभिलेखों में पाया जाता है। फिर भी सारनाथ का अध्ययन अधूरा ही रह जाता है। पृथ्वी के इस भूभाग में भारतीय संस्कृति का धन गड़ा हुआ है। लगातार प्रयत्नों से, खुदाई व निरीक्षण से नई-नई बातें प्रकाश में आ सकेंगी ऐसा इतिहासकारों का विश्वास है।

¤ ¤

—८—

मथुरा

भारत के प्राचीन नगरों में मथुरा का महत्व उच्चकोटि का रहा है। विदेशी आक्रमणों के लगातार चालू रहते हुए भी यह नगर अपनी विशेषता बनाए रहा। यहां पर प्राचीन विदेशी मध्यकालीन व आधुनिक कला के प्रारम्भिक तत्व पाये गए हैं।

इतिहास

महाभारत के अनुसार मथुरा शूरसेन जनपद की राजधानी थी। प्राचीनकाल से मथुरा श्रीकृष्ण की जन्म-भूमि होने के कारण एक पवित्र तीर्थ स्थान रहा है। यह नगरी भारत की सप्तमहापुरियों में गिनी जाती है। मथुरा पहले मौर्य (३२५–१८५ ई० पू०) और शुंग (१८५–७३ ई० पू०) साम्राज्यों में सम्मिलित था। अशोक का गुरु उपगुप्त मथुरा-वासी था, लेकिन यहां कोई अशोक का स्मारक नहीं मिला है।

मथुरा हिन्दुओं का ही नहीं बल्कि बौद्धों और जैनों का भी धार्मिक

केन्द्र रहा है। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से ही जैन और बौद्ध धर्मावलम्बी यहाँ अपने ही ढंग से स्तूप और विहार बनाने लगे। मथुरा की ऐतिहासिक खुदाई में इसी कारण इन धर्मों के अनेक देवी देवताओं की मूर्तियाँ मिली हैं। मथुरा गंगा यमुना के दोआब में बसा हुआ होने के कारण बहुत ही महत्वपूर्ण नगर रहा है। मथुरा पर विभिन्न देशी व विदेशी शासकों ने अपना अधिकार जमाया और इस कारण उनकी संस्कृतियों को ग्रहण कर अपने में पचा लिया। यूनानी और ईरानी कला की छाप यहाँ की अनेक मूर्तियों में दिखाई देती है। यहाँ लोक-कला की सबसे प्राचीन मूर्ति परखम से मिली एक यक्षमूर्ति है। यह मूर्ति मौर्य काल की है। इस मूर्ति की शैली इतनी विकसित है कि इसके अनुसार हमें इस कला का आरम्भ अशोक के समय के पहले का मानना पड़ता है। इस शैली में काफी वास्तविकता है। इसी की कुछ मृण्मूर्तियाँ भी यहाँ मिली हैं, जो सिन्धु के मैदान में मिली मूर्तियों से काफी मिलती हैं। मृण्मूर्तियाँ अपनी सुन्दरता, प्राचीनता और विविधता के कारण भारतीय कला में एक विशेष स्थान रखती हैं। यह मृण्मूर्तियाँ ज्यादातर मातृदेवी की हैं जिनकी कि आदिकाल में पूजा की जाती थी। इस काल की मृण्मूर्तियाँ केवल धार्मिक ही नहीं रहीं। अब दैनिक जीवन की सुन्दरियों को विभिन्न कार्यों में संलग्न दिखाया जाने लगा। अन्तिम मौर्य सम्राट् को सेनापति पुष्यमित्र ने मार कर सम्पूर्ण मध्य भारत को अपने अधिकार में कर लिया। उसका वंश शुंगवंश कहलाया। इस काल की अनेक वेदिकायें और मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। वेदिकाओं के खम्भे नाना प्रकार के स्तूप, धर्मचक्र, कमल, त्रिरत्न, पशु-पक्षियों (*यक्ष-यक्षिनियों*) आदि से सजे हैं, जो साँची और भरहुत से कम नहीं हैं।

ईसा पूर्व ७५ से २५ तक मथुरा क्षहरात क्षत्रपों के अधिकार में रहा। इनके समय का एक सिंह शिखर मिला है जिस पर खरोष्ठी लिपि में एक लेख भी अंकित है। इस लेख में महाक्षत्रप राजुल और उसके पुत्र सौडास का

उल्लेख है। इस काल की कला में पौराणिक हिन्दू, यवन और ईरानी कलाओं का संमिश्रण दिखाई देता है। इस समय में भी नाना प्रकार के स्तूप, विहार, पद्मपाणि आदि की मूर्तियाँ गढ़ी गईं। कंकाली टीले पर जैनियों का एक बहुत बड़ा विहार था। दूसरी शताब्दी ई० पू० की बनी सैंकड़ों जैन मूर्तियाँ यहाँ मिली हैं। शायद जैन तीर्थंकरों की भी सबसे पहले मूर्तियां यहीं गढ़ी गईं।

प्रथम शताब्दी के आरम्भ में मथुरा पर कुषाण वंश का अधिकार हुआ। कुजुला कैडफिसिस, विमकैडफेसिस, कनिष्क, वासिष्क, हुविष्क और वासुदेव ने लगभग १७५ वर्ष तक यहाँ राज्य किया। यह काल (लगभग प्रथम शताब्दी से तीसरी शताब्दी तक) मथुरा कला का स्वर्ण युग था। कुषाण सम्राटों के कला प्रेमी होने के कारण उन्होंने पाषाण कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। इसी के कारण मथुरा की अपनी एक अलग शैली का आविर्भाव हुआ। यहाँ की मूर्तियों ने कुछ ही समय में इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की कि यहाँ की बनी मूर्तियां उत्तरी भारत के अन्य दूरस्थ नगरों—सारनाथ, श्रावस्ती, साँची आदि को भेजी जाने लगीं। ये प्रतिमायें सफेद चकत्तेदार लाल पत्थर की बनी होती थीं, जो फतहपुर सीकरी, रूपवास आदि की खदानों से निकलता है।

कुषाण सम्राटों ने केवल स्मारक स्तूप, विहार आदि ही नहीं बनवाये लेकिन बहुत से शिलालेखों से उनके सामन्तों के भी बनवाये स्मारक ज्ञात होते हैं। जिस तेजी से इनकी छत्रछाया में मथुरा शैली का विकास हुआ वैसा शायद ही किसी और का हुआ हो। इस समय में कुबेर, वृक्षिका पुष्पभंजिका, विहारों, बुद्ध और बोधिसत्व की भी प्रतिमायें बनने लगीं। सर्व प्रथम इसी काल में अभय मुद्रा में बुद्ध की मूर्तियां यहाँ बनने लगीं। इससे पहले बुद्ध को सदा पवित्र सांकेतिक चिन्हों—स्तूप, धर्मचक्र आदि के द्वारा दर्शाया करते थे। यह मूर्तियाँ सभी विशालकाय हैं। इस प्रकार बुद्ध और जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों के बनने

का मूल स्थान मथुरा रहा। हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ—विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि का आविर्भाव भी इसी नगरी से हुआ।

कुषाणों ने अपना एक देवकुल भी बनवाया था जहाँ मृत राजाओं की प्रतिमायें रखी जाती थी। टोकरी टीला पर ऐसी कई मूर्तियों के अवशेष मिले हैं। इन मूर्तियों में वेमकेड फाइसिस, कनिष्क, चष्टन आदि की अच्छी दशा में मिली मूर्तियाँ संग्रहालय में रखी हैं। इन सब के अवलोकन करने से यही ज्ञात होता है कि भरहुत और साची की उन्नत शैली से मथुरा शैली बहुत कुछ गुंथी हुई थी।

गुप्तकाल की भी यहां कई मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। इस काल की एक शौकीन सुन्दरी का सिर तो देखने लायक है। यह मृण्मूर्तियां मकानों तथा मन्दिरों के सजाने के बहुत काम आती थी। इस काल में कुबेर स्वामी-कार्तिकेय, नागों आदि की मूर्तियों को प्रधानता दी गई थी। श्रीकृष्ण के भाई बलराम को शेष का अवतार मानने के कारण यहाँ नागों की भी बहुतायत से पूजा होती थी। महावत के चौरासी खंभों वाले मन्दिर में बलदेव की प्रतिमा नागों के समान ही है। उनमें वह हाथों में वारुणी पात्र लिये हैं तथा सिर पर शेषनाग फन फैलाये हैं। इसी प्रकार की एक मूर्ति संग्रहालय में भी है। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के दो लेख भी मथुरा में मिले हैं।

यह सब प्राचीन अवशेष मथुरा के विभिन्न भागों कटरा केशवदेव, कंकाली टीला, चौबड़ा, टोकरी टिला, महोली आदि में बिखरे थे। जनरल कनिंघम, डा० फहुरर, रायबहादुर राधाकृष्ण के प्रयत्न से इन भागों की खुदाई में हजारों अवशेष प्राप्त हुये। इन मूर्तियों में से ज्यादातर देश व विदेश के अनेकों अजायबघरों—लखनऊ, कलकत्ता, बोस्टन, लन्दन आदि को भेज दी गईं। यदि यह सब एक ही जगह एकत्रित की जाती तो मथुरा का संग्रहालय संसार के कुछ बड़े संग्रहालयों में एक होता। कुशान

शैली के अवशेषों का यहाँ भी यह सबसे बड़ा केन्द्र रहा है। इन सबका संग्रह मथुरा शहर के पास ही डम्पियर बाग में स्थित संग्रहालय में किया गया है।

मथुरा के प्राचीन मन्दिरों के विषय में महमूद गजनवी ने कहा था—"यहां हजारों मन्दिर तथा प्रासाद हैं। इनमें बहुत से संगमरमर के बने हैं जिनको बनाने में करोड़ो दीनार खर्च हुये होंगे तथा सैकड़ो वर्ष बनने में लगे होंगे" परन्तु ये सब कुछ अब नष्ट हो गये हैं।

मथुरा में प्राप्त मूर्तियों का संग्रहालय

मथुरा संग्रहालय में एकत्र की हुई ज्यादातर मूर्तियाँ जिले के विभिन्न भागों में स्थित प्राचीन विहारों तथा मन्दिरों की खुदाई में मिली हुई हैं। अब वहा कोई देखने के योग्य इमारत नही बची है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मथुरा की खुदाई से पाई गई हजारो वस्तुएँ विभिन्न अजायबघरो में बंटी हुई हैं। अब भी यहां लगभग ५००० वस्तुएं वर्तमान हैं जिनमें मूर्तियाँ, शिलापट्ट, वेदिकाएँ, शिलालेख आदि शामिल हैं। इन सबका समय तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से १० वी शताब्दी तक का है। ये सब इतिहास शैली तथा धर्म के क्रमिक विकास काल के अनुसार सजाई गई हैं।

संग्रहालय में प्रवेश करते ही हमें दाऐं व बाऐं तरफ कनिष्क व विम कैडफिसिस की मूर्तियाँ दिखाई देती हैं। विम कैडफिसिस सिंहासन पर बैठा दिखाया गया है। दोनो पैरों के बीच उसका नाम लिखा है—"महाराजा राजातिराज देवपुत्र कुषाण-पुत्र षाहिविम तक्षम" लेख में इस राजा द्वारा एक देवकुल, उपवन, पुष्करिणी (तालाब) तथा एक कुआ बनवाने का लिखा है। देवकुल का अर्थ है—मन्दिर या वह राजकीय भवन जहां राजवंश की प्रतिमायें रखी जाती हैं। राजाओं की मूर्तियों

का ऐसे ही एक स्थान से पायाजाना देवकुल का अर्थ हमारे लिए सहल कर देती है ।

कनिष्क की भी एक आदमकद मूर्ति है लेकिन इसका सिर गायब है। सम्राट चोगा, कोट, सलवार और गिलगिट बूट पहने हैं। बायें हाथ में एक तलवार तथा दूसरे हाथ में राजदण्ड पकड़े हैं। सामने ब्राह्मी अक्षरों में लिखा है—

"महाराज राजातिराज देवपुत्र कनिष्क"

कनिष्क बहुत ही शक्तिशाली सम्राट था जिसका साम्राज्य चीनी तुर्किस्थान से काशी तक फैला हुआ था। कनिष्क के सामने ही लम्बा कोट व पायजामा पहने तथा तलवार लिये शक वंश के संस्थापक चष्टन की प्रतिमा है। कुशाण बादशाहों के देवकुल में इस मूर्ति का पाया जाना इनका आपस में घनिष्ट संबध होना बतलाता है। यह देवकुल मथुरा से आठ मील दूर माटगांव, टोकरी (तुरुष्क) टीला पर था। यह मूर्तियां कुशाण काल की थी जो संग्रहालय में प्रवेश करने वालों को पहले पहल दिखाई पड़ती हैं।

अति प्राचीन मूर्तियां

मथुरा की सबसे प्राचीन कला को दर्शाने वाली है परखम से प्राप्त यक्ष की बृहत्काय भारी मूर्ति जो ई० पूर्व छठी शताब्दी के आसपास की है। मूर्ति के कानो में भारी कुंडल, गले में हंसुली, हार तथा धोती पहने हैं। चरण चौकी पर इसके बनाने वाले शिल्पकार गोमित्र का नाम ब्राह्मी लिपि में लिखा है।

यक्ष मूर्तियां (शुंग काल)

बाद में शुंगकाल की यक्ष मूर्तियां तथा कुशाण काल की बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियां इसी नमूने पर बनने लगी। मथुरा में अनेक मृण-

मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें ज्यादातर महीमाता (प्रदितिअम्बिका) की मूर्तियाँ हैं जिसका प्रचलन बहुत ही प्राचीन काल से चला आ रहा है। न केवल भारत बल्कि अन्य देशों में भी पूज्य समझी जाती थी। वेदों में इसे महानग्नी, महीमाता, अदिति, देवमाता या अम्बिका कहा गया है। दूसरे देशों में भी इसके विभिन्न नाम पाये जाते हैं। मौर्यकालीन मूर्तियों में नाक को दबा कर और आंखों को हीरे की शक्ल की बना देते थे। इनमें से कई का मुख किसी पक्षी, या पशु की तरह दिखाई देता है। कुछ में नुकीला चेहरा तथा आंखें हैं। कानों में कुण्डल और कमर में नग्नता को छिपाने के लिए मेखला पहने हैं। ये सब मूर्तियाँ, कड़ी पकायी हुई मिट्टी की हैं जो बाद में काली रंग दी गई हैं।

शुंग-कालिक मृण्मूर्तियाँ केवल धार्मिक ही नहीं हैं। इस काल की मूर्तियाँ दैनिक जीवन से काफी संबंधित हैं। कुछ में सुन्दरियां नृत्य या नाट्य करती या गाती दिखाई गई हैं। कुछ में पंखा झुलाती, शृङ्गार करती या तोते को पढ़ाती दिखाई गई हैं। इनकी मुखाकृति, अलंकृति, केश विन्यास आदि शुंगकाल की मिली मूर्तियों व शिलापट्टों के चित्रण से काफी मिलती है। कुछ में गजलक्ष्मी, वसुंधरा आदि दिखाई गई हैं।

वेदिका शिलापट्ट

मथुरा में कई वेदिका स्तंभ मिले हैं। वेदिकायें स्तूप के चारो ओर लगी रहती हैं जो चार दिवारी का काम देती हैं। वेदिका के किसी खंभे पर कोई स्त्री स्नान के बाद बालों का पानी निचोड़ रही है। एक मोर उसे मेघ का पानी समझ पीने का प्रयास कर रहा है। एक दूसरे खंभे में एक स्त्री अपने पैर से अशोक वृक्ष को छू रही है। किसी-किसी खंभे पर नृत्य करती हुई सुन्दरी दिखलाई गई है। कुछएक में जातक कथाएं कन्दुक क्रीडा, खड्ग नृत्य, वेणी प्रसाधन आदि वर्णित हैं। ये सब खंभ शुंग व

कुशाण काल के हैं। इनसे ज्ञात होता है कि मथुरा के कलाकार स्त्रियों के घरेलू जीवन को विशेष प्रधानता देते थे।

एक शिलापट्ट पर एक आश्रम का दृश्य दिखलाया गया है। ऊपरी पट्टी में सजावट के लिए तीन यक्ष कमलनाभों की एक भारी माला उठाये हैं। नीचे वाले भाग में संभवतः रौमक जातक का चित्रण है।

कुशाणकाल

यमुना नदी के किनारे सप्तर्षि टीले से नीले पत्थर की मथुरा के शासक महाक्षत्रप राजुल की रानी कम्बोजिका की मूर्ति मिली है। यह रानी कम्बोज प्रदेश (गंधार) की थी। इस मूर्ति पर गन्धार शैली का काफी प्रभाव पड़ा है। इसी रानी का बनवाया हुआ स्तम्भ का सिंह शिखर मिला है। यह पलास्तर का बना है और अब लन्दन के संग्रहालय में रखा है। मथुरा के लाल पत्थर पर उसी की अनुकृति यहाँ रखी है। इस पर दो सिंह एक दूसरे की ओर पीठ किये समान दिशा में मुंह किये हैं। इसकी शैली पूर्णतया ईरानी है। इस पर लिखे खरोष्ठी शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने एक बौद्ध स्तूप और संघाराम भी बनवाया था।

कुशाण कालीन मृण्मूर्तियों में पुष्पों से आच्छादित कामदेव की मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। अपने हाथों में वह धनुष और बाण लिये हैं। पैरों के पास शूर्पक नामक मछुवा पड़ा है जिसकी कथा उस काल में काफी प्रसिद्ध थी। एक राजकुमारी कुमुदवती उससे प्रेम करती थी लेकिन वह उसकी ओर से उदासीन था। राजकुमारी ने कामदेव की सहायता से शूर्पक को अपने वश में किया था। कुछ अन्य मृण्मूर्तियां, शिव का नन्दी, त्रिरत्न चिन्ह, मकरमुख की नाली, आदि भी देखने योग्य हैं।

बौद्ध मूर्तिएँ

यहीं पास की बेन्च पर कुछ बुद्ध के जीवन से संबंधित घटनाओं के आयागपट्ट रखे हैं। बौद्ध शिल्पकार इन घटनाओं—लुम्बिनी में जन्म, बोध गया में निर्वाण, सारनाथ में प्रथम उपदेश और कुशीनगर में परिनिर्वाण—का बहुतायत से चित्रण करते थे। एक दूसरे पट्ट में बुद्ध इन्द्रशाल गुहा में बैठे दिखाये गये हैं। एक आयागपट्ट में जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों तथा जैनियों के अष्टमांगलिक चिन्ह दिखाये गये हैं। इस पर एक वेदिका से घिरे स्तूप का चित्रण भी था।

प्रथमशती के आरंभ तक बुद्ध की पूजा सांकेतिक चिन्हों से होती थी। लेकिन इसी समय के लगभग लोगों का ध्यान बुद्ध को साकार रूप में देखने व उसी दशा में पूजा करने का हो रहा था। यह यहाँ से मिले एक तोरण वहिर्द्वार के पत्थर पर बड़ी सुन्दरता से दिखाया गया है। इस पर सामने की ओर बुद्ध के भिक्षा पात्र, बुद्ध और बोधिसत्व की पूजा का दृश्य दिखाया गया है। दूसरी ओर पृष्ट भाग में बुद्ध के उष्णीष या पगड़ी तथा बोधिसत्व की पूजा का दृश्य है। इन सब पूजनीय वस्तुओं पर दो उड़ते हुए देव पुष्पवृष्टि करते दिखाये गये हैं। एक दूसरे तोरण की छत्री में स्तूप, बोधिवृक्ष तथा धर्मचक्र की पूजा का दृश्य है। दिवार के सहारे लगी एक पटरी पर बुद्ध की कुछ मूर्तियाँ रखी है। इनमें से कुछ काश्यप बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियाँ भी हैं। इन मूर्तियों में कोई विशेष भिन्नता नहीं दिखाई देती।

मध्य में एक लम्बा बलिदान स्तम्भ (यूप) खड़ा है जो यमुना नदी के किनारे पर पाया गया है। यूप के लेख से ज्ञात होता है कि सम्राट वासिष्क के राज्य के २४ वें वर्ष (ई० सन् १०२) में द्रोणल नामक सामवेदी ब्राह्मण ने द्वादश सत्र बलिदान कर यह स्तम्भ खड़ा किया। यह यूप आरम्भ में चौकोर है लेकिन ऊपर की ओर जाकर यह अष्टकोणी होगया है। मध्य में एक गोलाकार गाठ बनाती हुई रस्सी दिखाई गयी

है। संस्कृत के लेखमय इस स्तम्भ से ऐसा प्रतीत होता है कि कुशाण काल में पौराणिक हिन्दू धर्म का फिर से विकास आरंभ हो गया था।

यूनानी प्रभाव की मूर्तिएँ

पास ही के एक छोटे से कमरे में कुछ मधुपान करने वालों के दृश्य शिलापट्टों पर दिखाये गये हैं। एक तरफ मोटी तोंद वाले धनपति व यक्षों के राजा कुबेर कैलाश पर मधुपान करते दिखाये गये हैं। पास ही यूनानी वेश में उनकी पत्नी हारीती और बाल-रूप में कामदेव खड़े हैं। इस प्रकार के और भी दृश्य यहां मिले हैं। इनमें यूनानी भावों को बहुत ही सुन्दरता से दर्शाया गया है। यूनानी देवता बाकस का प्रतिनिधित्व भारतीय देवता आसवपायी कुबेर करते हैं। शिलापट्ट के दूसरी ओर बहुत ही ज्यादा नशे की दशा में वह अपनी पत्नी तथा एक परिचारिका द्वारा ले जाया जा रहा है। एक कुशाण कालीन मूर्ति में धन के अधिपति कुबेर एक मोटे तुन्दिल श्रेष्ठी के समान दिखाये गये हैं। पेट पर एक दुपट्टा बांध रखा है।

एक अन्य दृश्य में एक पुरुष तथा उसकी परिचारिका अपनी मदमस्त पत्नी को सम्हाले लिये जा रहे हैं। लड़की अपने हाथों में मधु का प्याला लिये है जो इस बात को सूचित करता है कि यह जीवन एक प्याला है जो पूर्णतया आनन्दमय है। इस शिलापट्ट के दूसरी ओर एक नृत्योत्सव दिखाया गया है। एक रानी अपनी एक दासी द्वारा सम्हाले हुए एक छत्र के नीचे बैठी है।

बोधिसत्व

एक पटरी पर नाना प्रकार के उष्णीष रहित जैन तीर्थंकर, उष्णीष सहित बुद्ध, मुकुट पहने बोधिसत्व, मुकुट सा सिर पर रखे एक मथुरावासी

विष्णु, शिव आदि के सिर दिखाये गये हैं। संग्रहालय के उत्तरी आंगन में बोधिसत्व की एक बड़ी डील-डौल वाली मूर्ति है। यह मूर्ति चकत्तेदार लाल पत्थर को कोर कर बनाई गयी है। मूर्ति का दाहिना हाथ जो अभयमुद्रा में था टूटगया है और बांया हाथ मुट्ठीबंध कमर से आश्रित है। बांये कन्धे पर एकांसिक संघाटी है और दाहिना कंधा नग्न है। अधोवस्त्र नीचे घुटने तक लटकता हुआ है जो दो लपेटों वाली मेखला से बंधा है। सिर घुटा है और उष्णीष टूट गया है। पैरों के बीच में कमलों का गुच्छा है। यह मूर्ति श्रावस्ती और सारनाथ वाले विशाल बोधिसत्व की मूर्तियों से बहुत मिलती है। कटरा केशवदेव से एक बुद्ध की मूर्ति मिली है। इसमें बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे पद्मासन लगाये अभयमुद्रा में बैठे हैं। हाथों तथा पैरों पर शुभ चिन्ह रेखा, स्वस्तिक, चक्र आदि बने हैं। भौंहों के मध्य में उर्णा बिन्दु, सिर पर उष्णीष तथा चारों ओर छाया मंडल है। ऊपर दो देव पुष्पवृष्टि कर रहे हैं और नीचे दो चामरग्राही चर खड़े हैं। इस पर लिखे लेख इसे बोधिसत्व बताते हैं लेकिन इस मूर्ति के अलंकारहीन होने से यह बुद्ध मूर्ति मानी जाती है।

सूर्य्य मूर्ति

दक्षिणी आंगन में कंकाली टीले से मिली कुषाण वेषभूषा में सूर्य की एक मूर्ति है। सूर्य पायजामा और बूट पहने हैं। इस वेष को वराहमिहिर के अनुसार उदीच्य वेष (उत्तरी वेष) कहा गया है। इस वेष में सूर्य की मूर्तियाँ बनाना कुषाण कला की विशेषता है। इसका मुख्य कारण शक राजाओं का सूर्य उपासक ईरानी होना है। सूर्य के बायें हाथ में कटार तथा दाहिने हाथ में कमलों का गुच्छा है।

नाग मूर्ति

मथुरा की सबसे प्रसिद्ध नागमूर्ति छार गांव का नाग है जो पौने,

आठ फुट ऊंची है। सिर पर सात फनो का घटा टोप है। वह धोती तथा एक गमछा बांधे है। कुंडलियों की लपेटों के बल बड़ी सुन्दरता से दिखाये गये हैं। पृष्ठ भाग पर लिखे लेख के अनुसार इस नाग भगवान की स्थापना महाराज राजाधिराज हुविष्क के ४० वें वर्ष में उसके दो मित्रों ने एक तालाब (पुष्करिणी) बनवाकर की। इस मूर्ति में कुशाण काल की सब विशेषतायें पायी जाती हैं।

शिलापट्ट पर रामग्राम के स्तूप का चित्रण है। इस स्तूप की नाग रक्षा करते थे। अशोक ने इस स्तूप से बुद्ध की अस्थियां निकालनी चाही लेकिन नागो ने निकालने नही दिया। इस दूसरे दृश्य में नागरानी को अपनी पाँच दासियों के साथ दिखाया गया है। यह योगिक कुन्डलिनी को दिखाता है।

गुप्तकाल की मूर्तियाँ

संग्रहालय के दक्षिणी भाग के कमरे में तथा आगन में ज्यादातर गुप्तकाल की मूर्तियाँ रखी हैं। इनमें सबसे सुन्दर बुद्धभिक्षु यशदिन्न की दान की हुई बुद्ध मूर्ति है। वस्त्र बहुत ही पतले दिखलाये गये हैं। कपडे इतने बारीक दिखलाये गये हैं कि उनमें से प्रत्येक अंग साफ झलकता है। प्रभामंडल बहुत ही सुन्दरता से बेल बूटों से सजा हुआ है। बुद्ध के मुख पर गभीरता, शांति तथा चित्ताकर्षक भाव है।

बुद्ध की मूर्ति के सामने की ओर चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति है। इसके अब हाथ टूट गये हैं। विष्णु मुकुट पहने हैं जिसमें मंकटिका आभूषण आदि हैं। अन्य आभूषणो में कुंडल, हारावली, वैजयन्ती, भुजबन्द, यज्ञोपवीत, मेखला आदि हैं। मूर्ति के ऊपर अलंकृत छत्र हैं। यह गुप्तकालीन हिन्दू कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है।

गुप्तकाल की मृण्मूर्तियो में स्वामी कार्तिकेय की भावमय मूर्ति बहुत ही सुन्दर है। एक दूसरे दृश्य में एक सुन्दरी एक विदूषक के गले में

लिपटे हुए रूमाल को खींच रहा है। दूसरे में एक भिक्षु एक तलवार से अपनी गर्दन शायद आत्म-बलिदान के लिए काट रहा है। एक दूसरी में सिंहवाहिनी दुर्गा, गोद में स्कन्द को लिये, नरसिंह व वराह के रूप में विष्णु, तोंदल कुबेर आदि दिखाये गये हैं।

गांधार कला

कुछ चुने हुये गांधार कला के नमूने भी यहां रखे हैं। महोली से मिली एक मूर्ति में बुद्ध, बौद्ध गया की छः वर्ष की तपस्या के बाद दिखाये गये है। बुद्ध का केवल ढांचा रह गया है। शरीरतत्व को बहुत ही सुन्दरता से दिखाया गया है। एक दूसरे पट्ट पर दीपकर जातक का चित्रण है।

मध्यकालीन मूर्तियां

मध्यकालीन मूर्तियो में गोवर्धनधारी कृष्ण की मूर्ति बहुत ही सजीव है। एक दूसरी में शेषनाग पर विष्णु सोये हुये दिखाये गये है। दो दूसरी मूर्तियों में विष्णु ध्यानमुद्रा में दिखाये गये हैं। एक मूर्ति में ब्रह्मा और सरस्वती अपने वाहन हंसो के साथ खड़े हैं। नवी शती की परखम से मिली यहां हनुमान की एक विशालकाय मूर्ति है।

समीक्षा

मथुरा कला क्षेत्र भारतीय कला शैली के पुनः जागरण की पहली पंक्ति मानी जाती है। यूनानी, फारसी व कुषानी तत्वो से प्रभावित गान्धार शैली का प्रभाव ४ थी शताब्दी तक भारत मे फैला हुआ था। गुप्त युग में भारतीय व हिन्दू प्रभाव फैलने लगा। मथुरा इस युग की देन गिनी जाती है। मथुरा में मूर्ति कला का विकास अधिक हुआ। बौद्ध, हिन्दू व जैन धर्म से प्रभावित यह कला केन्द्र विदेशी व भारतीय कला के सयोग काल का द्योतक समझा जाता है।

¤ ¤

—६—

अजन्ता

भारतवर्ष की चित्रकारी की प्रारंभिक कहानी कहां से शुरू हुई यह बतलाना कठिन है। इस कला का प्राचीन इतिहास अन्धकार में है। जो कुछ भी प्राचीन चित्रकारी प्राप्त हो रही है वह बौद्ध युग के प्रारंभिक अवस्था की है। इस समय की कला से इस बात का निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत में बौद्ध युग के पहले भी चित्रकारों की तूलिकाएँ रंगों में भरी जाती थीं। प्राचीन भारत के ग्रन्थों में चित्रों के रेखांकित तत्वों का आभास मिलता है परन्तु चित्र कला के विकास व प्रगति के बारे में ये ग्रन्थ मौन हैं। संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में, विशेषकर रघुवंश, उत्तररामचरित आदि में चित्र कला के संबंध में बहुत कुछ लिखा गया है। अभिज्ञान शाकुन्तल में निपुणिका एक चित्र बना रही है जिसमें "कर्यो संकान्तालिना हंसामिथुन" का दृश्य अंकित है। प्राचीन भारत के अवशेषों से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अमीर व गरीब दोनों के मकानों की दीवारों पर चित्र अंकित किए जाते थे। उनमें अधिकतर फल, फूल, पशु व मनुष्य के चित्र हैं। हाथी उस समय

का मुख्य पशु रहा होगा क्योंकि इस पशु के चित्र कई स्थानों पर मिले हैं। धार्मिक उत्सवों पर पशु का चित्र अच्छे शकुन का द्योतक समझा जाता था। विनय पिटक में उस समय चित्रों में कौन-कौन में रंग भरे जाते थे, इस संबंध में उल्लेख है। प्राचीन चित्रकारी का नमूना जोगीमगरा की गुफाओं से प्राप्त हुआ है। ये गुफाएँ २०० ई० पू० की मानी जाती हैं। मध्यप्रदेश के सरगुजा तालुका (मध्य प्रदेश) की रामगढ़ पहाड़ियों में बनी ये गुफाएँ प्राचीन स्थापत्य व चित्र कला के समन्वय का आश्चर्यजनक नमूना है। यह गुफा नाट्यघर या नृत्यशाला की तरह दिखाई देती हैं। इस शाला की चित्रकारी नष्ट हो गई है और रंग भी फीका पड़ गया है अतः इस कला का महत्व आसानी से नहीं आंका जा सकता है। चित्रों के समीप एक अभिलेख मिला है जिससे ज्ञात होता है कि यह शाला एक नर्तकी की थी जिसका नाम "सुतनुका" था। वह देवदासी थी। चित्रकार का नाम, जो कि संभव है इस देवदासी का साथी रहा हो, जिसने इस शाला का निर्माण किया होगा, देवदिन (देवदत्त) था।

अजन्ता की स्थिति

प्राचीन भारत की चित्रकारी का वास्तविक स्वरूप अजन्ता की गुफाओं में पाया जाता है। भारतवर्ष में अजन्ता को छोड़कर कहीं भी ऐसी कलाकृतिया नहीं है जिसमें पुरातत्व, स्थापत्य कला और चित्रकारी का इतना सुन्दर समन्वय हुआ हो। ये गुफाएं बम्बई राज्य में स्थित हैं। अजन्ता जाने के लिये दो मार्ग हैं एक जलगांव से जो अजन्ता से ३५ मील दूर है। दूसरा मार्ग औरंगाबाद से जहाँ से ये गुफाएँ ६६ मील दूर हैं। अजन्ता के पास कोई महत्वपूर्ण नगर नहीं है। चारों ओर घना जगल, पहाड़ियों की शृंखलाएं और नीचे बघोरा नदी की धारा इस कला के केन्द्र की शोभा को दुगुनी बढ़ा देती है। ये गुफाएं २५० फीट पहाड़ी

पर स्थित है, जो अर्द्ध गोलाकार रूप में आधे मील तक चली गई है। पहले पहल सन् १८१६ में इन गुफाओं का पता लगा था। हैदराबाद के निजाम की शासन व्यवस्था की देख भाल करने के लिये पहले अंग्रेज अफसर रहा करते थे। एक बार एक अंग्रेज औरंगाबाद के जंगलों में चला गया। वहां उसने पहाडी पर बनी इन गुफाओं को पहली बार देखा। इसकी खुदाई आरंभ हुई। उस समय इन चित्रो पर सदियों की धूल जमी हुई थी। चित्र टूटे हुए थे अतः बड़ी कठिनाई से इन चित्रों व गुफाओं को ठीक किया गया और भारत के प्राचीन वैभव का दिग्दर्शन किया गया। अंग्रेजी काल में इन गुफाओं को सुरक्षित रखने का उचित प्रयास किया गया परन्तु फिर भी अधिक महत्व नही दिया गया। स्वतंत्र भारत के लिए तो ये गुफाएं सर्वमाननीय थीं अतः वर्षा के पानी से और अन्य कारणो से गुफाओं को नष्ट होने से बचाया गया।

काल

अजन्ता की गुफाओ के निर्माण काल के बारे में विद्वानों ने कोई एक मत होकर राय नही दी है। कुछ विद्वानो का कहना है कि अजन्ता का युग ईसा से ३०० वर्ष पहले शुरू होता है और ७०० वर्ष बाद तक रहता है। उनका कहना है कि हुएनसाग (६३०—६४५ ई०) भारत यात्रा के समय अजन्ता भी गया था। उस समय अजन्ता के कलाकार चित्रों, मूर्तियो व स्तम्भो के निर्माण में संलग्न थे। डाक्टर वी. ए. स्मिथ का कहना है कि इस कला का आरम्भिक काल ईसा से २०० वर्ष पूर्व का है। सबसे पहले गुफा संख्या १३ का निर्माण हुआ था। इसके बाद गुफा संख्या ८ व १२ का। इन तीनों गुफाओं में कोई चित्रकारी नहीं है। गुफा संख्या ६, १०, ११ की चित्रकारी और स्थापत्य कला सम्भव है कि हीनयान सम्प्रदाय की प्रारम्भिक अवस्था द्वारा प्रभावित हुई हो। बची हुई २३ गुफाओं का काल १०० ई० से ७०० ई० तक का माना जाता

है क्योंकि ये सब गुफाएं बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय द्वारा प्रभावित हुई हैं। इस समय की चित्रकारी व स्थापत्य कला उसी सम्प्रदाय व युग की विचारधारा को प्रदर्शित कर रही है। गुफाओं की चित्रकारी किसी एक विशेष काल की नहीं मानी जाती है। गुफा संख्या ६ व १० की चित्रकारी सबसे प्राचीन है। यह चित्रकारी सांची की कलाकृतियों से इतनी मिलती जुलती है कि उनको समकालीन मानने में कोई सन्देह नहीं होता है। अतः यह कलाकृति ईसा से पहली सदी की ही मालूम होती है। पहली चित्रकारी सातवाहन वंश के बौद्ध शासकों की संरक्षता में अंकित हुई होगी। बाद की चित्रकारी और इस प्रारम्भिक चित्रकारी के बीच में काफी समय लगा होगा क्योंकि बाद की चित्रकारी का युग वाकाटक चालुक्य युग (४०० ई० से ६४२ ई०) था। गुफा सं० १६ में प्राप्त अभिलेख से ऐसा ज्ञात होता है कि यह गुफा वाकाटक वंश द्वारा बनाई गई है। डाक्टर स्मिथ का यह विश्वास सत्य प्रतीत होता है कि ६४२ ई. के बाद अजन्ता में कोई चित्रकारी नहीं हुई। ६४२ ई० में चालुक्य (सोलंकी) शासक पुलकेशिन द्वितीय पल्लवों से युद्ध करता हुआ मारा गया। इसके बाद दक्षिण के उत्तरी भाग की राजनैतिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई। इस प्रकार की अवस्था के समय इस स्थान पर कला की सेवा करना अत्यन्त कठिन था क्योंकि बौद्ध धर्म के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया शुरु हुई जिससे बौद्धिक शक्तियां नष्ट की जाने लगी। इस भाग में शैव धर्म पनपने लगा था। अतः सातवीं सदी के बाद अजन्ता की गुफाओं में चित्रकारी आदि का निर्माण रुक गया।

विशेषता

अजन्ता की चित्रकारी व स्थापत्य कला में युगों का सौन्दर्य भरा है। डा० फरगुसन के विचारों में गुफा संख्या १ सबसे बाद के युग की है और डाक्टर स्मिथ के विचारों में गुफाएं संख्या १३,८ व १२ सबसे प्राचीन हैं।

अजन्ता में कुल गुफाएं २६ हैं जो दो भाग में बांटी जा सकती हैं। एक चैत्य और दूसरे विहार। चैत्य कुल चार हैं गुफा संख्या ६, १०, १६, २६ और बाकी सब विहार। चैत्य बौद्धों के पूजा गृह और विहार निवासस्थान थे। ये गुफाएं लम्ब स्थित पहाड़ी में से काटी गई हैं जो जमीन से २५० फीट ऊंची है। इन गुफाओं का संबंध बौद्ध धर्म से है। बौद्ध धर्म के हीनयान और महायान मतों के विश्वासों पर अंकित चित्रकारी बनाई गई। कुछ चित्र अन्य धर्म के विचार भी प्रकट करते हैं। ३२ गुफाओं में जीवन के सभी अंगों को छू लेने वाली चित्रकारी दर्शित हुई है। चित्रकारी तो अब सिर्फ १३ गुफाओं में ही व्यक्त रह गई है। कुछ में तो निर्माण नहीं हुआ और अन्य में नष्ट हो गई है। अजन्ता की गुफाओं का निर्माण पत्थरों को काटछाट कर किया गया है। न कहीं पत्थर में जोड़ने की आवश्यकता, न कहीं टूटने की संभावना हुई। गुफा के स्तम्भों में कोई अन्तर नहीं है। यहां की चित्रकारी में जिन रंगों का प्रयोग हुआ है, उनमें एक भी रंग बाहर से नहीं लाया गया था। वहीं वृक्षों की पत्तियों, छालों, पत्थरों तथा मिट्टी आदि के मेल से विभिन्न रंग तैयार किए गए थे। उनके द्वारा चित्र में ऐसा मेल साधा है कि कहीं भी यह नहीं मालूम होता कि कोई भी रंग बेतुका अथवा बेमेल है। लगभग सभी गुफाओं की दीवारें, छतें और खंभे सुन्दर चित्रकारी से चित्रित हैं। छतों और खम्भों की चित्रकारी देखकर तो ऐसा लगता है, मानों वे कल ही तैयार हुए हों।

अजन्ता की खुदाई के समय इसका महत्व नहीं आंका गया था अतः उस समय के निजाम के कर्मचारियों ने इस कला क्षेत्र की महत्वपूर्ण कृतियों को नष्ट होने से नहीं बचाया। कभी-कभी तो कर्मचारी यहां की चित्रकारी को स्वयं उखाड़ कर भेंट देने के काम लेते थे। यहां तक कि प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञाता डाक्टर वर्ड कई वस्तुएं बम्बई के अजायबघर को सजाने के लिए ले गए। हिन्दू साधुओं का निवास स्थान ये गुफाएं रहीं

हैं। वे आग जलाते थे अतः उस धुंए के कारण कुछ चित्र काले पड़ गए हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत कम गुफाओं में से हम चित्रकारी के बारे में जान सकते हैं।

विषय

इन चित्रों का विषय मुख्यतः बौद्ध धर्म है। कुछ चित्र इस धर्म से कोई संबंध नहीं रखते हैं। इन चित्रों में बुद्ध की प्रतिमाओं, पवित्र वस्तुओं और सांकेतिक चिन्हों का प्रतिनिधित्व है। जो चित्र बहुत जटिल हैं वे या तो बुद्ध के जीवन से संबंधित हैं या वे जातक कथाओं के रेखा रंग चित्र हैं। इन जातक कथाओं में बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं की व्याख्या की गई है। दो चित्रों में जातक कथाओं के चित्र अत्यन्त सत्य प्रतीत होते हैं, परन्तु चित्रों का खंडित रूप प्राप्त होने से उन दृश्यों की वस्तुता प्राप्त नहीं की जा सकती है। गुफा संख्या १० में ६ सूंड वाले हाथी की कथा स्पष्ट मालूम होती है। इसी तरह गुफा संख्या १७ में सीबी राजा की कहानी, जिसने अपनी आंखें एक भिखारी को दे दी थी, स्पष्ट मालूम होती है। जातक कथाओं के अलावा भी मिश्रित बौद्ध संबंधी कथाएं यहां चित्रित हुई हैं। 'अवलोकितेश्वर' व उसके संबंधी चित्रों का भी समावेश किया गया है।

कई चित्र ऐसे हैं जिनका बौद्ध धर्म से कोई संबंध नहीं है। गुफा संख्या १ में कुछ ऐसे चित्र प्रगट हुए हैं। कुछ विदेशी, सम्राट की सेवा में भेंट लिए उपस्थित हैं। डाक्टर फरगुसन का कहना है कि यह चित्र एक राजदूत के स्वागत के उपलक्ष का है जिस को फारस के शासक खुसरो परवेज ने पुलेकेशिन द्वितीय (६२० ई) के दरबार में भेजा था। इसी गुफा में एक विदेशी शासक का अपने राज्य दरबारियों के सन्मुख शराब पीने का चित्र है। राजदरबारियों के हाथों में फारस की बनी हुई सुराही है। कुछ ऐसे चित्र हैं जो धार्मिक व राजनैतिक प्रभावों से मुक्त रहे हैं।

राजदरबार में नर्तकियों का नृत्य हो रहा है। राजा अपने आसन पर विराजमान हैं। इतने में कोई महात्मा आते हैं और ललकारते हैं। नर्तकिएं भयभीत होकर भागती हैं। राजा क्रोधित हो उठता है, एक नर्तकी रह जाती है और राजा की क्रोध भरी मुद्रा को देखकर उसके पैरों पर गिर पड़ती है।

प्रणाली

अजन्ता के चित्र फ्रेस्को (भित्तिचित्र पलस्तर सूखने के पहिले दीवारों पर चित्र खीचने की विधि) प्रणाली के कहे जा सकते हैं। ग्रिफिथ साहब का उल्लेख है कि अजन्ता व अन्य स्थानों पर दीवारो पर अंकित चित्रों की भारतीय प्रणाली और फ्रेस्को व टेम्प्रा का संयोग है। भारतीय चूने की यह विशेषता है कि वह अधिक समय तक गीला रह सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि चूने और रंग का संबंध बहुत घनिष्ट स्थायी और अधिक काल तक बना रहता है। इस प्रकार का ढंग आजतक अपनाया गया है। मन्दिर, मस्जिदें और मकानों पर ऐसे ही ढग से चित्रकारी होती है। दीवारों पर आधे से एक इन्च तक का चूना पहले रोज लगा दिया जाता है। फिर एक दिन बाद वह कुछ सूख जाता है, उसे पानी के छींटों से पुनः गीला किया जाता है फिर लकड़ी के तिखोने से साफ किया जाता है जिससे उसमें खुरदरापन मिट जाये। फिर चूने की प्लास्तर लगाई जाती है और कर्णी से उसमें सफाई लाने का प्रयत्न किया जाता है। फिर तीसरे दिन उसी कर्णी से पुनः रगड कर चमक पैदा की जाती है। उसे पूर्ण सूखने नही देते हैं। कुछ गीली रख देते हैं जिससे रंगों की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से हो सके। आधुनिक ढग के चूने व अजन्ता के समय के चूने में इतना ही फर्क था कि आजकल चूने को दीवारो पर चिपका दिया जाता है। अजन्ता की पहाड़ियों पर पहले, मिट्टी, फोरा, गोबर और पहाड़ो से बने छोटे-छोटे अणु पत्थर को मिला कर थोप दिया

जाता था और पूर्णतया इस मिश्रित पदार्थ को दबाकर रखा जाता था जिससे छोटे-छोटे हवा के छेद आदि बन्द हो जायें। यदि छत पर चित्रकारी करनी है तो इन तीन वस्तुओं के साथ-साथ चावल के भूसे को भी मिला लेते थे। प्रथम परत जो होती थी वह १/८" से ३/४" तक की मोटाई में होती थी। जब यह कड़ी हो जाती तो चूने के प्लास्टर का प्रयोग किया जाता था। आधार तैयार होने पर चित्र की रूप रेखा बनाई जाती फिर लाल रंग मे रंग दी जाती थी। चित्र की सूक्ष्म बातों में भिन्न-भिन्न रंग बाद में भरे जाते थे।

रंगों को चावल या तिल के पानी में मिला लिया जाता था। उसमें कुछ सूखा हुआ गुड़ भी मिलाते थे। पानी तो चित्रकारी करते समय मिलाते थे। जब चित्रकारी पूर्ण हो जाती तो उसी छोटी कर्णी से रगड़ा जाता था। संपूर्ण काम प्रारम्भ से अन्त तक गीला रखा जाता था जिससे प्लास्तर गीला बना रहे। जब वह चिकना (कर्णी से चिकना किया हुआ) आधार सूख जाता है तो रंग उभर आता है और फिर पानी से भी नहीं मिटता है। गुफा ६ में बुद्ध की मूर्ति बनाने में बहुत मेहनत की गई होगी क्योंकि वहां के प्लास्तर की सफाई व चिकनाई बुद्ध के चेहरे को रौनकदार बना देती है। मिसेज हेरिंगघम, जो कि एक विख्यात कलाकार थी, अजन्ता के रंगों के बारे में विचार व्यक्त करती हुई कहती है कि सफेद प्लास्तर पर लाल रंग का आधार बनाकर चित्रकारी की जाती थी। इसके बाद स्थानीय रंग भरे जाते थे। फिर चित्रों की रेखाओं को काली व भूरी तूलिकाओं से अंकित किया जाता था और अन्त में आवश्यकता-नुसार छाया-प्रभाव भी चित्रित किया जाता था। छाया और प्रकाश का तो अधिक महत्व नहीं दिया गया है परन्तु काले और सफेद रंगों का स्थानीय रंगों से विरोधाभास अत्यन्त महत्व का गिना जाता था।

इन चित्रों में जो रंग रंगने के काम में लिया जाता था वह सीमित था और प्राकृतिक द्रव्य का बना होता था। यह चूरे को नष्ट होने से

बचाता था। अजन्ता में जो रंग काम में लाए गए है, वे हैं, सफेद, लाल, भूरा, भिन्न-भिन्न स्तर या गहरे से लगाकर फीके रंग तक का धुंधला हरा व नीला। सफेद रंग चूने के क्षार से बना है। लाल और भूरा लोहे के मिश्रण से प्राप्त हुआ है। हरा रंग टेरेवर्ट का है और नीला रंग वेडर्य ('लेपिस लेजूली' एक प्रकार का बहुमूल्य पत्थर जो अधिकतर फारस या बदक्शाह में मिलता है) को पीस कर बनाया जाता था। बाकी रंग स्थानीय जगहों से प्राप्त हुए हैं। गुफा संख्या २ में छत पर नीले रंग के फूलों का दृश्य अजन्ता की चित्रकारी में ही पाया गया है। रामगढ़ पहाड़ी की जोगमगरा की गुफाओं में यह रंग नहीं मिलता है। अजन्ता में पीले रंग का प्रयोग अधिकतर काम में नहीं लाया गया था।

शैली

श्रीमती हेरिंगघम का कहना है कि अजन्ता के ये भित्तिचित्र ६ भागों में विभाजित किए जा सकते हैं जो कि एक समय की कला के विकास के द्योतक नही है बल्कि भिन्न कला के आदर्शों को बतलाते हैं। प्रथम श्रेणी में चित्रों के शैली का कुछ प्रभावशाली रूप है जिसमें नियमनिष्ठता अधिक है परन्तु कोमलता कम है। वे अधिक जानदार हैं। नाट्य रूपी वर्णनात्मक, जिनमें अधिक घटनाएँ हैं और आदर्श कम है। गुफा सख्या २ में तीन शैलिएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। दिवारो के दोनों ओर चार या पांच बड़ी शानदार ढंग (पोज) में अर्द्धनग्न चित्र है। वे रेखांकित हैं, आकार और व्यापक चेतना के रूप में एक समान है। कुछ चित्रों की शैली यूनान व रोम शैलियों के समान हैं और बाद के कुछ चित्रों की शैली चीनी शैली से मिलती जुलती दिखाई गई है। मुख्यतः शैली भारतीय है क्योंकि इस प्रकार की शैली कहीं अन्य जगहो पर नही पाई जाती है। अजन्ता के चित्र-मंडप में सब प्रकार के चित्रों का समावेश है। मनुष्य (पुरुष, स्त्री), पशु (छोटे व बड़े)

फल, फूल, पत्तिएँ, आदि अंकित हैं। इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकार मानव व प्राकृतिक जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग का अध्ययन करके अपनी तूलिका को बल देता था।

अजन्ता की गुफाएँ व मुख्य चित्र

अजन्ता की गुफाओं में चित्रकारी की व्याख्या करते हुए यह जान लेना अतिआवश्यक है कि सब गुफाओं में चित्र अंकित नहीं हुए हैं। प्रारम्भिक गुफा संख्या ८, १२ व १३ में तो चित्रकारी बिल्कुल नहीं है। सिर्फ १६ गुफाओं में चित्रकारी प्राप्त होती है वे हैं गुफा संख्या १, २, ४, ६, ७, ९, १०, ११, १५, १६, १७, १९, २०, २१, २२ और २६। इनमें से भी कई गुफाओं के चित्र धुंधले हो चुके हैं या नष्ट होते हुए प्रतीत हो रहे हैं। गुफा संख्या १, २, ९, १०, ११, १६, १७, १९ व २१ में चित्र स्पष्ट हैं व अपने समय की कला के द्योतक हैं। इन सबमें से गुफा संख्या १७ से प्राप्त चित्र, बहुत घने, स्पष्ट और विविधतापूर्ण हैं। इन चित्रित गुफाओं में गुफा संख्या ९ व १० सबसे प्राचीन चित्रित गुफा प्रतीत होती है। इन गुफाओं के चित्रों की शैली साची व भरहुत शैली से मिलती जुलती है। सबसे बाद की चित्रित गुफा संख्या १ है, जो चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय (६०८-६४२ ई०) की सरक्षता में बनी थी। अजन्ता की चित्रकारी की सूक्ष्मता पर दृष्टिपात करने के लिए एक विशेष पुस्तक की आवश्यकता है फिर भी मुख्य-मुख्य चित्रों की व्याख्या से उस चित्रकारी के आनन्द को प्राप्त किया जा सकता है।

गुफा संख्या १९

यह गुफा चैत्य के रूप में बनी है। यहा बौद्ध भिक्षु भगवान बुद्ध की आराधना किया करते थे। महायान सम्प्रदाय से प्रभावित कलाकारों ने बुद्ध की विशालकाय मूर्ति का निर्माण किया है। इस गुफा का बाह्य

भाग भी आकर्षक है। पत्थरों पर खुदाई का कार्य इतना सूक्ष्म और जटिल बन पड़ा है कि दर्शक मोह मुग्ध हो उस कलाकार की प्रशंसा किए बिना नही रह सकता है। इस गुफा में एक द्वारमण्डप है और संपूर्ण अग्रभाग सुन्दर मूर्तियो द्वारा सुसज्जित है। ये मूर्तियाँ व खुदाई उसी पहाड़ी की है जिससे यह गुफा काट-काट कर बनाई गई है। श्री फरगुसन का कहना है कि भारत में बौद्ध कला का यह एक पूर्ण और अद्वितीय नमूना है। चित्र भी सुन्दर बन पड़े हैं। चित्रों का मुख्य विषय बुद्ध है, जिनके कई रूप यहां अंकित किए गए हैं। छतों पर की गई चित्रकारी बहुत सुन्दर प्रतीत होती है।

गुफा संख्या १७

यह गुफा चित्रकारी के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। यह गुफा ईसा से ६ शताब्दी बाद की प्रतीत होती है। फूल, पत्तियो की चित्रकारी के साथ-साथ मनुष्यों के चित्र भी अंकित किए गए हैं। ये चित्र स्तम्भों पर चित्रित किए हुए हैं। ये चित्र उत्तरी भारत के घडवा स्तम्भों की खुदाई मे मिलते-जुलते हैं। "किर्ती मुख" की चित्रकारी के रूप उत्तरी भारत में मध्यकालीन कला के रूप थे। इस गुफा में ६१ चित्र अंकित हैं जिनका विस्तृत वर्णन डाक्टर बर्गस ने अपने नोटों में लिखा है। इनमें बड़े चित्र इतने जटिल और विविध चित्रो से भरे हैं कि उनका स्पष्टीकरण करना बहुत कठिन प्रतीत होता है। बुद्ध धर्म के प्रचार के हेतु बनाए हुए चित्रो में "बुद्ध धर्म का जीवन चक्र" चित्र बहुत स्पष्ट है। इस प्रकार के चित्र तिब्बत के लामा वर्ग बनवाकर बौद्ध धर्म का प्रचार करते थे। इस चित्र की लम्बाई ८'७" व चौडाई ५'१" है। इस चित्र की कथा पाली पुस्तकों में वर्णित राजा विजय का लका जाना और उस पर विजय प्राप्त करना, उसके राजतिलक का दृश्य और बाद में बुद्ध धर्म का प्रचार करना है। दूसरा चित्र सीबी राजा का है जो कि अपनी आँखें

एक भिखारी को अर्पित करता है। इसी गुफा में मां और बेटे का चित्र बड़ा सजीव बना है। इस चित्र द्वारा अजन्ता की चित्रकारी का माप प्रकृति के प्रेम और भक्ति का रूप स्पष्ट करती है। गुफा के अन्य भाग में शृङ्गार करती हुई एक महिला का चित्र ऐसा जान पड़ता है, मानों अभी बोल पड़ेगा। इस गुफा में एक ही कलाकार द्वारा चित्रित तीन चित्र ऐसे हैं जो अब चित्रों से भिन्न प्रतीत होते हैं। वे हैं (१) शेर और काले हिरन का शिकार, (२) हाथियों का शिकार, (३) एक हाथी जो कि राज्य दरबार का अभिवादन कर रहा है। ये चित्र छाया और प्रकाश की प्रणाली पर अंकित किये गये है। उनमें हलके भूरे रंग का आभास मिलता है सिर्फ फूल, पेड़, पत्तिऐं धुंधले हरे रंग की हैं। चित्रों का रेखाकरण हल्का, आसान व धुंधला है। पशुओं, घोड़े, हाथी, कुत्ते और काले हिरन के चित्र बड़े सुन्दर बने हैं।

गुफा संख्या १६

किसी समय इस गुफा के प्रत्येक अंग में चित्रकारी थी परन्तु यह चित्रकारी नष्ट कर दी गई। श्री ग्रिफिथ का सकलन इस गुफा की चित्रकारी के बारे में अधिक बातें नहीं बतलाता है। परन्तु एक "मरती हुई राजकुमारी" के दृश्य का वर्णन श्री ग्रिफिथ, श्री फरगुसन व डाक्टर बर्गेस बहुत प्रशसा के साथ करते हैं। एक उच्च घराने की राजकुमारी बहली बांयी भुजा तकिए के सहारे रख कर लेटी हुई है। उसके पीछे एक नौकर उसे सहारा देरहा है, एक नौकरानी अपना हाथ उसके वक्षस्थल पर रखे हुए हैं और उस ओर देख रही है। दूसरी कन्चुकिन पंखा झल रही है। एक वृद्ध व्यक्ति जिसके सिर पर सफेद टोपी है, द्वार की ओर देख रहा है। दूसरा एक स्तंभ के सहारे बैठा है। पीछे दो औरतें बैठी हैं। दूसरे कमरे में दो व्यक्तियों के चित्र अंकित हैं। एक व्यक्ति फारसी टोपी पहने हाथ में कलस लिए, जिस पर एक प्याला रखा है,

खड़ा है; और दूसरा, जिसके हब्शियों के समान घुंघराले बाल हैं, उससे कुछ मांग रहा है। उसमें दांयी ओर एक अलग कमरे में दो कंचुकिन बैठी हुई हैं। मृत्यु के सहारे लटकी हुई राजकुमारी का सिर झुका हुआ, अर्द्ध-खुली आंखे, पतली काया है। उसकी देखरेख के लिए कंचुकिन हैं। एक कंचुकी उसे सहारा दे रही है, दूसरी उसका हाथ पकड़े है, जैसे उसकी नब्ज देख रही हो। उसकी मुखाकृति गभीर और सन्देहात्मक है जैसे कि राजकुमारी का अंतिमक्षण उपस्थित हैं। सब व्यक्तियों की मुखाकृति उदासीन है। जमीन पर बैठी हुई महिलाओं ने उसके जीवन की आस छोड़ दी है और मुंह ढाके रो रही हैं। करुणा, दया और चिंता की अभिव्यक्ति इस चित्र के अलावा इतनी पूर्ण कहीं पर भी दिखाई नहीं देती है।

गुफा संख्या १०

इस गुफा में प्रारंभिक चित्रकारी के अंग विस्तृत रूप में पाए गए हैं। गुफा के दायी ओर वाली दिवार पर हाथियों के रेखा-चित्र बहुत शानदार हैं और अजन्ता की प्रणाली की सत्यता प्रगट करते हैं। बायी ओर की दिवार पर व्यक्तियों का एक जलूस जा रहा है, जिनमें कुछ पैदल हैं, कुछ घोड़ों पर हैं, जो भिन्न-भिन्न शस्त्रों व वस्त्रों से सुसज्जित हैं, और इनके पीछे औरतों का झुण्ड चल रहा है। यह चित्र मिटसा गया है। बहुत कठिनाई से डाक्टर बर्गेस ने इस जलूस के व्यक्तियों के मुण्डो व चित्रों का संकलन किया है। एक अन्य चित्र में एक राजा अप कंचुकियों द्वारा घिरा हुआ बतलाया गया है। भिन्न-भिन्न चित्रों का स्पष्टीकरण सन्तोषजनक है और हाथ, बाजू व मुख, बाल आदि की रेखाएं बहुत सुन्दर हैं। यह गुफा भी एक चैत्य गुफा थी। भगवान बुद्ध की आराधना का केन्द्र होने के कारण बुद्ध के अनेकों चित्र यहां मिलते हैं। स्तम्भों पर बुद्ध का सजीव रूप चित्रित किया गया है।

गुफा संख्या ६

यह गुफा सांची कला के युग की मानी जाती है। इस गुफा की चित्रकारी का रूप एक स्त्री के चित्र में है जो बैठी हुई है। उसका रूप अर्द्ध नग्न है। कटि में, हाथों में और सिर के बालों में गहने पहने हैं। हाथ जोड़कर वह किसी से दया चाहती है। यह चित्र एक सुन्दर प्लास्तर की पतली धारा पर बनाया गया था जो कि चट्टानों पर सीधा लगाया गया हो, ऐसा प्रतीत होता है।

गुफा संख्या २

इस गुफा में चित्रों का अधिक समावेश है। इन चित्रों में विशेषता यह है कि चित्र किसी समूह को अंकित नहीं करते बल्कि इकाई के रूप में प्रदर्शित किए गए हैं। इन चित्रों की कोराई बहुत चतुराई के साथ की गई है और कलाकार ने चित्रों के पोज को कठिन व आकर्षक बनाने का भरपूर प्रयास किया है। एक चित्र में एक स्त्री झुककर प्रणाम करती हुई बतलाई गई है। स्त्री की पीठ और कमर की धनुषाकार आकृति और झीने वस्त्र कला के अद्भुत नमूने हैं। एक अन्य चित्र में गहनों से अलंकृत स्त्री एक टांग पर खड़ी हुई स्तम्भ का सहारा लिए हुए है। वह किसी की प्रतीक्षा में खड़ी प्रतीत होती है। हाथ पैरों व मुखाकृति का रेखांकित रूप अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। इस गुफा में अंकित चौखटे बहुत सुन्दर और गोलदार हैं। वे सजीव दृष्टिगोचर होते हैं। छतों पर लम्बे चौखटे भी भावपंक हैं।

गुफा संख्या १

चित्रकारी व स्थापत्य कला का समन्वय जितना इस गुफा में हुआ उतना अन्य किसी गुफा में नहीं हुआ। इस गुफा के स्तम्भ ७ वीं शताब्दी

के हैं। उनकी खुदाई और वाह्यगरिमा व स्थूलता का भव्य रूप कलाकारो की विशेषता को स्पष्ट करता है। इस गुफा की चित्रकारी का विषय भिन्न-भिन्न है। धार्मिक, राजनैतिक, रोमान्टिक व अन्य प्रकार के चित्रों का समावेश इस गुफा में किया गया है। एक स्तम्भ पर छोटी सी चित्रकारी बहुत आकर्षक है। इस चित्र में दो बैल लड़ते हुए बतलाए गए हैं। बैलो के चित्रों की व्याख्या इस सुढंग की की गई है मानो चित्रकार पशुओं के शास्त्र का ज्ञाता हो। इस गुफा की छतों पर केन्द्रीय चौखटे में दो प्रेमियों का चित्र जिस सुन्दरता से बन पड़ा है उससे उस चौखटे की कलात्मक क्रियता में जान आगई है। छतों के चौखटों में अन्य चित्र भी हैं। एक चित्र में फलों, फूलो, पत्तों का रूप दिखाया गया है। दूसरे चित्र में मस्त और खिलवाड़ करता हाथी अंकित है। एक अन्य चित्र में फूलों के गन्ध में मस्त पक्षी विभोर में लीन है और युद्ध से भागता हुआ बैल का चित्र एक अन्य चित्रकारी का नमूना है। मंत्रणा करते हुए या गप्पें लगाते हुए दो व्यक्तियो का चित्र भी केन्द्रीय चौखट को सुशोभित कर रहा है। इस कला की प्रशंसा करते हुए ग्रिफिथ साहब का कहना है कि गुफा संख्या १ के चित्र, अजन्ता की चित्रकारी के अद्वितीय नमूने हैं और कलाकारों के इस कला पर पूर्ण अधिकार को व्यक्त करते हैं। इस चित्रकारी के विषय भिन्न हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों की व्याख्या है, अतः पुनरावृत्ति का भय नही है, कल्पना खुल के काम में ली गई है। प्रकृति के साधारण तत्वों को भी अलंकृत किया गया है।

प्रकृति व मनुष्यों के समन्वय के चित्रो का जो दृश्य अंकित हैं वह अत्यन्त आकर्षक है। कुछ चित्र फारसी कपड़ों में सुसज्जित हैं, फारसी साफे, कोट व धारीदार मोजे बनाए गए हैं। नृत्य करते हुए, संगीत में लय, शराब पीते हुए व्यक्तियो के दृश्य या हास्य करते हुए चित्र, इस कला के अद्भुत नमूने हैं। कमल के फूलों के साथ पशुओं के चित्र, हाथी, बैल, बन्दर पक्षी आदि के चित्र हैं। कुछ कमल पूर्ण तो, कुछ अधखिले

और कुछ कमल कली के रूप में ही हैं। लाल, सफेद, गुलाबी रंगों की मस्ती इन कमल के फूलों की सुन्दरता को चमका देती है। आम, सेव, बेल, नीबू आदि फलों के चित्र भी दिखाई पड़ते हैं। इन चौखटों में जो अलंकार हैं वे काले या लाल आधारों पर रंगे गए हैं। चौखटों में पहले आधार रंग भर दिया जाता था, फिर सफेद रंग से अलंकृत किए जाते थे। सफेद पर पतले पारदर्शक रंगों से उनका विस्तार किया जाता था।

इस गुफा में भित्तिचित्रों में बुद्ध का प्रलोभन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यशोधरा का चित्र बड़ा ही आकर्षक है। इसी गुफा में फारस के राजदूत का स्वागत बतलाया गया है। फारसी टोपी के द्वारा इस चित्र का आशय फारस से संबंधित माना जा सकता है। फारस के राजदूत का भारतीय राज्य दरबार में आना इस चित्र का आधार बना है। एक अन्य चित्र जो फारस के जीवन से संबंधित है वह छत की चित्रकारी में से प्राप्त किया जा सकता है। इस चित्र में एक विदेशी शासक अपनी रानी के साथ बैठा हुआ है। दो नौकर हाथों में तश्तरी लिए हुए, जिनमें फल हैं, जमीन पर बैठे हुए हैं। दो कंचुकिएँ दाएं बाएँ खड़ी हैं। एक के हाथ में सुराही है। शासक हाथ में प्याला लिए कुछ पीने की प्रतीक्षा में है। श्री फरगुसन का कहना है कि यह विदेशी शासक फारस का बादशाह खुसरो और रानी शीरीन का चित्र है।

समीक्षा

अजन्ता के चित्रों की समीक्षात्मक व्याख्या यदि की जाय तो यह चित्रकारी विश्व की प्रमुख चित्रकारियों में विशेष स्थान प्राप्त करती है। अजन्ता की चित्रकारी सिर्फ कलात्मक भावों का चित्रण ही नहीं करती बल्कि व्यावहारिक जीवन की प्रेरणा को उत्पादित करती है। सुन्दरता और पूर्णता का रूप तो अन्य चित्र भी हो सकते हैं पर जो सात्विक विश्वासों के आधार पर यह चित्रकारी की गई वह इसकी मौलिकता है।

"कुछ स्पष्टता सीमित होते हुए भी, श्री ग्रीफिथ लिखते हैं—मुझे अजन्ता के चित्र हर रूप में सुन्दर लगे हैं, वे इतने पूर्ण, रेखांकित रूप में इतने विविध, परम्परा की गतियों में व क्रिया में इतने दृढ़ व अनुकूल और रंग में इतने सुन्दर हैं कि मैं उनको विश्व के सर्व श्रेष्ठ चित्रों की गिनती में रखने का साहस करता हूं।" इटली और चीन की चित्रकारी के समान कहीं-कहीं उनसे भी अद्वितीय, अजन्ता के चित्र बन पाये हैं। अजन्ता में दर्शक को संसार की एक व्यापक झांकी मिलती है। अजन्ता का कलाकार मध्ययुग के यूरोपीय कलाकारों की तरह कट्टर नहीं था। स्त्री शरीर के पूर्ण सौन्दर्य के चित्रण में उसकी तूलिका कुंठित नहीं हुई थी। अजन्ता के चित्रकारों ने पेड़, पौधों और जीव जन्तुओं का चित्रण भी बड़े प्रेम से किया है। कमल के फूल को तो हर अवस्था में कली से लेकर उत्फुल्ल रूप में बनाया गया है। पत्तियों, कीटों और जंगली जानवरों के चित्र पूरी स्वाभाविकता से अंकित हैं। भगवान बुद्ध को भी एकान्त में तपस्या करते नहीं वरन् संसार के नित्य के व्यापार के बीच विचरते चित्रों में दिखाया गया है। चित्रों में मकानों, वेशभूषाओं, आभूषणों, बर्तनों, और घर के सामानों आदि का चित्रण है जो अत्यन्त स्पष्ट है। अजन्ता के चित्रों से ज्ञात होता है कि इनके कलाकारों को मनुष्य और प्रकृति के सूक्ष्म अंग प्रत्यंगों का कितना गहन अध्ययन था। उन्होंने जीवन और साधारण व्यापारों को सुन्दरता प्रदान कर दी थी। मां का दूध पीते हुए बच्चे, खेलते हुए शिशु, आमोद प्रमोद में लीन युवक, रोग और शोक से विरक्त, तपस्या में लीन सन्यासी, ज्ञान प्राप्ति के बाद विश्व कल्याण की ओर अग्रसर बुद्ध, इस प्रकार के जीवन का एक पूर्ण दर्शन इन चित्रों में है जो बौद्ध धर्म के साथ-साथ अन्य देशों में भी फैला। अफगानिस्तान के बामियान में, लंका के सीगिरिया में, तिब्बत और नेपाल के ध्वजचित्रों में, चीन की तुंग हुआंग गुफाओं में, और जापान के होरिउजी में इसी चित्र कला की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारत की तत्कालीन व भावी चित्रकला की प्रेरणा बनकर अजन्ता का

कलाक्षेत्र व्यापक बन गया है। बाघ गुफाओं में जिसका निर्माण गुप्तकाल में हुआ था, अजन्ता की विशेषताएँ—रंग, तूलिका का घुमाव, भीतिचित्र आदि पाई गई हैं। भिन्नता तो सिर्फ इतनी ही है कि जहां अजन्ता सामंती युग और प्रभाव से मुक्त नहीं है वहां बाघ जनवादी प्रभाव का अन्यतम मिश्रण है। बाघ के चित्रों में जीवन की दैनिक घटना है। अजन्ता के चित्र परम धार्मिक हैं तो बाघ के जीवन चित्र मानव जीवन से संबंधित हैं। कन्हीरी की गुफाओं (निर्माण काल ६वीं शताब्दी) में भी अजन्ता का प्रभाव स्पष्ट मालूम होता है। कन्हीरी की गुफाओं में वाघ अंक पद्धति है। बाघ में जीवन की प्रगति का रूप होने पर भी अजन्ता से सामन्जस्य नहीं कर पाई है। यों तो बाघ की अंकन पद्धति अजन्ता से साम्य रखती है परन्तु यहां के कलाकार दीर्घ-दर्शी न थे।

☆ ☆

—१०—

एलोरा

प्राचीन भारत और मध्यकालीन भारत की सीमा रेखा का युग (६ वी व १० वी शताब्दी) कला व धर्म के समन्वय का शिखरबिन्दु गिना जाता है। प्राचीन भारत की कला धर्म प्रभावित थी। ब्राह्मणों के विश्वासों, सिद्धान्तो व आचरणों का प्रभाव कला में जिस चतुराई के साथ किया गया वह सराहनीय रहा है। बौद्ध धर्म के प्रचार में कला की रेखाओं, चित्रों व स्थूल कार्य कोष्ठकों ने जो योग दिया वह आज भी स्मृति के स्पन्दनों में जीवित है। जैन प्रभावित कला के अवशेषो ने उस धर्म के सिद्धान्तों की व्यापकता का रूप चित्रित करने में जो सफलता प्राप्त की है उससे भारतीय धर्म का समन्वय करने में बहुत सहायता मिली है। भारत के कला केन्द्रों में इन तीनों धर्मों के मिश्रण यद्यपि कहीं एक कलाकृति के रूप में तो नहीं पाये गये हैं परन्तु एक ही केन्द्र में तीनो धर्मों से प्रभावित कला का रूप बहुत से कला केन्द्रों से मिलता है। मथुरा, गान्धार व बनारस कला शैलियों में भिन्न-भिन्न कलाओं का मिश्रण रहा है। निश्चय ही ये कलाएं एक दूसरे द्वारा प्रभावित हैं परन्तु

कला के वैभव का रूप, भिन्न-भिन्न भागों में होते हुए भी एक साथ प्रसारित होने का रूप एलोरा के क्षेत्र में ही दिखाई पड़ता है। इस क्षेत्र में ब्राह्मण, बौद्ध, जैन कला के चिन्ह ही प्राप्त नहीं हुए हैं बल्कि द्रविड़ों की कला के छाया अवशेष भी मिले हैं। सम्भव है कि दक्षिण भारत के कलाकारों की भांकी द्रविड़ कला के प्रसारक रहे थे। अजन्ता और एलोरा गुफाओं में समानता होते हुए भी कई विषयों में विभिन्नता है परन्तु एलोरा में चट्टानों को काट कर मन्दिरों की निर्माण शैली अधिक कला पूर्ण है। अतः एलोरा की गुफाओं व मन्दिरों में विकसित कला का अध्ययन अत्यन्त मार्मिक होना स्वाभाविक है।

स्थिति, समय, काल

अजन्ता से ६० मील उत्तर की ओर औरंगाबाद की पहाड़ियों में छिपा हुआ एलोरा का कलाक्षेत्र (अक्षांश २०°.२ उ०, देशान्तर ७४° ८० पू०) स्थित है। इस क्षेत्र के पास भूतपूर्व हैदराबाद राज्य (अब बम्बई राज्य) का प्रसिद्ध नगर औरंगाबाद बसा हुआ है। यह नगर एलोरा से दक्षिण पूर्व में १४ मील की दूरी पर स्थित है। प्राकृत भाषा में इसका नाम एलउर मिलता है। "धर्मोपदेशमाला" के विवरण (रचना काल सं० ६१५) से ज्ञात होता है कि एलउर नगर की ख्याति दूर-दूर फैली हुई थी। इन नगर की गुफाओं को यहीं की पहाड़ियों को काट-काट कर बनाया गया था। ये गुफाएं एक काल में नहीं बनी थीं बल्कि कई सदियों तक बनती रहीं। इसका प्रमुख प्रमाण विभिन्न समय की कला शैलियों द्वारा मिलता है जो यहां प्राप्त हुई हैं। इतिहासकारों व कला विशेषज्ञों के विचार में इसका निर्माण ईसा की पांचवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था। यह कला गुप्त कालीन समय की मानी जाती है और अजन्ता की समकालीन कलाओं में से एक कला क्षेत्र इस प्रदेश का भी है। चालुक्यों के युग में एलोरा के कलाक्षेत्रों की बहुत उन्नति हुई होगी और

कलाकारों के संरक्षक जीवन में परिवर्तन हुआ होगा। इस कलाक्षेत्र का चरम सीमा काल आठवीं सदी माना जाता है। इस काल में बौद्ध, हिन्दू, व जैन कलाकारों के द्वारा इस क्षेत्र को गुफाओं, मन्दिरों, मूर्तियों से सजाया गया। १० वी शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक यह प्रदेश उजड़ गया होगा ऐसा प्रतीत तो नहीं होता है परन्तु इस प्रदेश में कई उपद्रवों का समावेश हो जाने से कला की उपासना रुक गई होगी। इस क्षेत्र में अजन्ता की चित्रकला का समावेश नही है परन्तु गुफाओं, मूर्तियों और स्तम्भो की बनावट का विषय व उद्देश्य अजन्ता के समान ही रहा है।

गुफाएं

एलोरा के क्षेत्र में पहाड़ियों को काट कर गुफाएं बनाई गईं थी। ये पहाड़ियें पठारों के रूप में विस्तृत फैली हुई हैं। यह पठार उत्तर से दक्षिण में फैला हुआ है और इसकी लम्बाई सवा मील के लगभग है और पश्चिम की ओर उंची चोटियें खड़ी हुई हैं। दक्षिण दिशा में पश्चिमी चोटी के पास से सबसे प्राचीन गुफा प्रारम्भ होती है जो उत्तर की ओर समय के अनुसार बनती गई हैं। इस क्षेत्र में सबसे बाद की गुफाएं जैन गुफाएं मानी जाती है जो उत्तरी बिन्दु से पूर्व की ओर गई हैं। गुफाओ में बौद्ध, हिन्दू व जैन धर्म की गुफाओं का मिश्रण है परन्तु इनके नाम अधिकतर हिन्दू ही रहे हैं। ये नामकरण सम्भवतः हिन्दू प्रभाव क्षेत्र में स्थित होने के कारण हो गए होंगे। नामो में ब्राह्मणत्व होने से कलाओं के विभिन्न धर्म के विषयों पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा। इस क्षेत्र में ३४ गुफाएं हैं जो दक्षिण भाग से प्रारम्भ होकर उत्तर की ओर फिर पूर्व की ओर गई हैं। प्रथम बारह गुफाएं बौद्धो की हैं इन गुफाओं का काल दो सौ वर्षों तक (४५० से ६५० ई० तक) रहा। इसके बाद ब्राह्मण गुफाओ का आरम्भ होता है। गुफा सख्या १३ से गुफा संख्या २९ तक की गुफाएं ब्राह्मणों की है। इसका काल ६५० ई०

से ८०० ई० तक का रहा। अन्तिम गुफाओं का समूह जो गुफा संख्या ३० से गुफा संख्या ३४ तक है, जैन धर्म की कला से प्रभावित है। इसका काल सम्भवतः नवीं शताब्दी से शुरू होता है और दसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक रहा। ये गुफाएं धर्म प्रचारकों, भिक्षुओं व दार्शनिकों का निवास स्थान रही होंगी जैसा कि गुफाओं के आकारों से ज्ञात होता है। यहां के भिक्षु या साधु मूर्तिपूजक थे। चैत्य व विहार दोनों ही यहाँ पाए गए हैं। धर्म, शिक्षा, दर्शन और कला का सुन्दर सम्मिश्रण इस क्षेत्र में जिस व्यापक रूप से मिला है वैसा अन्य किसी स्थान पर नहीं पाया गया है। गुफाओं के वर्गीकरण के अनुसार कला का अध्ययन भी तीन भागो में किया गया है—बौद्ध कला की गुफाएं, ब्राह्मण कला की गुफाएं और जैन कला की गुफाएं।

बौद्ध कला की गुफाएं (४५९ ई० से ६५० ई०)

प्राचीन भारत की कला में धर्म के तत्वो का समावेश हुआ। इस दृष्टि में बुद्ध धर्म से प्रभावित कला के क्षेत्र इतने व्यापक हैं कि समूचे भारत का गौरव इन्हीं क्षेत्रों पर निर्भर हो गया है। बुद्ध धर्मावलम्बियो ने ही पहली बार चट्टानों को काट कर मठ व मन्दिरों का निर्माण किया था। उनकी प्रारम्भिक कला साधारण व सादगी से भरी पड़ी थी। उनके चैत्य चौकोर होते थे जिनके चारो ओर भिक्षुओं के रहने के लिए छोटे-छोटे कमरे रहते थे। चौकोर दालान के उत्तर की ओर एक दहगोबा होता था जो कि पूजने का स्थान होता था। यह दहगोबा स्तूप की तरह होता था। बुद्ध के अवशेषों के कुछ चिन्ह इसमें रख दिये जाते थे। दक्षिण की ओर अर्द्ध गोलाकार के रूप में गुफाओं का प्रवेशद्वार होता था। दहगोबा के ऊपर लकड़ी का बना छत्र होता था। उन दिनों में बुद्ध मूर्ति की उपासना नहीं होती थी। कालान्तर में जब मूर्ति पूजा प्रारम्भ हो गई तो गुफाओं में मूर्ति कला का श्रीगणेश हुआ। एलोरा की

गुफाओं में बौद्ध प्रभावित गुफाएं इसी युग—मूर्ति पूजा के युग—की मानी जाती हैं।

बौद्ध गुफाओं की संख्या १२ है। पहाड़ियों को काट-काट कर बनाई गई इन गुफाओं में बौद्ध भिक्षु भगवान बुद्ध की स्तुति व अपने निवास के लिए काम में लाते थे। अतः यहां पर चैत्य व विहार दोनों ही प्रकार की गुफाएं मिलती हैं। इन गुफाओं के दो वर्ग किये जा सकते हैं। प्रथम ढेडवाड़ा जो संख्या १ से ५ तक की गुफाएं हैं और "दूसरी संख्या ६ से १२" तक की है। दूसरे वर्ग की गुफाएं बाद की हैं। प्रत्येक गुफा में एक प्रार्थना गृह है व उनके साथ भिक्षुओं के रहने के लिए विहार भी हैं। प्रथम वर्ग में महत्वदा के स्थान पर पूजा होती थी और दूसरे वर्ग में पूजा चैत्य गृहों में होने लगी थी। इन गुफाओं में विकसित कला के अध्ययन में यह स्पष्ट लगता है कि एक विशेष प्रकार के स्तम्भ व उसका ऊपरी हिस्सा चट्टानों से ही काट-काट कर बनाया गया है। ढेडवाड़ा गुफाओं के नामकरण में एक विशेष बात का ज्ञान होता है। डाक्टर जे० विल्सन का विश्वास है कि बौद्ध भिक्षुओं, जिन्हें थेरा कह कर पुकारते थे, के रहने के स्थान थेरवाडा थे। ब्राह्मण बौद्ध भिक्षुओं को ढेडवाडा कह कर पुकारते थे क्योंकि अधिकतर बौद्ध निम्न जातियों या पहाड़ी जातियों और आदिवासियों में से होते थे। अतः उन्हें निम्न जाति के समझते थे। सम्भव है इसी प्रकार की धारणा से एलोरा में इस प्रकार नामकरण किया गया हो।

गुफा संख्या १

यह गुफा अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। इसकी महत्ता यही है कि एलोरा के दक्षिण की ओर से बसने वाली गुफाओं में सबसे प्राचीन है। इसमें एक विहार है जो आठ स्तम्भों से सुसज्जित है। यह गुफा ४१ फीट

६ इंच चौड़ी और ४२ फीट ३ इंच गहरी है। इसका सामुख ध्वंसात्मक रूप में एक स्तम्भ की स्मृति छोड़ कर बिखरा पड़ा है।

गुफा संख्या २

यह गुफा बहुत बड़ी है। यह एक चैत्य रहा होगा क्योंकि पूजा का सदन बहुत बड़ा दृष्टिगोचर होता है। इस गुफा में जाने के लिए सीढ़िया हैं जो कि अनेक खम्भों के आधार वाले कमरे में पहुँचा देती हैं। इस प्रकार के कमरे के सामने का भाग बौने व्यक्तियों की मूर्तियों के रूप में खुदा हुआ है। इस पर एक दालान रहा होगा, जिनके स्तम्भों के अवशेष अब भी मिलते हैं। दालान के उत्तर के भाग की ओर एक मूर्ति है जिसका मुकुट खंडित है और गले में हीरों की माला है। इसके दाहिने हाथ में फूलों का गुच्छा है। उसके दोनो ओर छत्रधारी खड़े हैं। उसी मूर्ति के दाएं, बाएं छोटी-छोटी बुद्ध मूर्तियां हैं जिनके पास छत्रधारी खड़े हैं और दक्षिण भाग की ओर एक स्त्री की मूर्ति है जिस पर गन्धर्व हाथ में माला लिए खड़ा है। द्वार के पास दो द्वारपाल स्थित हैं। इनका मुकुट अति सुन्दर है। द्वार और द्वार रक्षकों के बीच एक स्त्री की मूर्ति है।

यह गुफा ४८ फीट वर्ग की है। इसकी छत बारह अलंकृत खम्भों पर स्थित है। ये खम्भे १७ फीट ऊँचे हैं और चौकोर आधारों पर खड़े हैं। 'आठ स्तम्भों पर बावनों के चित्र हैं। पास के गलियारे में कई विभाग हैं। प्रत्येक विभाग में बुद्ध प्रतिमाए हैं। यह गलियारा कलाकारों की जीती जागती स्मृति मालूम होती है। इस गलियारे के चित्रों में कई चित्र अधूरे हैं अतः ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध प्रतिमा के निर्माण के बाद में गलियारे बने थे।

बीच में बुद्ध की बड़ी प्रतिमा है। बुद्ध एक सिंहासन पर आसीन हैं। यह सिंहासन शेरों के द्वारा उठाया हुआ है। बुद्ध की प्रतिमा उपदेश देने

की क्रिया में हैं। सिर घुंघराले वालों से आच्छादित है। दोनों ओर गन्धर्व हैं। सिंहासन के कोनों पर छत्रधारी खड़े हैं। पीछे दीवार पर बोधिसत्व के चित्र अंकित हैं। इस मन्दिर के द्वार पर दो द्वारपाल हैं जिनकी ऊंचाई १३ या १४ फीट है। मन्दिर के दोनों ओर अठकोणी कमरे स्थित हैं। बाहरवाली कतार में बुद्ध की भिन्न-भिन्न मूर्तियां हैं। उत्तरी द्वार के विमुख में एक नारी की मूर्ति है जो कि सम्भव है बुद्ध की मां, माया, यशोधरा या पद्मपानी की हो। दूसरे स्थानों पर पद्मपानी की कई प्रतिमाएं हैं, जो एक या दो सेविकाओं के साथ खड़ी है। इस चैत्य का द्वार घोड़े के खुर की तरह अर्द्धचन्द्राकार है।

गुफा संख्या ३

यह गुफा विहार के रूप में है। यह ४० फीट वर्ग है और ११ फीट ऊँची है। इसकी छत १२ चौकोर खम्भों पर स्थित है परन्तु ये चौकोर स्तम्भ ऊपर की ओर गोलाकार हो गए हैं। फैले हुए कान और गोल गर्दन का रूप प्रतीत होता है। भिक्षुओं की गुफाएं भी १२ हैं। ५, ५ दो कतारों में और दो मन्दिर के पीछे की ओर। दालान के उत्तरी भाग में बुद्ध की प्रतिमा कमल पर स्थित है। कमल नागों के फण पर रखा हुआ है। यह पद्मासन की मुद्रा प्रकट होती है।

गुफा संख्या ४

यह गुफा ध्वसांवस्था में है। इसका आधा हिस्सा तो लुप्त हो चुका है। यह गुफा ३५ फीट चौड़ी व ३६ फीट गहरी है। इस गुफा के उत्तरी भाग पर पद्मपानी के रूप में बुद्ध विराजमान है। एलोरा की बौद्ध गुफाओं में बुद्ध की प्रतिमा का एक ही रूप है परन्तु इस प्रतिमा में उसके बाल कन्धों तक लटके हैं, हरिण की खाल कन्धों पर रक्खी है, दाएं,

हाथ में माला व बाएं हाथ में कमल है। दो स्त्रियें उनकी सेवा में उपस्थित हैं जो हाथ में फूल लिये हैं। उस पर एक बोधिसत्व की मूर्ति खड़ी है और उस पर बुद्ध पद्मासन लगाए हुए हैं।

गुफा संख्या ५

चौथी गुफा से नीचे की ओर चलते हैं तो एक बहुत बड़ा विहार दिखाई देता है जो ११७ फीट लम्बा और ५८।। फीट चौड़ा है इसकी छत २४ खम्भों पर स्थित है। खम्भे चौकोर हैं और ऊपरी भाग दबे हुए तकिए की तरह गोल हैं। ये खम्भे दो कतारों में स्थित हैं। इस गुफा में २० छोटे कमरे हैं। इन खम्भों के पास पत्थर की बेन्चे हैं। सम्भव है यह पाठशाला के काम में लायी जाती रही हो। कतारों के अन्त में एक छोटा सा चैत्य है जिसमें पद्मासीन बुद्ध प्रतिमा अंग रक्षकों के सहित है। कान्हेरी गुफाओं में दरबार गृह के समान यहां पर भी एक बड़ा गृह बनाया हुआ है। यह सदन पूजा और प्रार्थना के लिए काम में लिया गया होगा। हाल में बेंचों के रूप में पत्थर के बने चबूतरों पर दोनों ओर एक दूसरे के सम्मुख भिक्षु बैठते थे। दायी ओर ऊँचे आसन पर मुख्य भिक्षु बैठता था फिर बुद्ध की प्रतिमा के सम्मुख पूजा व प्रार्थना होती थी।

गुफा संख्या ६

बौद्धो की गुफाओं के द्वितीय भाग (६ से १२) की गुफाओं में यह विशेषता झलकती है कि उनके गृह बड़े हैं व चैत्य गृह भी हैं। इस गुफा में तीन बड़े गृह थे। केन्द्रीय गृह साढे छब्बीस फीट चौड़ा और ४३ फीट लम्बा है। इसके उत्तर की ओर २७ फीट चौड़ा व २६ फीट लम्बा दूसरा गृह व दक्षिण की ओर २८।। फीट लम्बा व २६ फीट चौड़ा तीसरा सदन है। प्रत्येक सदन स्तम्भों व दीवार से अलग किया प्रतीत

होता है। अब तो इनके खन्डहरों के अवशेष ही रह गए हैं। अन्य गुफाओं की तरह एक छोटा सा मन्दिर है जिसके उत्तरी भाग में पद्मपानी की खड़ी मूर्ति है और दक्षिण भाग में एक दूसरी स्त्री का चित्र है जिसके दाएं हाथ पर मोर है और नीचे एक पंडित पुस्तक का पाठ कर रहा है। सम्भव है यह सरस्वती का चित्र हो। द्वार पर बड़े-बड़े द्वारपालों की मूर्तिएं हैं। मन्दिर के कोष्ठ में बुद्ध विराजमान है।

गुफा संख्या ७

इस गुफा में पहुंचने का मार्ग गुफा ६ से है। सीढियो से उतरते ही एक बड़ा विहार दृष्टिगोचर होता है जो कि ५१॥ फीट चौड़ा व ४३॥ फीट गहरा है जिसकी छत चार चौकोर खम्भों पर स्थित है। इसमें पांच कमरे पीछे की ओर हैं और तीन प्रत्येक भुजा में।

गुफा संख्या ८

गुफा संख्या ७ से एक अपूर्ण कमरे के भीतर से चलते हुए हम इस गुफा में प्रवेश करते हैं। इस गुफा में एक आन्तरिक सदन है जो २८ फीट लम्बा व २५ फीट चौडा है। इसके व मन्दिर कोष्ठ के बीच में एक विराजमान बौद्ध मूर्ति है और चारों ओर प्रदक्षिणा है। दक्षिण प्रवेश द्वार की दीवार पर सरस्वती विराजमान है। मन्दिर की सजावट द्वारपालों, विराजमान बुद्ध, पद्मपानी से, भक्तों की प्रतिमाओं से की गई है।

गुफा संख्या ९

इस गुफा का स्वरूप स्पष्ट व चट्टानों पर खुदाई का कार्य साफ दिखाई पड़ता है। दक्षिण भाग की ओरसे प्रवेश करने पर एक बरामदा

व एक आन्तरिक आच्छादित धरमाली व नीचे की ओर झुके हुए कानों के समान स्तम्भों के ऊपरी भाग दिखाई देते हैं। पीछे की दीवार पर दो चौकोर खम्भे हैं। इससे दीवार के तीन भाग हो जाते हैं। केन्द्र में बुद्ध विराजमान हैं और चार गन्धर्व उनके उपर हैं। बायीं ओर पद्मपानी है और दायीं ओर भी बुद्ध दो स्त्रियों के साथ विराजमान हैं। बाह्य सदन २८ फीट लम्बा व १७ फीट चौडा है। सदन के ऊपरी भाग पर एक मन्दिर कोष्ठ है जहां बुद्ध बैठे हुए हैं जिनके सेवक गहनों से सुसज्जित हैं जिनके हाथ में वज्र है। पूर्व की ओर पद्मपानी है। बाहर आने पर इस गुफा के नीचे पश्चिम की चट्टान पर एक पुरुष व नारी की प्रतिमा है। नारी के घुटनों पर एक बच्चे के बैठने की आकृति है। यह प्रतिमा अर्द्ध-ध्वसित है। सम्भव है इन गुफाओं के निर्माता की यह प्रतिमा हो।

गुफा संख्या १०

यह गुफा 'विश्वकर्मा बुद्ध' की है। यह एक बहुत बडी चैत्य गुफा है। इस क्षेत्र के निर्माता विश्वकर्मा (बढई) जाति के रहे होंगे जिन्होंने अपने देवताओं की उपासना के लिए इस चैत्य का निर्माण किया होगा। यह गुफा अजन्ता की चैत्य गुफाओं के समान ही है परन्तु क्षेत्रफल में उनसे बडी है। भीतर के मन्दिर का क्षेत्रफल केन्द्रीय, मध्य भाग व रास्ते सहित ८५ फीट १० इंच लम्बा, ४३ फीट चौडा व ३४ फीट ऊँचा है। मध्य भाग रास्ते से २८ अष्टकोण के स्तम्भों से अलग किया हुआ है। ये १४ फीट ऊँचे हैं जिनका शीर्षांश सादा बनाया गया है। स्तम्भों पर एक दालान है। मध्य भाग के अन्तिम छोर पर एक बहुत बडा दहगोबा है जिसका व्यास साडे पन्द्रह फीट है और ऊँचाई २७ फीट है। इस पर एक अर्द्ध गोलाकार गुम्बज व चौकोर शीर्ष बना है। इसकी ऊँचाई १७ फीट है। इस पर आधारित ११ फीट बैठी हुई एक बुद्ध प्रतिमा है जिसके दोनों ओर सेवक वर्ग हैं। बुद्ध की प्रतिमा पर एक वृत्त खड है

जिसमें बोधिवृक्ष अंकित किया हुआ है जिसके दोनों ओर गन्धर्वों की मूर्तिएं हैं। इस प्रतिमा व चैत्य,से ऐसा प्रतीत होता है कि यह समय बौद्ध चैत्यों के निर्माण कला के विकास में एक प्रगतिशील युग था। समय और लोगों के रीति रिवाजों के अनुसार इसमें परिवर्तन होते रहे हैं।

इन परिवर्तनों का प्रभाव गुफा के बाह्य अंग में बहुत विशिष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस बाह्य भाग के अन्तर्गत एक चौड़ा खुदा आंगन है जिसके चारों ओर स्तम्भों से आच्छादित दालान है। दोनों ओर जिसके दालान युक्त कमरे हैं। मन्दिर का बाह्य अग्रभाग बहुत कलापूर्ण है। घोडे के खुर के समान वृत्त खण्ड व सूर्य किरण खिड़की की बनावट अति सुन्दर हुई है। अग्रभाग के दो अंग बनाए गए हैं। द्वार का एक भाग ऊपर बना प्रतीत होता है जो लम्बी आड़ी शिलाम्रो पर आधारित है। बुद्ध के अन्य चैत्यों की तरह इसमें कट्टरवादिता नहीं है।

प्रतिमा के ऊपर अर्द्ध गोलाकार महराब है जिसके नीचे पत्तों के गुच्छों की श्रेणियां हैं। इस अग्रभाग में दो विशेषताएं और प्रतीत होती हैं। द्वार के दोनो ओर दो प्रकोष्ठों सहित छत्र हैं जो भिन्न-भिन्न आकारों के बने हैं। दायी ओर तरबूज के समान 'पवित्र शिला' का रूप है। इसमें इन्डो आर्यन शैली के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। बायी ओर का प्रकोष्ठ कुछ द्रविड कला के अवशेषो का द्योतक है। इस अग्रभाग के आकार में नवीनता व मौलिकता लाने का प्रयास किया गया था परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेरणा शून्य कलाकारो को अधिक सफलता नहीं मिल सकी।

गुफा संख्या ११

इस गुफा का नामकरण 'दोयाल' इसकी दो मंजिल का आकार होने के कारण किया गया। वास्तव में यह गुफा तीन मंजिल की है जिसकी तीसरी मंजिल की खुदाई सन् १८७६ ई० में न हो सकने के कारण इसका नाम

इस प्रकार पड़ा। १८७७ ई० में अपूर्ण खुदाई से नीचे की गुफा में १०२ फीट लम्बा व ६ फीट चौड़ा एक बरामदा मिला जिसमें दो कमरे हैं और एक मन्दिर कोष्ठ है। इस कोष्ठ में बुद्ध पद्मपानी व वज्रपानी साथ है। अन्य मंजिलों में भी इसी प्रकार की बनावट है। अन्तर इतना ही है कि बुद्ध की प्रतिमा के निर्माण में व उनके बैठने की स्थिति में अन्य तत्व दिए गए हैं। इस गुफा के बड़े सदन खोखले पाए गये हैं। दालानों की भरमार है पर भिक्षुओं के रहने के लिए कमरे दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। दूसरी मंजिल की दालान के सामने आठ स्तम्भ हैं और पीछे की दीवार में पांच दरवाजे हैं। इस दालान में एक लम्बी स्त्री की प्रतिमा (फूल लिये हुए) है। तलवार लिए एक मोटा मनुष्य जो कुबेर प्रतीत होता है उसके हाथ में धन की थैली व बीज पूरक भी हैं और बोधि वृक्ष के नीचे आसीन बुद्ध की सात प्रतिमाएं हैं। अन्तिम मंजिल दूसरी मंजिल के उत्तरी भाग की सीढ़ियों को पार करने के बाद आती है। इसमें तीन मन्दिर के कोष्ठ बने हुए हैं। दक्षिणी कोष्ठ अपूर्ण रहा, उत्तरी कोष्ठ में एक नाग व्यक्ति पालथी लगाए हुए है और केन्द्रिय भाग में बुद्ध आसीन है। दीवारों पर बुद्ध की कई प्रतिमाएं हैं।

गुफा संख्या १२

यह गुफा, जो तीन मन्जिल की बनी है, अत्यन्त आकर्षक है। बौद्ध गुफाओं में यह सबसे बड़ी है। कम से कम चालीस भिक्षुओं के रहने के लिए इसमें कमरे बने हुए हैं और प्रार्थना के समय तो इसमें कई व्यक्ति आ सकते होंगे। इस गुफा के प्रवेश द्वार चट्टानों को काट कर बनाया हुवा है। प्रवेश करते ही एक सदन आता है जो कि १०० फीट चौड़ा व ६० फीट गहरा है। प्रवेशद्वार के दूसरी ओर तीन मंजिल की गुफाएं हैं जिनके बाह्य भाग में कोई नक्काशी व खुदाई का काम नहीं किया गया है परन्तु आन्तरिक भाग अलंकृत हैं। प्रत्येक मंजिल में नक्काशी व संगतराशी के काम के भिन्न-भिन्न रूप हैं।

नीचे की मंजिल में दालानों द्वारा प्रवेश प्राप्त किया जाता है। यह दालान ११२ फीट लम्बा व ४३ फीट गहरा है जो स्तम्भों की तीन कतारों के द्वारा तीन भागों में विभाजित किया हुआ है। प्रत्येक कतार में आठ स्तम्भ हैं। छः स्तम्भ पीछे की दीवार पर हैं। अतः कुल स्तम्भ तीस हैं। दालान के दायीं ओर एक स्तम्भों से आधारित कमरा है जिसकी चौड़ाई ३५ फीट है और गहराई ४४ फीट है। तीन स्तम्भों की तीन कतारें हैं। दूर एक कोने में बुद्ध मन्दिर का प्रकोष्ठ है। इस कमरे की दीवारों में १२ दरवाजे हैं जो भिक्षुओं के कमरों की ओर ले जाती हैं। इन्हीं कमरों के दायीं ओर ऊपर की मंजिल की ओर जाने का रास्ता है। दूसरी मंजिल में भी ११२ फीट लम्बा और ७२ फीट गहरा और साढे ग्यारह फीट ऊचा सदन है जो आठ स्तम्भों की पांच पंक्तियों पर आधारित है। इस सदन के दायीं ओर बुद्ध का प्रकोष्ठ है। इस मंजिल की दीवारों पर बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। इस कमरे के दोनों ओर तीसरी मंजिल पर जाने के लिए सीढिएं हैं। इस मंजिल के अग्र भाग में आठ स्तम्भों पर आधारित दालान है। चट्टानों के भीतर तक एक मध्य भाग है जिसके दोनों ओर समकोण पर कटी हुई भुजाएं व ट्रान्सेप्ट (मन्दिर के वेढे बल का भाग) है। यह मध्य भाग एक चौकोर सदन है जो ७८ फीट गहरा व ३६ फीट चौड़ा है जो पांच स्तम्भो की दो कतारों पर आधारित है। प्रत्येक भुजा, तीन स्तम्भो की दो कतारो में विभाजित की गई है। इसके अन्तर्गत १८ भिक्षुओं के रहने के लिए कमरे हैं और केन्द्र में एक प्रकोष्ठ है जिसमें बुद्ध की प्रतिमा है। यह प्रकोष्ठ २० फीट वर्ग का है। इसकी दीवारों पर खड़ी हुई प्रतिमाओ के चित्रण हैं।

समीक्षा

एलोरा की बौद्ध गुफाएं चट्टानो में विकसित स्थापत्य कला के उच्चतम रूप हैं। धर्म से प्रभावित, जन जीवन के सम्पर्क में आने वाली सात्विक

धाराओं का सुन्दर रूप पत्थरों में जो प्रकट किया गया है वह केवल *आश्चर्यजनक ही नहीं बल्कि मनुष्य की क्रियात्मक प्रतिभा का ज्वलन्त* उदाहरण है। इन गुफाओं में बुद्ध के भिन्न-भिन्न रूप, उनके परिचारिकाओं की मूर्तियां, पद्मपानी व वज्रपानि के स्वरूप आदि के साथ-साथ *बुद्ध संबंधित तत्वों की विशालता सराहनीय है।* भिक्षुओं के पूजा गृह व निवास स्थान चैत्य व विहार दोनों ही यहां पाए जाते हैं। अजन्ता की कला श्रेणी में रखी जाने वाली ये गुफाएं कभी-कभी नए विचारों व नई प्रकार की शैलियों का प्रबोध भी कराती हैं। चट्टान स्थापत्य कला में पूर्ण शिल्पिज्ञता एलोरा में ही पाई जाती है। सीधी रेखाएं, सही कोण यथार्थ व स्पष्ट आधार से ऐसा प्रतीत होता है कि ७वीं सदी में एलोरा की गुफाएं कला सम्बन्धी रूप में अपनी चरम सीमा पर थी।

हिन्दू गुफाएं (६५० ई० से ८०० ई०)

सातवीं शताब्दी के मध्य में बौद्ध गुफाओं का निर्माण समाप्त होने लग गया था। इस समय तक भारत के बौद्ध धर्म का विशिष्ट स्थान भी लुप्त हो चुका था। हिन्दू धर्म (ब्राह्मणों द्वारा प्रभावित) पुनः जागृत होने लगा था। इस ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रभाव कला के क्षेत्र में भी पड़ा। यद्यपि बौद्ध कला का प्रभाव प्रारम्भिक हिन्दू कला पर अवश्य प्रतीत होता है परन्तु धीरे-धीरे शुद्ध ब्राह्मण कला विकसित होने लगी थी। इस कला की गुफाओं की संख्या १७ है जो गुफा संख्या १३ से २९ तक फैली हुई है। बौद्ध भिक्षुओं की तरह ब्राह्मण साधुओं के पूजा व निवास स्थान मिलते हैं। अपने धर्म की विशेषताओं के अनुसार ब्राह्मणों ने स्तम्भमय कमरों में परिवर्तन अवश्य कर दिए परन्तु ढांचा बौद्धिक स्तम्भमय कमरे की तरह ही रहा। ये गुफाएं एलोरा पहाड़ी के पश्चिम भाग की ओर करीब आधा मील की दूरी तक फैली हुई हैं। गुफा संख्या १३ भग्न अवस्था में है। सम्भवतः यह यात्रियों के

ठहरने के लिए धर्मशाला हो । गुफा संख्या १४ "रावण का काई" लंका के शासक रावण के निवासस्थान की द्योतक है । गुफा संख्या १५ में दशावतार विष्णु के दस रूपों को प्रदर्शित किया गया है। गुफा संख्या १६ प्रसिद्ध केलाश मन्दिर है जो शुद्ध ब्राह्मण कला का द्योतक है । गुफा संख्या १७ से गुफा संख्या २० 'दुमारलेमा' के नाम से प्रसिद्ध है । गुफा संख्या २१ 'रामेश्वर' नामक देव मन्दिर है । गुफा संख्या २२ 'नीलकन्ठ' व गुफा संख्या २४ 'तेली का घाण' के नाम से प्रसिद्ध है । गुफा संख्या २३ अधूरी ही है । सम्भव है कि यह चट्टान खुदाई के उपयुक्त न हो । गुफा सख्या २५ का नामकरण 'कुम्भरवाडा' किया गया है । सम्भव है यह एक सूर्य मन्दिर रहा हो । गुफा संख्या २६ 'जनवासा' व गुफा संख्या २७ 'ग्वालिन की गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है । गुफा संख्या २८ लक्ष्मी का पूजा गृह प्रतीत होता है और अन्तिम हिन्दू गुफा 'सीता नहानी' यानी सीता के नहाने का स्थान है । यह उस आख्यायिका को बतलाती है जो 'रामायण' में वर्णित है कि सीता देवी का स्नानगृह यही था । इन सब गुफाओं में पांच गुफाए ही कला की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक हैं । वे हैं गुफा संख्या १४ 'रावण का काई', गुफा संख्या १५ 'दशावतार', गुफा संख्या १६ 'केलाश', गुफा सख्या २१ 'रामेश्वर', और गुफा संख्या २९ 'सीता नहानी' । इन गुफाओं को चारवर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

(अ) सबसे प्राचीन बौद्ध गुफाओ द्वारा प्रभावित गुफाएँ जैसे गुफा सख्या १५ 'दशावतार' ।

(आ) बौद्ध गुफाओ व इस वर्ग में थोड़ा अन्तर है । कमरा व भिक्षुओ के प्रकोष्ठों के बीच जाने के मार्ग बनाए गए हैं जैसे गुफा सख्या १४ 'रावण की काई' व गुफा संख्या २१ 'रामेश्वर'

(इ) मन्दिर प्रकोष्ठ पृथक् रूप में कमरे के बीच में स्थित है जैसे गुफा संख्या २१ में 'सीता नहानी'

(ई) चट्टान से ही मन्दिर निर्माण कैलाश गुफा संख्या १६

गुफा संख्या १४

यह गुफा प्रारम्भिक ब्राह्मण कला (७वीं सदी के प्रारम्भ की) का प्रतिरूप मानी जाती है। इसका नकशा बहुत सादा व स्पष्ट है। यह गुफा ५२ फीट चौड़ी और ८७ फीट गहरी है। इसकी बनावट चौकोर चतुर्भुज की तरह है। इस चौकोर स्थल के दो तिहाई भाग में एक स्तम्भ कारिक कमरा है और बाकी के भाग में मन्दिर प्रकोष्ठ। इस कमरे का नाप ५४ फीट चौड़ा व ५५॥ फीट लम्बा है। बीच का प्रकोष्ठ १४॥ फीट ऊँचा व किनारो की कतारें १३ फीट ८ इंच ऊँची हैं। इस प्रकोष्ठ के चारों ओर एक प्रदक्षिणा है। बौद्धिक गुफाओं में और इस गुफा के निर्माण में यह बड़ा भारी अन्तर है। भवन के चारों ओर स्तम्भों की कतारें हैं जो दो भागों में विभाजित हैं। सम्भव है यह दालान रहा हो। स्तम्भों के आधार चौकोर हैं और शीर्ष भाग फूल व पत्तियों के रूप में अंकित किया गया है। इनके चौकोर स्तम्भो पर नीचे से उपरी भाग तक खुदाई का कार्य किया हुआ है। मन्दिर प्रकोप्ठ के सम्मुख दो पुरुष द्वारपालों की प्रतिमाएं हैं और छोटी-छोटी अन्य कई प्रतिमाएं हैं विशेषकर स्त्रियों, बावनों, गन्धर्वोंकी। प्रकोप्ठ के भीतर दिवार के सहारे आधारित दुर्गा की खडित मूर्ति है। सम्भव है यह मन्दिर दुर्गा का रहा हो। यहा पर चार गोल व बड़े सुराख भी दिखाई देते हैं। सम्भव है ये अग्नि कुन्ड हो। स्तम्भ भवन की दीवारों पर चित्रों की प्रतिमाओं की भरमार है। इसके दक्षिणी भाग में शैव प्रतिमाएं हैं और उत्तरी भाग में वैष्णव की। शिव प्रतिमाओं में—(१) दुर्गा भैंसासुर को मार रही है। (२) शिव पार्वती चौसर खेल रहे हैं, शिव के पीछे गणपति है और पार्वती

के पीछे दो परिचारिकाएं हैं और नन्दी बैठा हुआ है। (३) शिव का ताण्डव नृत्य, शिव के चारों ओर इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, पार्वती आदि खड़े हैं। (४) लंका का राजा रावण शिव को कैलाश सहित धारण कर रहा है, पार्वती शिव को जगाती है, दस शीश व गधे का सिर रावण के हैं। (५) शिव का भैरव रूप, गणपति सहित रत्नासुर को मार रहे हैं। (६) प्रदक्षिण में चतुर्भुजधारी देवता जिसके सीने पर बिच्छू अंकित है। गणपति लड्डू खाते हुए सप्त मातृकाओं के साथ हैं। उत्तर की ओर की वैष्णव प्रतिमाएं हैं।

(१) भवानी शेर की छाती पर खड़ी दायें हाथ में त्रिशूल लिये हुए।

(२) कमल पर लक्ष्मी, चार परिचारिकाएं पानी के घड़ों को लिए हुए हैं, दायें हाथ में शंख है, हाथी उसे स्नान करा रहे हैं।

(३) विष्णु का अवतार बराह अपना पाँव शेष नाग पर रखे, पृथ्वी धारण किए।

(४) वैकुन्ठ में विष्णु, लक्ष्मी, परिचारिकाएं, गरूड़, व संगीतकार।

(५) एक तोरण के नीचे विष्णु व लक्ष्मी सिंहासनारूढ। सात बौनें जिनमें चार संगीत वाद्यो को लिए हुए नीचे बैठे हैं।

गुफा संख्या १५

ब्राह्मण शैली में यह दो मंजिली गुफा दशावतार की है। यह गुफा चट्टानों के ठोस भाग को काट कर बनाई गई है। इसके सामने एक दीवार है, मध्य में पूजा-गृह और छोटे-छोटे अनगिनत प्रकोष्ठ व एक पानी का कुन्ड है। इस गुफा का प्रवेश द्वार चट्टानों में से ही काटा हुआ है। प्रवेश होने के बाद एक बेढंगा सहन दिखाई पड़ता है जिसके मध्य में पृथक् रूप से एक मन्दिर का प्रकोष्ठ है। इस दालान के बायी ओर के द्वार

में जाने के बाद एक वर्गाकार भवन है जिसके चारो ओर कुछ कमरे हैं जो सम्भव है साधुओं के रहने के स्थान या पूजा की वस्तुओं के भन्डार के रूप में काम में लाए गए हो। बाह्य भाग का यह पृथक मन्दिर प्रकोष्ठ, अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। सम्भव है नन्दी की मूर्ति के लिए यह स्थान बनाया गया हो। यह एक वर्गाकार मन्डप है जिसके चारों ओर एक दालान है व सामने की ओर पीछे सीढ़ी है। पूजागृह में एक संस्कृत का अभिलेख अंकित है पर स्पष्ट न होने के कारण पढ़ा नही जा सकता है। मन्दिर दो मजिलों में विभक्त है। नीचे की मंजिल का भवन ६७ फीट चौडा व ५० फीट गहरा है जिसमें १४ वर्गाकार स्तम्भ है। इस भवन में उत्तरी भाग में सीढिएं हैं जो ऊपरी मजिल की ओर जाती है। ऊपरी भाग में जाते ही ११ विभाग मिलते हैं जो २ फीट ऊंचे हैं। ऊपरी मंजिल का भवन १०५ फीट गहरा व ६५ फीट चौडा है और इसकी फैली हुई छत को धारण किए हुए ४४ स्तम्भ हैं। ६ स्तम्भो की छः कतारें हैं जिसकी दो कतारें भवन के अन्तिम सिरे पर है जहा एक वर्गाकार कोष्ठ है। यह लिंग का स्थान रहा है। इसकी बनावट, सादगी पूर्ण वातावरण, स्तम्भ आदि कला के उच्चतम नमूने हैं। इसकी दीवारो पर भी शिव व विष्णु से संबंधित मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। अग्रभाग के बाहर ही दोंव द्वारपाल की विशाल प्रतिमा है। स्तम्भो के मध्यान्तरो में चट्टान में से काटी विशाल प्रतिमायें हैं जो गुरुता व शौर्य को प्रदर्शित करती हैं। उत्तर की ओर से मूर्तियाँ इस प्रकार हैं—

(१) मुन्डमाल, डमरु, त्रिशूल युक्त शिव का रुद्र रुप।
(२) शिव ताण्डव नृत्य,
(३) भवानी,
(४) शिव पार्वती चौसर खेलते हुए,
(५) शिव पार्वती विवाह,
(६) कैलाश धारण किए रावण,

पीछे की दीवार पर—

(१) यम द्वारा ग्रसित मार्कण्डेय की शिव द्वारा रक्षा,

(२) शिव व पार्वती, नन्दी, भृंगी आदि मन्दिर के बायी ओर गणपति की विशाल प्रतिमा है और बायी ओर लक्ष्मी की।

वैष्णव प्रतिमाओं में निम्नलिखित प्रतिमाएँ अंकित की गई हैं:—

(१) गोवर्धन को उठाए हुए विष्णु,

(२) शेष पर आसीन विष्णु,

(३) गरुड पर आसीन विष्णु,

(४) एक सखुंखा,

(५) वाराहावतार पृथ्वी की रक्षा करते हुए,

(६) वामनावतार।

(७) नृसिंह अवतार।

गुफा नं० १६

एलोरा का कैलाश मन्दिर अपने तईं का स्वयं एक वर्ग है। अत्यन्त महत्वपूर्ण, धार्मिक, सात्विक, कलात्मक और कारीगरी का यह प्रतीक विश्व के चमत्कारिक मानवी क्रियात्मक रूपों में से एक है। यद्यपि कैलाश के निर्माण के पहले पतदकल का 'पापनाथ' का मन्दिर इसी शैली में निर्मित हुआ था परन्तु कैलाश में यह शैली सिर्फ विकसित ही नहीं हुई बल्कि अपनी स्वतन्त्र पताका फहराती हुई चरम सीमा तक पहुँच गई। यों तो हर प्रारम्भिक शैली का प्रभाव आने वाली कृतियों पर पड़ता है पर चालुक्यों के मन्दिरों ने कैलाश निर्माताओं को प्रेरणा दी और मालखड के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण प्रथम (सन् ७५७—७८३) की संरक्षता में इसका निर्माण आरम्भ हुआ। यह मन्दिर शिव को अर्पित किया गया

है परन्तु विष्णु और चौरासी देवताओं की प्रतिमाएं इस मन्दिर की व्यापकता को बताती हैं। दक्षिण भारत के स्मार्त समुदाय के पतन व लिंगायत समुदाय की प्रगति का द्योतक यह-मन्दिर है। धर्म और मूर्ति का सुन्दर समन्वय, स्थापत्य मूर्तिकला का मिश्रण कैलाश के सिवाय कहीं प्राप्त हो सकेगा, यह सन्देहमय है।

कैलाश का गुफा मन्दिर एक स्वतन्त्र चट्टान का बना हुआ है। यह चट्टान एलोरा की अन्य पहाड़ियों से विभक्त है। यह चट्टान ऊपरी हिस्से से तीन ओर से समकोण के रूप में काटी गई। यह कटाई नीचे की ओर चलती गई जब तक यह क्षेत्र एक चौकोर क्षेत्र ३०० फीट लम्बा, व १७५ फीट चौड़ा नहीं हो गया। फिर इस सदन के मध्य में एक 'ठोस' पत्थर का द्वीप २०० फीट लम्बा व १०० फीट चौड़ा व १०० फीट ऊंचा काटा गया। इसके चारों ओर की कटाई पहले की गई। इस सहन के सामने एक परदा छोड़ दिया गया है जिसके बाह्य भाग में शिव, विष्णु व अन्य देवताओं की विशालकाय प्रतिमाएं अंकित हैं। इस परदे के बीच में एक प्रवेश रास्ता है जिसके दोनों ओर कमरे हैं। इसे पार करने पर कमल पर लक्ष्मी की प्रतिमा मिलती है। कमल की पंखडियों पर कुछ अक्षर लिखे हैं तिथि भी है पर पढ़ी नहीं जाती है। सम्भवतः १५ वीं शताब्दी का लेख हो। इसके दोनों ओर के चौकोर खम्भों पर लेख के कुछ अवशेष, जो कि ८ वीं शताब्दी का है, भू····रस्या····सी बलाकृनां···· ङंवस्वना प्राप्त हुए हैं। मध्य के इस ठोस द्वीप का फिर निर्माण आरम्भ हुआ। ऊपरी भाग से कटाई, छटाई, आरम्भ हुई और पूर्ण निर्मित रूप में यह मन्दिर कारीगरों की महान् कला का द्योतक हो गया।

कैलाश की कृति को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। मन्दिर का मुख्य भाग, प्रवेश द्वार, नन्दी प्रकोष्ठ व सहन के चारों ओर का आच्छादित मार्ग मन्दिर का मुख्य भाग एक समानान्तर चतुर्भुज है जिसका क्षेत्रफल २०० वर्ग फीट व १०० वर्ग फीट है। इस भाग का महत्वपूर्ण

आकर्षक भाग इसका एक ऊंचा और ठोस चबूतरा है जो कि २५ फीट ऊंचा है। इसके ऊपर और नीचे का ढांचा बहुत सुचारु रूप से ढाला गया है। चबूतरे के किनारों की पाटियों में हाथियों और सिंहो की प्रतिमाएं अंकित की गई हैं। इस चबूतरे पर मन्दिर ९ स्थित है। मन्दिर में प्रवेश करने के लिए पीढ़ियो की कतार को पार करना पड़ता है फिर स्तम्भों से आच्छादित ड्योढ़ी पश्चिम भाग की ओर में प्रवेश करना पड़ता है। यहां कलाकारों की अनूठी क्रिया झलकती है। मन्डप व विमान का समन्वय अत्यन्त सुन्दर है पर कोरनीस (भीत के चौकोर खम्भे) आले व पार्टिको का व्यवस्थित सम्मिश्रण और एक इकाई के रूप में अंकित किया गया रूप अधिक कलात्मक है। फिर इसके ऊपर शानदार स्तम्भ तीन पंक्तियो के रूप में प्रकट होते हैं। इसका स्पष्ट और शानदार गृह शिखर का अग्रभाग सुन्दर गुम्बज से आच्छादित है। इसकी ऊंचाई ६५ फीट है। विमानाधार के पास पाच सहयोगी मन्दिर प्रकोष्ठ इसी चट्टान से काट-काट कर बनाए गए हैं जो कि ढांचे और बनावट के रूप में मुख्य मन्दिर के संक्षिप्त रूप हैं। मुख्य मन्दिर के आन्तरिक भाग में एक स्तम्भ भवन है जहा से एक दालान अन्य कमरों में जाता है। यह भवन ७० फीट लम्बा और ६२ फीट चौड़ा है। १६ वर्गाकार घाट चार समूह प्रत्येक कोने में स्थित हैं। इस मन्दिर की दायी व बाईं दीवार के बाह्य भाग में रामायण व महाभारत की कथाएँ शिल्प रूप में अंकित हैं। हाथियो पर आधारित यह मन्दिर अपने निर्माताओं की प्रतिभा को दर्शाता है।

मन्दिर के अन्य भाग, यद्यपि मन्दिर के अंग ही हैं पर सहायक के रूप में हैं। मन्दिर के सामने नन्दी मन्डप है। यह मन्डप एक चबूतरे पर स्थित है जो २५ फीट वर्ग है। इसकी पूर्ण ऊंचाई ५० फीट है। इसकी ऊंचाई मुख्य मन्दिर की ऊंचाई के बराबर बनाने का प्रयत्न किया गया है। मन्दिर और मन्डप को एक पुल के द्वारा जोड़ा गया है। इस मन्डप

के दूसरी ओर एक प्रवेश द्वार है जिसे भी पुल के द्वारा जोड़ा गया है। यह प्रवेश द्वार दो मंजिला है और मन्दिर के रक्षकों के लिए रहने के लिए पर्याप्त स्थान भी है। सहन के चारों ओर स्तम्भों से आधारित कई कोठरियें हैं जिनमें से होकर अन्दर के कमरों में भी जाया जा सकता है। इनके अलावा दो स्वतन्त्र रूप में स्थित ध्वज स्तम्भ है। इनकी ऊंचाई ५१ फीट है। प्रत्येक ध्वज में त्रिशूल अंकित है। इन स्तम्भों का शीर्षभाग सांकेतिक बनाया गया है। सम्पूर्ण बनावट को फूल व पत्तियों की शैली में अंकित किया गया है।

कैलाश मन्दिर को प्रकृति ने अपनी ओर से भी अनूठा बनाया है। सुन्दर पेड़ों से आच्छादित इसकी पहाडिएं, झरने, स्फुटिकसम जल, छोटे तालाब का वातावरण सिर्फ कलाकारों व साधुओं को ही प्रेरणा नहीं देता रहा बल्कि शान्ति के उपासकों का भी स्थान बन गया है। इस में प्रवेश पाने पर एक नया संसार पत्थरों के बीच कला, धर्म व शान्ति का दिखाई पड़ता है। दर्शक कलाकारों की कल्पना के साकार रूप को देख कर चकित रह जाता है। कैलाश के मन्दिर निर्माण को एक-एक प्रतिमा, एक-एक कृति का आदर्श और अर्थ रहा है। मनुष्य की मानसिक, हार्दिक और शारीरिक प्रवृत्तियों के संगठित रूप को आदर्श में विलीन करने का विशिष्ट उदाहरण एलोरा का "कैलाश मन्दिर" है।

गुफा संख्या २१

इस गुफा का ढाचा तो अत्यन्त सरल है परन्तु इस के सब अंगों में नक्काशी की विशालता इसे महत्वपूर्ण व आकर्षक बना देती है। इस गुफा के सामने एक छोटा सा सहन है। एक छोटे से चबूतरे पर एक 'नन्दी' की प्रतिमा है। इसी के उत्तरी भाग की ओर दो स्तम्भों पर आधारित एक मन्डप है जिसमें 'गणपति' विराजमान है। नन्दी व गणपति

के बीच में मकर पर खड़ी, अंग रक्षकों से घिरी एक बड़ी विशाल स्त्री की प्रतिमा है। दक्षिण भाग की ओर ऐसी ही प्रतिमा कछुए पर खड़ी है। गुफा का अग्रभाग चार छोटे पर मोटे स्तम्भों पर आधारित हैं। ये स्तम्भ बौने व्यक्तियों की दीवार पर खड़े हैं। इन स्तम्भो के शीर्ष भाग 'कमण्डल' के समान हे जिसमें पौधे उग रहे हैं और दोनों ओर फैल रहे हैं। फूल पत्तियों के नीचे बौनों के साथ स्त्रियों की प्रतिमाएं हैं। अन्दर प्रवेश करने पर एक कमरा साढे पन्द्रह फीट ऊंचा, ६९ फीट चौड़ा व २५१ फीट लम्बा दिखाई देता है। सदन के दोनों कोनों पर मन्दिर हैं जिसके चारों ओर प्रतिमाओं की भरमार है। दक्षिण भाग की दायी दीवार पर (१) काली (२) गणेश (३) शिव तान्डव नृत्य की प्रतिमा है। उत्तरी भाग में (१) सिंहासनासीन ब्रह्मा (२) शिव विवाह (३) उमा पार्वती (४) गण वर्ग (५) महिषासुर (६) कैलाश में रावण (७) पार्वती चौसर खेलती हुई आदि दिखाये गये हैं। इन गर्भगृहों की छोटी दीवारों के पास स्त्री परिचारिकाओं की मूर्तियें हैं। इनके दो स्तम्भों के शीर्ष भाग एलिफेण्टा की तरह हैं परन्तु कोष्ठ के चिह्नों के स्थान पर कोरी हुई मूर्तियाँ हैं। मन्डप के द्वार भी शानदार चित्रित हैं और उनके भीतर लिंग की प्रतिमा है जो वर्गाकार सलुंखा पर आधारित है। इसके चारों ओर चौड़ी प्रदक्षिणा है।

गुफा संख्या २९

एलोरा की बड़ी-बड़ी गुफाओं में से सीता नहान की गुफा अपने ढंग की अद्वितीय है। उसकी आकर्षकता का मुख्य आधार है उस चट्टान की स्थिति और आकार जिसको काट कर यह बनाई गई है। इस गुफा का प्रवेश द्वार बहुत सादा बना हुआ है। सीढ़ियों से चढ़ कर प्रवेश द्वार के बीच के स्तम्भों की रूप रेखा समझने का प्रयत्न किया जा सकता है परन्तु द्वार के समान कोई प्रवेश स्थान नहीं है। तीन पृथक प्रवेश

स्थान अवश्य हैं। चौड़े स्तम्भों के बीच के रास्ते ही द्वार का काम देते हैं। सीढ़ियों के दोनों ओर शेरों की प्रतिमा हैं जिनके खुले मुंह एक दूसरे की ओर हैं और दोनो का एक पंजा उठा हुआ है। शेरों के नीचे छोटे हाथी दबे हैं। इनकी ऊंचाई १५ फीट है व आधार पर चौड़ाई ५ फीट है। गुफा के भीतर एक स्तम्भमय कमरा है। यह कमरा मण्डप सहित १५० फीट लम्बा, ५० फीट चौड़ा व १५० फीट गहरा है। पश्चिम भाग पर पहुँचने पर एक बड़ा स्थल है जो 'नन्दी का स्थान' है। यह कमरा शृंगाटक (क्रास) के रूप में है। इसकी छत २६ स्तम्भों पर आधारित है। आगे की पंक्तियों के प्रत्येक कोने में प्रतिमाएं हैं। रावण कैलाश को झकोरता हुआ, भैरव, शिव पार्वती चौसर खेलते हुए व शिव पार्वती विवाह आदि। इस स्थल के दक्षिण भाग में चौकोर स्तम्भों के बाह्य क्षेत्र में एक विशाल देवी की प्रतिमा है। सम्भव है कि यह सरस्वती की प्रतिमा हो। उत्तरी दालान में शिव की महायोगी के रूप में मूर्ति है। कमल पर आसीन प्रतिमा जल देवी है। ठीक इसके सम्मुख शिव ताण्डव मुद्रा में दिखाये गये हैं। गुफा के पिछले हिस्से में मण्डप है। यह मण्डप वर्गाकार है। इसमें चार द्वार हैं; प्रत्येक द्वार पर एक-एक विशाल द्वारपाल की प्रतिमा है। उनके दायें हाथो में फूल हैं, उनके साथ उनकी परिचारिकाएं हैं। मण्डप में लिंग की प्रतिमा है। दक्षिण प्रदक्षिणा की ओर एक वर्गाकार कोठरी है जिसमें से होकर एक दूसरी कोठरी में प्रवेश करना पड़ता है।

समीक्षा

सातवी शताब्दी तक अलंकृत पत्थरों की चुनाई से भवन बनाने की कला ने बहुत प्रगति कर ली थी। चट्टानो को काट कर भवन बनाने का कार्य अपनी पराकाष्ठा को ७ वीं से १० वी शताब्दी में पहुँच गया था। हिन्दू काल की गुफाएं शुद्ध भारतीय थी। विदेशो से प्राप्त की हुई शैली का अन्त हो चुका था। धर्म से प्रभावित इन गुफा मन्दिरों का विकास

.ा युग भी हिंदू काल कहा जाता है। मुख्यतः गुफाएं शैव धर्म से प्रभावित थी। कलाकारों के विचारों और आदर्शों के समन्वय के प्रतीक बन कर चट्टानों में जो शिव की व्याख्या की गई है वह सदियों तक भारत की परम्पराओं का ज्ञान कराती रहेगी। एलोरा के हिन्दू मन्दिरों और गुफाओं में हिंदू धर्म की जो प्रतिमाएं, भवनों की बनावट, देवी देवताओं के रूप चित्रित किए गए हैं ये साकार अवतार के विश्वास को दृढ़ बना देती हैं। कैलाश गुफा तो चट्टान गुफाओं के निर्माण का सर्वश्रेष्ठ रूप समझा जाता है।

जैन गुफाएं ८०० ई० से ६५० ई० तक

जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में कोई भी सन्देह नही है। जैन व बौद्ध धर्म का प्रचलन एक ही काल में हुआ था परन्तु एलोरा में जैन गुफाएं सबसे बाद की स्वीकार की जाती हैं। इसका एक ही कारण हो सकता है कि जैन धर्म का प्रसार व विकास धीरे-धीरे हुआ। इन गुफाओ का निर्माण ८०० ई० में शुरू हुआ और दसवी शताब्दी के मध्य काल तक बना रहा। इस धर्म मे प्रभावित पाच गुफाएं हैं, गुफा सख्या ३० से ३४ तक। ये गुफाए एलोरा की पहाडी की उत्तरी चोटी में स्थित हैं।

गुफा सख्या ३१ 'छोटा कैलाश' तथा गुफा संख्या ३२ 'इन्द्र सभा' है। गुफा संख्या ३३ 'जगन्नाथ सभा' है तथा गुफा संख्या ३४ अपूर्ण है। इन गुफाओं में 'छोटा कैलाश' गुफा सख्या ३१; 'इन्द्र सभा' गुफा संख्या ३२ व 'जगन्नाथ सभा' गुफा संख्या ३३, अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

गुफा संख्या ३१

छोटे कैलाश की गुफा दक्षिण में है। इसका निर्माण 'कैलाश' की प्रेरणा हुआ है। यहां के मन्दिर में द्राविड शैली का प्रभाव है। यद्यपि

मन्दिर का शिखर नीचा है परन्तु यह अधूरा ही प्रतीत होता है। इस मंदिर का मन्डप ३६ फीट ४ इंच वर्गाकार है। इसके भवन में १६ स्तम्भ हैं तथा सामने मन्डप है।

गुफा संख्या ३२

'इन्द्र सभा' सामूहिक जैन गुफाओं का नाम है। दो दो मंजिल वाली दो गुफाएं और उप मन्दिर भी इसमें शामिल हैं। पहली गुफा इन्द्र सभा कहलाती है। इसका निर्माण काल ८०० ई० था। दक्षिण की ओर से इसमें प्रवेश कर सकते हैं। चट्टानों से काटा हुआ प्रवेश द्वार के भीतर *एक वर्गाकार (५० फीट वर्ग) चौगान है जिसके मध्य में द्राविड शैली का* एक मन्दिर है। इसके एक ओर ३०. फीट ऊंचा ध्वज स्तम्भ है और दूसरी ओर एक हाथी की प्रतिमा है। इस चौकोर दालान के तीन किनारों को प्रतिमाओं से सुसज्जित किया गया प्रतीत होता है। अग्रभाग में बहुत ही सुन्दर खुदाई की गई है। ऊपरी भाग में जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं व छोटे-छोटे मन्दिर हैं और नीचे के भाग में हाथी व सिंहों की प्रतिमाए हैं और इनके पीछे सजे हुए कलश हैं। इस अग्रभाग की बनावट, व सजावट महत्वपूर्ण है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये कलात्मक मूर्तियां बिना किसी पूर्वामामित विचारों से किए गए हैं।

आन्तरिक भाग में ऐसा प्रतीत होता है कि निर्माण कार्य ऊपर से नीचे की ओर चला क्योंकि ऊपरी मंजिल पूर्ण है परन्तु निचली मंजिल अधूरी प्रतीत होती है। निचली मंजिल के केन्द्रीय कमरे के सम्मुख स्तम्भ-मय दालान है। यह सदन वर्गाकार है (४० फीट वर्ग) और एक कोने में उपमन्दिर है जिसमें सिंहासन पर महावीर आसीन हैं। सब स्तम्भ वर्गाकार हैं जिन पर सादे पर चौड़े कोष्ठक के शीर्ष भाग हैं। उनके आधार कहीं-कहीं पर कलापूर्ण बनाए गए हैं। दालान के दायीं ओर की

सीढ़ियो को पार कर ऊपरी मंजिल में प्रवेश करना पडता है.। यहां पर भी एक केन्द्रीय कमरा है जिसकी दालान, चौगान की तरफ दिखाई देती है। यह कमरा भी वर्गाकार (५० फीट वर्ग) है। इसमें १२ स्तम्भ हैं। इसके मध्य में एक छोटा मन्दिर है जहा एक चौमुखी प्रतिमा खड़ी है। इस मन्दिर की छत कमलों से आच्छादित है व स्थान-स्थान पर दीपक रखने के आले भी हैं। इस भवन के वरामदे के निर्माण में लकड़ी का भी प्रयोग किया गया है।

दीवारो पर जैन भिक्षुओ की प्रतिमाएं अंकित हैं। पार्श्वनाथ, महावीर, ऋषभनाथ, शान्तिनाथ, आदि जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाए सजीव व मुद्रामय हैं। ऊपरी मंजिल पर जाने वाली सीढियों के नीचे के भाग में इन्द्र व इन्द्राणी की प्रतिमाए वहुत ही आकर्षक हैं। ऊपरी मंजिल के हाल के दालान में चित्रकारी के अवशेष अब भी दिखाई पड़ते हैं। दालान १४॥ फीट ऊचा है और इनके अन्त के कोनों में एक ओर विशाल इन्द्र पीपलवृक्ष के नीचे आसीन व इन्द्राणी आम वृक्ष के नीचे आसीन है। मन्दिर के द्वार पर गोमाता व पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं हैं। हिन्दुओं के देवताओं की प्रतिमाएं भी यहा अंकित हैं। 'सरस्वती' की एक प्रतिमा भी इसी क्षेत्र से प्राप्त हुई है।

गुफा संख्या ३३

इन्द्र सभा की तरह यह गुफा मन्दिर भी दो मंजिला है परन्तु इन्द्र सभा की तरह इसका सुसंगठित रूप से निर्माण नहीं हुआ। इस गुफा के सम्मुख एक चौगान है व उसके पीछे चौमुखा मण्डप। इस चौगान के पश्चिमी भाग में एक कमरा है जिसके सम्मुख दो भारी वर्गाकार स्तम्भ हैं और मध्य क्षेत्र में चार स्तम्भ हैं। इसकी दायी ओर गोमाता की प्रतिमा है और बायी ओर पार्श्वनाथ की प्रतिमा व मण्डप में महावीर की प्रतिमा है। दालान के बाएं भाग में इंद्र का आसन और दाएं भाग

में इन्द्राणी का आसन है। एक शिलालेख के कुछ अक्षर दिखाई देते हैं। जो ९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ के हैं। दायीं ओर सामने एक मन्दिर है जिसके अन्दर काफी बड़ी कोठरियें हैं। इसमें भी वे ही प्रतिमाएं हैं। गो माता, पार्श्वनाथ, महावीर, इन्द्र, इन्द्राणी। आगे के स्तम्भ वर्गाकार हैं। मन्दिर के प्रवेश भाग में एक छोटा सा और मन्दिर है जिसमें महावीर, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ व गो माता की प्रतिमाएं हैं। निचली मंजिल का हाल २६ फीट वर्गाकार है।

इस मन्दिर के दायी ओर से सीढ़िएं ऊपरी मंजिल की ओर जाती हैं। इसका कमरा १२ स्तम्भों पर आधारित है। स्तम्भों की ऊंचाई १३ फीट १० इंच से लेकर १४ फीट ६ इंच तक है। आगे की दो पंक्तियों व पीछे की भी दो पंक्तियों के स्तम्भ के आधार वर्गाकार हैं व गोलाकार रूप में ये गद्देदार फूलों से अलंकृत स्तम्भ कन्धों तक चले गये हैं। बाकी के स्तम्भ वर्गाकार हैं परन्तु शीर्ष भाग गद्देदार शैली का है। छत गोलाकार चित्रों से सजी है। दीवारों पर महावीर, पार्श्वनाथ, इन्द्र, इन्द्राणी की प्रतिमाएं हैं। मन्डप मन्दिर में जिनेन्द्र सिंहासनासीन हैं, जिन पर एक त्रिकोनी छाता है। सिंहासन के पास कुत्ते व हरिण लेटे हुए हैं।

समीक्षा

जैन गुफाओं का काल व कार्यक्षेत्र कम रहा परन्तु कला की दृष्टि से जो विचार व भाव व्यक्त किये गये हैं वे अत्यन्त आकर्षक हैं। बौद्ध गुफाओं तथा हिन्दूमन्दिरों का प्रभाव इन गुफाओं पर भी पड़ा। एक परम्परा के शिल्पी दूसरी परम्परा का अनुकरण किस कुशलता से करते हैं, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है। फर्गुसन के शब्दों में "कुछ भी हो जैन शिल्पियों ने एलोरा की दो सभाओं, 'इन्द्र' व 'जगन्नाथ', का निर्माण

किया, वे सचमुच उनमें स्थान पाने योग्य हैं, जिन्होंने अपने देवताओं के सम्मान में निर्जीव पाषाण को अमर मन्दिर बना दिया।" इतना होते हुए भी जैन गुफाओं, मन्दिरों व सदन में उदासीन व अलंकृत भाव रहे हैं। कार्य व शैली अत्यन्त उच्च कोटि की है पर निर्माण एवं रेखा अव्यवस्थित ढंग की रही है। जैन धर्म ने जो मानवता का सन्देश विश्व को दिया है, उसके प्रदर्शन की कमी इन गुफाओं में खलती है।

☆ ☆

(क) बौद्ध कला

यदि कोई वस्तु सौन्दर्य सम्पन्न न हो तो मानव उसे तत्क्षण ग्रहण नही करता है। सौन्दर्य का आकर्षण ही कला को जन्म देता है। कला का सीधा सम्पर्क पार्थिव द्रव्यों से है। पार्थिव द्रव्यो की कोई सीमा नही होती है अतः कला को किसी सीमित क्षेत्र में नही बांटा जा सकता है। कला का क्षेत्र व्यापक होता है अतः यदि कला को बौद्ध कला, ब्राह्मण कला व जैन कला आदि अनेक उपभेदों में बांटने लगेंगे तो एक प्रकार से कला के मौलिक तत्वो के ज्ञान को प्राप्त करने में कठिनाई होगी। कला का सच्चा वर्गीकरण समय व स्थिति पर निर्भर रहता है। भारतीय जीवन में धर्म का एक विशेष स्थान रहा है। भारत में धर्म के द्वारा समाज व राजनीति प्रभावित होती रही है। कला सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व हमेशा से करती रही है अतः भारतीय कला और धर्म का जो महत्वपूर्ण समन्वय हो पाया है उससे कलाकारो को प्रेरणा व प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इस प्रकार की प्रेरणात्मक कलाकृतियों में बौद्ध कला का विशेष स्थान बन गया क्योंकि बौद्ध धर्म ने सामाजिक जीवन को सवारने, परिवर्तित करने में क्रान्तिकारी भाग अदा किया था।

काल व क्षेत्र

यह कहना अत्यन्त कठिन है कि बौद्ध कला का प्रारम्भ कब हुआ। बौद्ध साहित्य में कला के प्रति विशेष अनुरक्ति दिखाई नही देती है। बुद्ध के निर्वाण के बाद ही उनके अवशेषो पर स्तूप बनाने की योजनाएं बनी और कुछ योजनाएं कार्यान्वित भी हुई, परन्तु तब तक बौद्ध कला का रूप स्पष्ट नही हुआ था। मौर्य काल से स्तूप निर्माण की वास्तविक

कहानी प्रारम्भ होती है। इससे पहले तक इसका विकास नगण्य था। २७३ ई० पू० में अशोक सिंहासनारूढ़ हुआ। वह पहला शासक था जिसने बौद्ध धर्म पर आश्रित कला को प्रोत्साहन ही नही दिया बल्कि उसके माध्यम द्वारा बौद्ध धर्म को मगध के एक कोने से निकाल कर विश्व धर्म बना दिया। अतः बौद्ध कला का प्रारम्भ अशोक के युग से स्वीकार करना अधिक सही होगा। धीरे-धीरे यह कला, धर्म की भांति बहुत व्यापक हो गई। कालान्तर में इसका क्षेत्र बढ़ने लगा। स्तूप, स्तम्भों, गुफाओं आदि से बढ़कर मूर्ति, मठ, विहार, चैत्यों के रूप में और कालान्तर में चित्रकारों की तूलिका की प्रेरणा के साथ बढ़ती गई। उत्तरी भारत और दक्षिण भारत की एकता का प्रतीक यह कला थी। उत्तर में तक्षिला व गान्धार से लगा कर दक्षिण में जट्टिंग रामेश्वर, पूर्व में बारबरा की गुफा से लेकर पश्चिम में बैराठ तक बौद्ध कला का साम्राज्य छाया हुआ था। इस कला की चरम सीमा गुप्तयुग में पहुँची। यद्यपि उस युग में बौद्ध धर्म के प्रति जनता उदासीन थी परन्तु बौद्ध कला की परम्परा तब भी बनी रही। अजन्ता व एलोरा की गुफाओं में बौद्ध कला हर अंग में–स्थापत्य, मूर्ति व चित्रकला–विकास की चरम सीमा प्राप्त कर गई। ईसा के ७ वी शताब्दी बाद बौद्ध धर्म से प्रभावित कला का प्रभाव कम होने लग गया। यह काल महागुरु शंकराचार्य, व कुमारिल भट्ट का था जिन्होंने बौद्ध धर्म की खोखली आधार शिलाओं और कमजोर सिद्धान्तों को भारतीय समाज के लिए हितकर नही समझा। भारत में बौद्ध धर्म का उत्कर्ष एक हजार वर्ष तक रहा। यह धर्म एक हजार वर्ष तक भारत की कलाकृतियो में जीवन भरता रहा। अतः इसकी कला की विशेषता जानना अत्यन्त आवश्यक है। बौद्ध कला को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। स्थापत्य कला, मूर्ति कला व चित्र कला। इन कलाओं का प्रभाव क्षेत्र यद्यपि अलग-अलग नहीं किया जा सकता है, परन्तु विकास और तत्वों की मुख्यता के हेतु ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी से पहली शताब्दी के बाद तक स्थापत्य कला का प्रभाव अधिक

रहा। पहली शताब्दी से दूसरी शताब्दी तक मूर्ति कला का व तीसरी शताब्दी से ७ वीं व ८ वीं शताब्दी तक चित्रकला का प्रभाव अधिक रहा।

विषय

बौद्ध कला का विषय धार्मिक था। अशोक के पहले भी बौद्ध स्तूप बनने लग गये थे। बुद्ध के समय से ही उनके शरीर की पूजा की चर्चा उठी थी लेकिन बुद्ध बराबर यही उपदेश देते रहे कि मेरे रूपकाय या शरीर की पूजा नही, धर्मकाय की पूजा करो। अशोक ने कला को धर्म प्रचार का साधन बनाया। अत: प्रारम्भिक अवस्था से ही बौद्ध कला का विषय धर्म प्रचार रहा। बुद्ध की स्मृति, सिद्धान्त व उपदेशों को स्थायी रूप देने के लिये स्तूप, स्तम्भ, गुफाएं व शिलालेख निर्मित किए गये। बाद में मूर्ति कला के विकास में भी यही विषय रहा। बुद्ध की शरीर रचना द्वारा उनके सिद्धान्तों की व्याख्या की गई। भिक्षुओं के रहने के लिए विहार तथा पूजा के लिये चैत्य बनाये गए। साथ-साथ में उनके जीवन सम्बन्धी घटनाओं को पाषाणों में व्यक्त करने का प्रयास किया गया जिससे समाज व नागरिकों को पथ प्रदर्शन प्राप्त हो सके। जातक कथाओं को चित्रों व पाषाणों में अंकित किया गया। अजन्ता की गुफाओं में बुद्ध सम्बन्धी चित्रकारी का विषय यही जातक कथाएं हैं। भिक्षुओं का विश्वास था कि 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि' (बुद्ध की शरण जाने से ही मोक्ष प्राप्त होता है) को प्राप्त करने के साधनों में कला का क्षेत्र ही मुख्य है अत: धर्म जो कि मनुष्य के जीवन का परम अंग बन चुका था, उसकी अभिव्यक्ति कला में की गई और उसका प्रभाव कई सदियों तक स्थाई बना रहा। आज के युग में भी उसका पुन. निर्माण हो रहा है। "संघ, धर्म, बुद्ध" के विचार ही इस कला में व्यक्त किए गए हैं।

स्थापत्य कला

प्राचीन काल से चली आ रही प्रथा के अनुसार बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तुरन्त बाद ही उनके शरीर, धातु या फूलों को लेकर आठ स्तूप बनाए गए। अन्य धर्मों में जैसे अन्य स्तूपों की पूजा होती थी वैसे ही बुद्ध के स्तूप की भी पूजा होने लगी। इस परम्परा में अशोक ने मूल आठ स्तूपों का विस्तार करके बहुत से नए स्तूप बनवाए जिनकी संख्या बौद्ध ग्रन्थों में चौरासी हजार वर्णित है। प्रारम्भ में यह बौद्ध कला एक विशेष प्रकार की थी। अशोक एक सच्चा बुद्ध भक्त था। अतः बौद्ध कला अशोक के व्यक्तित्व का परिणाम थी। शासक की प्रेरणा से ही इसका निर्माण हुआ। उसके शासन काल में ही उसकी क्रियात्मक धारा रही और जब उसकी मृत्यु हो गई तो उस कला का निर्माण बन्द हो गया। अतः प्रारम्भिक बौद्ध कला एकतन्त्री कही जा सकती है परन्तु इतना होते हुए भी सम्पूर्ण एशिया में धर्म, चिह्न, व कला को प्रेरणा देने वाली यह एक मात्र कला ही थी। अशोक ने ६ प्रकार की वस्तुओं के निर्माण द्वारा कला को प्रोत्साहन दिया—(१) शिलालेख, (२) स्तूप, (३) स्तम्भ, (४) चैत्य, (५) महल और (६) गुफाएं। इन सब में बनावट की दृष्टि से स्तूप, स्तम्भ व गुफाए मुख्य हैं। अशोक ने बुद्ध के जीवन सम्बन्धी घटना स्थानों पर चैत्यों, स्तूपो व स्तम्भों का निर्माण कराया। लुम्बिनी (बुद्ध का जन्म स्थान), सकिसा, सारनाथ (जहां बुद्ध ने प्रथम धर्म उपदेश दिया), गया, कुशीनारा और कई अन्य स्थानों पर स्तम्भ व स्तूप बनवाए गए। अशोक मूर्ति पूजक नहीं था परन्तु उसने बुद्ध के धर्म-शरीर को सच्चा रूप देने के लिए सिंह शीर्षक वाले स्तम्भो की रचना करवाई। सिंहो पर स्थित ३२ अरो वाला धर्म-चक्र बुद्ध के महान् उपदेशों का प्रतीक बन गया। बुद्ध ने अपना धर्म संघ के रूप में संगठित किया था। बौद्ध भिक्षु व भिक्षुणियें धर्म प्रचार के लिए विभिन्न स्थानों पर जाते थे। वहाँ उनके रहने के लिए विहारों का, पूजा के लिए चैत्यों का निर्माण

हुआ। पहाड़ी स्थानों की एकान्त प्रियता को अधिक पसन्द कर भिक्षुओं के स्थान वहां बनने लगे। अतः गुफाओं का निर्माण हुआ। इन सब स्थलों को बौद्ध घटनाओं से चित्रित कर दिया गया। साची का स्तूप अशोक व उसके शीघ्र बाद के समय की बनी इमारतों में सर्व श्रेष्ठ हैं। स्तम्भों, जिन पर बौद्ध धर्म के साकेतिक चिह्न हैं, से आच्छादित यह स्तूप ईंटों से निर्मित हैं। उसकी वेदिकाएं आदि प्रारम्भिक बौद्ध कला की द्योतक है। गुफाओं में लोमास ऋषि की गुफा (बारबरा पहाड़ी, बिहार) अशोक-कला का शुद्ध प्रतीक है।

शुंग काल में (१८५-८० ई० पू०) भरहुत की वेदिकाएं व द्वार सांची की जंगलेदार व सादी वेदिकाएं, बौद्ध गया की वेदिकाएं, अमरावती का प्रारम्भिक स्थापत्य व गुन्तुपेले, भज, कोनदेन, पितलखोरा, अजन्ता (गुफा नं० ९ व १०) बेदसा के चैत्य भवन बौद्ध कला के प्रतीक हैं परन्तु भरहुत के सिवाय इन स्थानों पर पूर्ण बौद्ध सम्बन्धी कृतिएं प्राप्त नहीं हुई हैं। भरहुत में जातक कथाओं को व्यक्त करने वाले चित्र पाषाणों में अंकित किए गए हैं। साची में कला को अधिक सजाने की चेष्टा की गई है। सर जॉन मार्शल का विचार है कि अशोक व शुंग युग के कलाकारों ने प्रकृति के सजीव चित्रों के स्थान पर स्मृति चित्रों की परम्परा को ही बनाए रखा। भारत की कला में साकेतिक चिह्न अधिक बनाए जाते थे जो कि भाषा का काम करते थे। अतः प्रारम्भिक बौद्ध चैत्यों, स्तूपों, स्तम्भों पर बुद्ध के जीवन सम्बन्धी चिह्न अधिक पाए जाते हैं जैसे बोधि वृक्ष, स्तूप, मण्डप, पादुका छत्र आदि। भरहुत व साची में पादुकाओं का अधिक प्रयोग किया गया है। कभी-कभी जातक कथाओं मे बोधिसत्व को मनुष्य के रूप में भी व्यक्त किया गया है। यक्ष, नाग, राजा, तपस्वी आदि के मानव चित्र भी अंकित किए जाते थे।

आन्ध्र व कुषान काल में तक्षिला व गन्धार क्षेत्र में बौद्ध स्थापत्य कला विकसित हुई। स्मृति भवनों, विहारों, चैत्यों के निर्माण में वृद्धि

हुई। इनके विषय भारतीय थे परन्तु बनावट व रूप यूनानी था। यह रूप अत्यन्त यथार्थवादी रहा। यद्यपि अब मूर्ति कला का निर्माण होना शुरू हो चुका था परन्तु फिर भी सांकेतिक चिह्नों का प्रयोग होता रहा। 'दाला दाम्बस' में दमास्तरा (आंख व दांत) के अवशेष अब भी पाये जाते हैं। फाहियान ने अपने यात्रा काल में (३६६-४०५ ई०) ऐसे विहार व चैत्यो को देखा था जिसमें बुद्ध की पादुकाओं की पूजा होती थी। शुंग काल व आंध्र काल में स्थापत्य कला के चार वर्ग किए जा सकते हैं (१) पाषाणो पर खुदाई, (२) सांकेतिक चिह्न, (३) पाषाणों से निर्माण—विहार, स्तूप आदि, (४) चैत्यों का निर्माण का प्रारम्भ होना।

एक ओर साची, भरहुत, गया में स्तूप व पाषाणों पर कला व्यक्त हो रही थी, दूसरी ओर भारत के अन्य भागों में पहाडों को काट कर गुफाओं का निर्माण हो रहा था। अशोक के समय वारवरा की गुफाए बनी परन्तु उसके वाद इसका निर्माण करने का प्रयत्न ही नही किया गया। कालान्तर में इनका विकास इतना हुआ कि आज भी सम्पूर्ण भारत में छोटी-बड़ी लगभग १२०० गुफाओ का पता चलता है। चट्टानो को काट-काट कर मन्दिरों व चैत्यों को रूप देना भारतीय कला की एक विशेषता रही है। कला के इस रूप को गुफाओ के नाम से संबोधित किया गया है परन्तु चट्टानो के भीतर ये कला के गृहकुंज थे। भारतीय परम्परा के अनुसार साधु का निवास स्थान पहाड की गुफाएं होती थी व स्थायित्व के दृष्टिकोण से बौद्ध प्रचारकों ने इसे स्वीकार किया। प्रारम्भ में हीनयान विश्वासो से प्रभावित होकर ऐसी गुफाओं का निर्माण शुरू हुआ। यह रूप दो सौ ईस्वी तक ही रहा। फिर इसके निर्माण में शिथिलता आ गई। इसका केन्द्र नासिक (बम्बई राज्य) था। भज, कोन्देन, पितल कोहरा, बेदसा, अजन्ता (९ व १० गुफा), कान्हरी के दो चैत्य, जुनार के चैत्यों का समूह भी हीनयान सिद्धान्तों से प्रभावित हैं। उड़ीसा में भुवनेश्वर, खन्डगिरि, बिहार में नालन्दा में विहार पाए गए

है जो हीनयॉन मतावलम्बी थे। यूनानियों के सम्पर्क से बुद्ध धर्म में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। महायॉन उसी की देन कहा जाता है। महायॉन के प्रभाव में बौद्ध कला में नया रूप विकसित हुआ। चट्टानों से काटी गई गुफाओं में बुद्ध प्रतिमा संवारी जाने लगी। कुशान काल में यूनानी भारतीय मिश्रित कला का जन्म हुआ। यह गन्धार कला के नाम से प्रसिद्ध हुई। बौद्ध मन्दिर व विहार इस कला से प्रभावित होने लगे। इस प्रभाव से छूती हुई मथुरा में नई प्रकार से कला शैली ने जन्म लिया। गुप्त काल की क्रियात्मक प्रवृत्तियों के कारण बौद्ध धर्म की उदासीन व शिथिल कला पुनः जागृत हुई। इस काल में गुफाओं में विहार व चैत्यों की रचना अधिक रही। अजन्ता की गुफाएं नं० १ से २७ तक, सिवाय ६, १० के इसी काल में निर्मित हुई। चित्रों के प्रकरणों में अजन्ता की गुफाएं सर्वश्रेष्ठ हैं। अजन्ता की गुफाओं के समकालीन एलोरा की बौद्ध गुफाओं का भी अत्यन्त महत्व है। ईसा की ८ वी शताब्दी के अन्त तक बौद्ध स्थापत्य कला जीवित रही। दक्षिण भारत में गुन्तुपेले व सन्कारास की चट्टानों से काटी हुई गुफाएं व पैद्दागजम, भट्टी प्रोलु अमरावती नागार्जुन कोन्डा में बने हुए स्तूप दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म के प्रभाव को स्पष्ट बतलाते हैं।

मूर्ति कला

यह विषय अब तक विचाराधीन है कि मूर्ति कला का प्रारम्भिक रूप भारतीय था या विदेशी। इस विवाद के पहलू में कोई सार नहीं कि भारतीय कलाकारों की अक्षमता के कारण बुद्ध की मूर्ति न बन सकी। बौद्ध धर्मावलम्बी यह विश्वास करते थे कि बुद्ध के निर्वाण हो जाने के बाद स्थूल भूतों के साथ उनका कोई सम्पर्क नहीं रह सका। अतः सैद्धान्तिक तौर पर बुद्ध की मूर्ति पूजा नहीं हुई। प्रारम्भ में बुद्ध के सिद्धान्तों की व्याख्या ही रही। यह सिद्धान्तों का मार्ग बौद्ध भिक्षुओं

में तो सम्मानित हुआ पर गृहस्थों के लिये उतना आकर्षक नही बन सका। यूनान व रोम से सम्पर्क में आने के वाद, कुशाण काल में, बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तो में एक क्रान्ति आयी । बौद्धभिक्षु नागार्जुन के प्रबल प्रयत्न से महायान शाखा का जन्म हुआ । बौद्ध धर्म में मूर्ति की पूजा प्रारम्भ हुई । कनिष्क के राज्य काल का आरम्भ होते ही बुद्ध मूर्तियों का निर्माण होने लगा । कौशाम्बी में प्राप्त हुई बौद्ध मूर्ति, व सारनाथ में बोधिसत्व मूर्ति कनिष्क के आरम्भिक काल की मूर्ति कही जाती है । यह पूर्व समय में मथुरा से बना कर यहां लाई गई । मथुरा के धार्मिक वातावरण में बुद्ध मूर्ति के निर्माण के सारे तत्व प्रथम शती के लगभग एकत्र हो गए थे। कोहन का मत है कि बुद्ध प्रतिमा भारतीय आविष्कार है । गान्धार शैली में कनिष्क के शासन के पहले की कोई मूर्ति नही मिली है । मथुरा कला में मिली हुई मूर्तिया दो तरह की हैं । एक तो अभय मुद्रा में खड़ी हुई विशालकाय बोधिसत्व मूर्तिया और दूसरी पद्मासन में बैठी हुई । श्री कुमारस्वामी के विचारो में मथुरा की बोधिसत्व की मूर्तियां, मौर्य व शुंग काल की यक्ष मूर्तियो की परम्परा में हैं । सारनाथ की बुद्ध मूर्ति व मथुरा की मौर्य कालीन यक्ष की मूर्ति सब प्रकार से एक ही है। अतः बुद्ध मूर्ति का भारतीय होना स्पष्ट है । मथुरा की अन्य मूर्तियां पद्मासन में बैठी हुई अभय मुद्रा में है । मुख की गम्भीर शान्ति, मन्द मुस्कान, बुद्ध के शान्ति भाव के द्योतक हैं ।

मथुरा, सारनाथ, अजन्ता व विहार की विशाल बुद्ध मूर्तियां वे अमर चिह्न हैं जो एक पूरे युग के आदर्शों को अंकित करती हैं । मथुरा में मूर्तियों के साथ-साथ मन्दिर भी बनने लगे । जहां बौद्ध धर्म केन्द्र थे, मथुरा की बनी मूर्तिएं वहां ले जाई गई । इन मूर्तियों से लोगों में भक्ति की भावना बढ़ी जो शीघ्र ही सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैल गयी । काशी, कौशाम्बी, श्रावस्ती, अहिच्छत्रा, संकिसा, कुशीनगर में मूर्तिएं व चैत्य बनने लगे । मथुरा कला की प्रगति की चरम सीमा गुप्त काल में हुई ।

यह काल भारतीय कला का स्वर्ण युग माना जाता है। एक ओर गुप्त काल की बुद्ध मूर्तियों में कला का बाह्य सौन्दर्य पूर्ण मात्रा में पाया जाता है। अंग सौष्ठव, अलंकार, वेष-भूषा इत्यादि की दृष्टि में मूर्तियों में विशिष्ट सौन्दर्य और अभिनवता दिखाई देती है। दूसरी ओर उनका बाह्य रूप अन्तःकरण के किसी दिव्य आनंद व शान्ति का प्रतीक बना हुआ है। गुप्त काल में कला के अनेक केन्द्र देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर पाए गए हैं। पाषाण के अलावा अन्य धातुओं में भी बुद्ध मूर्ति विकसित की जाने लगी। ताम्बा, कांसे आदि में बुद्ध के शरीर की रचना होने लगी। सुल्तानगन्ज (बिहार) में ५ वीं सदी की प्राप्त हुई ताम्बे की मूर्ति अत्यन्त कलात्मक व सुन्दर है। सारनाथ में प्राप्त हुई पद्मासीन बुद्ध की मूर्ति धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में व्यक्त की गई है। अजन्ता की गुफाओं में बौद्ध मूर्तिया भावों की दृष्टि से (अविलोकितेश्वर की मूर्ति) उत्कृष्ट हैं। गुप्त कालीन बुद्ध प्रतिमा आध्यात्मिक व्यंजना के साथ-साथ कला की बलवती प्रेरणा से युक्त थी। नालन्दा से प्राप्त हुई काली स्लेट की मूर्तियां व पीतल की कई मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। बंगाल, बिहार में सेन व पाल शासकों ने गुप्तों की परम्परा को बनाए रखा। दक्षिण भारत में भी बौद्ध काल की अनेक प्रतिमाएं पाई गई हैं। तन्जोर जिले में, नागापतिनम में, अमरावती आदि स्थानों पर ये मूर्तियां मिली हैं।

न केवल भारत में ही बल्कि भारत के बाहर के देशों में भी बुद्ध की प्रौढ और सशक्त मूर्तिया अपनी आध्यात्मिक रचना के साथ फैल गयी। लंका के अनुराधपुर में बुद्ध की प्रतिमाएं मिली हैं। अफगानिस्तान, पामीर क्षेत्र, चीन में भी ऐसी मूर्तिएं प्राप्त हुई हैं। यद्यपि विभिन्न देशों की भौगोलिक स्थितियों के अनुसार बुद्ध की मुखाकृति में परिवर्तन हो गया पर जो योगी का आदर्श एक बार भारत में स्थिर हो चुका था उसकी प्रेरणा अन्य देशों में बनी रही। अफगानिस्तान में बामियां घाटी में पहाड को काट कर बनाई गई दो बावन गजं की मूर्तियां, चीन में

लोया की गुफा में वैरोचन बुद्ध की विशाल मूर्ति अजेय व अदम्य भावों की व्यंजक हैं। जावा, सुमात्रा, कम्बोज देश, स्याम, वर्मा, तिब्बत, नेपाल में बुद्ध की मूर्तियें आज भी धर्म व ज्ञान-प्रकाश को फैला रही हैं।

चित्रकला

बौद्ध पुस्तकों मे चित्र कला को एक प्रगतिशील कला माना गया है। कपडे, लकडी, दीवारों (भित्ति चित्र) पर चित्रकारी के वर्णन स्थान-स्थान पर मिलते हैं। प्रारम्भ में बुद्ध मूर्ति का निर्माण वर्जित था परन्तु अजन्ता के ६ वी व १० वी गुफा में बुद्ध प्रतिमा जो चित्रित की गई है वह १०० ई० पू० से २०० ई० तक की है। जातक कथाओं के तत्व भी चित्रित किए गए हैं। शिल्प कला की तरह चित्रकारी स्थिर व प्रौढ रही है। मुखरों का चित्र, भावों की आवृत्ति, विचारों व समस्याओ का व्यक्तिकरण करना अत्यन्त कठिन होता है। पर अजन्ता में इसकी व्याख्या पूर्ण हो पायी है जोगीमगरा की गुफाओं के भित्ति चित्र, चित्र कला के प्रारम्भिक रूप स्वीकार किए जाते रहे हैं। अजन्ता की चित्रकारी बौद्ध कला के इस क्षेत्र में अत्यन्त आकर्षक रही है। कलाकारों ने एक समूह के रूप में इसका निर्माण किया, ऐसा प्रतीत होता है। बुद्ध के जीवन व जातक कथाओं सम्बन्धी घटनाओं को रग विरंगे चित्रों में अंकित किया गया है। अजन्ता की १, २, १६ व १७ वी गुफाए इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। अजन्ता का प्रभाव विदेशो में भी हुआ। भारतीय शैली के बौद्ध चित्र बनाने में सम्राट स्रोंट टी (ई० सन् ६०५–६१७) के राज्य में चित्राचार्य खुतन का बडा ऊंचा स्थान था। तिब्बत व नेपाल की चित्र कला पर भारतीय प्रभाव पाया जाता है।

भारतीय भित्ति चित्रो की परम्परा में बाघ गुफाओं का उल्लेखनीय स्थान है। ये गुफाएं मध्य भारत के अमझेरा जिले के छोटे गांव में स्थित है। अजन्ता की परम्परा यही से प्रारम्भ हुई। श्री हैवेल के शब्दों

में बाघ की चित्रकारी में बड़ी और छोटी वस्तुओं का सम्मिश्रण इस प्रकार से हुआ है और वे इस अनुपात में बनाई गई हैं कि आंखों के सम्मुख एक सम्पूर्ण चित्रों का खाका सा खिच जाता है। बाघ में जनवादी प्रभाव का अन्यतम मिश्रण है व चित्रों का विषय जीवन की दैनिक घटनाए है। बाघ के चित्रों में धर्म गौण है और मानव जीवन प्रमुख। बाघ के बाद बौद्ध चित्र कला का रूप कान्हेरी की गुफाओं में मिलता है। यहां भित्ति चित्रों के अवशेष रेखाओं के रूप में पाए गए हैं।

समीक्षा

भारत की कला-विकास-धारा में बौद्ध कला का एक विशेष स्थान है। बौद्ध कला पृथक और अछूती कभी नहीं रह सकी। कालान्तर में जैन व ब्राह्मणों की कला विशेषताओं के साथ इसका समन्वय होता गया। काल और क्षेत्र के प्रभाव से यह परिवर्तित भी होती गई परन्तु भारतीय कलाओं को प्रेरणा देने के कार्य में इसका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। एक युग में भारतीय राष्ट्रीयता के साथ यह कला घुल मिल गयी थी। धर्म, राष्ट्र एवं राज्य की प्रतीक बौद्ध कला भारत व एशिया के लिए पूजनीय हो गई थी। भारत के निवासी मूर्ति पूजक कहे जाते हैं। उनकी धर्म व भक्ति का आधार मूर्ति है। भारतीयों की सात्विक वृत्ति का श्रेय उनके चिंतन व विचारों की एकता है। यह एकता मूर्ति के बल पर ही प्राप्त हो सकी थी। बौद्ध कला को मूर्ति निर्माण व पूजा का श्रेय जाता है। बौद्ध कला अन्तर्राष्ट्रीय एकता का द्योतक भी बन गई। प्राचीन काल में एशिया के अन्य राष्ट्रों को भारत के साथ एकता का सम्बन्ध स्थापित करने में बौद्ध कला का प्रमुख हाथ रहा था।

(ख) अशोक कालीन कला

मौर्य शासकों ने कला को संरक्षण प्रदान किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य

के समय में तो काष्ठ के प्रयोग से भवनों का निर्माण हुआ। चूने के पत्थरों का भी प्रयोग होता था परन्तु सम्राट् अशोक का काल तो भारतीय कला के चहुँमुखी उन्नति का काल कहना असत्य नही प्रतीत होगा। सब प्रकार की वस्तुओं का प्रयोग किया गया। कहा जाता है कि अशोक के समय में चौरासी हजार विहारों का निर्माण हुआ था। महावश में दिए गए विवरणों से ऐसा ज्ञात होता है कि अशोक ने अपने शासन काल में निर्माण की योजनाएं ही योजनाएं बनाई। कुछ पूर्ण हुई और कुछ अधूरी ही रह गईं। इन निर्मित तत्वों में स्थायित्व को जो रूप दिया गया था उसका उज्ज्वल रूप तो यह है कि आज दो हजार वर्ष के बाद भी, कई आक्रमणो की बरबादियों को सहते हुए, उसी रूप में वे स्थित हैं। ६ ठी शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान ने अपनी भारत यात्रा के समय अशोक के इन महान सन्देशोंको ध्वसात्मक रूप में देखा था। वह उस युग की, उस सम्राट् की, उन कलाकारोंकी प्रशंसा किए बिना नही रह सका था। अशोक के समय की कला एक ही क्षेत्र में सीमित नही थी। जो भी अवशेष, पूर्ण व अपूर्ण रूप में पाए गये हैं उससे ऐसा ज्ञात होता है कि अशोक ने सारे देश में, अफगानिस्तान से लगाकर बंगाल तक, काश्मीर से लेकर मैसूर राज्य तक अपनी कलाकृतियों को फैला रखा था। ये कलाकृतियां भी एक ही रूप में सीमित नही रही हैं। नगर निर्माण से लेकर स्तम्भ, स्तूप, मठ, गुफाए आदि का भी निर्माण किया गया था। अतः यदि अशोक को कला निर्माण का सम्राट् कहा जाय तो अत्योक्ति न होगी। अशोक २७३ ई० पू० में राज्य का अधिकारी हुआ था। २६६ ई० पू० मे उसका राजतिलक हुआ। अतः बहुत से विचारको का यह कथन है कि अशोक कालीन कला की कृतिओं का निर्माण २६६ ई० पू० के बाद में हुआ। परन्तु लघु शिलालेख प्रथम व स्तम्भ लेख सातवें के अनुसार अशोक के समकालीन कुछ स्तम्भ व भवन उसके पहले शासकों द्वारा निर्मित किए गए थे। कुछ अभिलेखों से ऐसा ज्ञात होता है कि अशोक के प्रपौत्र दशरथ ने तीन स्तम्भ लेखों का निर्माण कराया था।

यह कहना उचित होगा कि अशोक की कलाकृतिएं चन्द्रगुप्त मौर्य की कलाकृतियों की परम्परा को निभाती हुई बनी। दशरथ के समय तक इनका निर्माण होता रहा। करीब एक सौ पचास वर्ष तक की अवधि अशोककालीन कला का समय था।

वर्ग

अशोक के जो स्मारक अभी तक मौजूद हैं उनको तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। (क) स्तूप, जो साची या उसके आस पास पाए गए हैं। (ख) एक पत्थर के बने हुए स्तम्भ। (ग) गुफाएं। इनके अलावा भवनों के हेर फेर करके उन्हे नए ढंग से सजाने का प्रयत्न भी अशोक के समय में किया गया था। स्तूप प्रणाली में सांची, सारनाथ आदि स्थानो मे पाए गए अवशेषों के आधार पर उसकी प्रणाली व पूर्ण करने के प्रयास की समीक्षा आसानी से की जा सकती है। स्तम्भ तो अशोक के समय की मुख्य विशेषता है। यह कृति तो अशोक युग की प्रतीक बन गई है। आज भी हम उस महान सम्राट् की देन को राजकीय चिह्न के रूप में देख सकते हैं। गुफाओं का निर्माण अशोक के समय में इतना विस्तृत नही बन पाया जितना कालान्तर मे, परन्तु जो कुछ भी गुफाए प्राप्त हुई हैं उनमे आन्तरिक सजावट व निर्माण इतना सुन्दर है कि उन्हे देख कर आश्चर्य करना पड़ता है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व किस तरह कलाकारो ने साधनों की सीमितता होने पर भी यह दक्षता प्राप्त की थी।

स्तूप

स्तूपों के बारे में अशोक के अभिलेखो से ज्ञात होता है कि अशोक ने यह परम्परा अपने पूर्वजो से प्राप्त की थी। बुद्ध के अवसान के बाद ऐसा कहा जाता है आठ स्तूप उनके अवशेषों पर बनाए गए थे। डा०

अल्तेकर के प्रयत्नों से उनमें से एक स्तूप लिच्छवियों द्वारा बनाया गया हाल ही में वैशाली में प्राप्त हुआ है। अशोक ने उन स्तूपों का विस्तार ही नही कराया बल्कि उस प्रणाली में थोड़ा परिवर्तन करके स्तूप प्रणाली को स्थायित्व बनाना आरम्भ किया था। यह स्तूप कई अन्य छोटे स्तूपों द्वारा घिरा हुआ है। ये अन्य स्तूप बाद के बने हुए प्रतीत होते हैं। ईंटों को सजा कर गोलाकार रूप में यह स्तूप बनाया जाता था। कनकमुनि के स्तूप का विस्तार अशोक ने ही कराया था। सारनाथ के स्तूप का श्रीगणेश भी अशोक के युग का माना जाता है। सारनाथ की वेदिकाएं अशोक युगीन है। इन सब स्तूपो में विशेषता यह है कि पूर्ण कार्य ईंटों की सहायता से हुआ था। स्तूपों के साथ-साथ विहारों का निर्माण भी अशोक के समय में होने लग गया था। अशोक के समय का एक स्तम्भ लेख साची मे प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार यहां विहार होने का प्रमाण मिलता है।

महल

पाटलीपुत्र (पटना) मौर्यों की राजधानी थी। चन्द्रगुप्त मौर्य ने इस नगर का नए ढग से निर्माण कराया था। राजकीय महल का निर्माण अद्वितीय बन पड़ा है। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने इस राजमहल की विशेषताओं का वर्णन अपनी पुस्तक 'इन्डिका' में किया था। परन्तु बाद में अशोक ने इस महल को पुनः निर्मित किया। ५ वी शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान ने अपनी भारत यात्रा के समय इस महल को सुरक्षित रूप में देखा था। उसने सन्देह प्रकट किया कि इस महल का निर्माण मनुष्यों के हाथों द्वारा कैसे हुआ है। अशोक ने काष्ठ को हटा कर पत्थरों का प्रयोग किया। इसे सौ स्तम्भों का भवन कहा जाता है क्योंकि इस महल के मुख्य भवन में सौ स्तम्भ हैं। सब स्तम्भ एक ही प्रकार के है। एक ही तरह की खुदाई व नक्काशी है। बीस फीट ऊंचे समानान्तर

पंक्तियों में, जो कि पन्द्रह फीट की दूरी पर है, ये स्तम्भ चुनार के चमकदार पत्थर के बने हुए हैं। इनकी कटाई, छंटाई, व बारीकियों का मिश्रित रूप चुनार में ही दिया गया था। मूर्तियों का स्वरूप व शानदार नक्काशी इन स्तम्भों की सुन्दरता को बढ़ा देता है। महल के फर्श की खुदाई के बाद काष्ठ की फर्श, आठ व दस फीट नीचे चूने का स्तर और राख के स्तर पाए गए हैं। श्री स्पूनर का कहना है कि सम्भव है यह महल नदी के बाढ़ से या अग्नि के कारण नष्ट हो गया हो। अशोक के समय के पहले महल व अन्य भवन काष्ठ के बनते थे। जातक कथाओं में ऐसे भवनों का अधिक विवरण दिया गया है। अशोक ही पहला शासक था जिसने पत्थरों के महल व अट्टालिकाओं के निर्माण को प्रोत्साहन दिया था। राजगृह के महलों में 'जरासन्ध की बैठक' पत्थर की ही बनी है।

नगर निर्माण

ग्यारहवीं शताब्दी का इतिहासकार कल्हण अपनी पुस्तक 'राजतरंगिणी' में लिखता है कि श्रीनगर में अशोक ने पांच सौ बौद्ध मठों का निर्माण कराया था। कुछ हिन्दू मन्दिर भी अशोक द्वारा बनाए गए थे। हुएत्सांग (७ वीं शताब्दी) ने सौ बौद्ध मठों को देखा था और वह लिखता है कि चार स्तूप अशोक के समय के थे। श्रीनगर के निर्माता के रूप में अशोक का नाम राजतरंगिणी में दिया गया है। हुएत्सांग ने तो यहां तक लिखा है कि सम्पूर्ण काश्मीर को अशोक ने बौद्ध भिक्षुओं को समर्पित कर दिया था। एक दूसरे नगर का अशोक के अभिलेखों से पता चलता है। वह नगर था देवपत्तन। अशोक की पुत्री चारुमति व उसके पति देवपाल क्षत्रिय के साथ अशोक ने इस स्थान की यात्रा की थी और यहां एक मठ बनाने की आज्ञा दी थी।

स्तम्भ

अशोक की कला के विशेष उल्लेखनीय स्मारक स्तम्भ हैं। परन्तु स्तम्भ अशोक की मौलिक देन नहीं कहे जा सकते हैं। प्राचीन भारत में, स्तम्भों के निर्माण की प्रणाली थी। अपने अभिलेखों में अपने पूर्वजों के समय की इस प्रणाली के बारे में अशोक ने वर्णन किया भी है। हिन्दुओं के मन्दिरों में स्तम्भ बनाए जाते थे जिनके सहारे छतें ठहरती थीं। वे स्तम्भ सादगीपूर्ण थे या उन पर देवताओं के सांकेतिक चिह्न या त्रिशूल अंकित थे यह कहना कठिन है। वेदों में भी स्तम्भ निर्माण का उल्लेख मिलता है। अतः स्तम्भ प्रणाली अति प्राचीन प्रणाली थी। कई विदेशी इतिहासकारों का कहना है कि अशोक ने जिन स्तम्भों का निर्माण कराया था उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह फारस की कला से प्रभावित था। सेनार्ट इस प्रकार के स्तम्भों का निर्माता फारस के शासक दारा को मानता है। डा० स्मिथ ने 'नक्शे रुस्तम' के अभिलेख की ओर संकेत करते हुए यह बतलाया है कि धर्म व नैतिक प्रचार के लिये अशोक ने जिन स्तम्भों का निर्माण कराया है वे फारस से लिए गए हैं। यों देश व काल का प्रभाव पड़ता रहता है। रोम साम्राज्य का प्रभाव फारस पर तथा फारस का भारत पर प्रभाव पडा। अतः रोम साम्राज्य के समय के स्तम्भों का कुछ परिवर्तन फारस में हुआ और अशोक ने फारसी प्रणाली की स्तम्भ प्रथा में परिवर्तन कर अपने राज्य में प्रसारित किया। फारस के स्तम्भ स्वतन्त्र इकाई में कभी प्राप्त नहीं हुए हैं। अशोक के स्तम्भ स्वतन्त्र इकाई में स्थित हैं। यही अशोक की नवीन देन थी।

स्तम्भों की कटाई छंटाई

अशोक के स्तम्भ उत्तर प्रदेश राज्य के चुनार क्षेत्र में निर्मित हुए थे। लाल पत्थर की चट्टानों को काट छांट कर ये एक ही रूप में बनाए गए थे। एक स्तम्भ एक ही पत्थर का है। इसी पत्थर को छैनी व

हथोड़ों द्वारा गोलाकार बनाया गया। उसके शीर्षभाग में घंटी के समान टोपी बनाई गई और उस पर उभरती हुई मूर्ति अंकित की गई। चुनार में ही इन स्तम्भ की पौलिश की गई थी। स्मिथ का कहना है कि "सख्त पत्थर पर पालिश करने की कला उस समय इतनी पूर्णता को पहुँच गई थी कि आज कल के कारीगर उसको देख कर दांतों तले अंगुली दबाते हैं और उसकी नकल तक नही कर पा सकते हैं।" स्तम्भ इतना ओपदार तथा सुन्दर है कि लोग उसे धातु का बना समझते हैं। ये स्तम्भ दो प्रकार के हैं, पूर्ण व लघु। पूर्ण की ऊंचाई ५० फीट है और लघु की ऊंचाई ४० फीट है। यह ऊंचाई धरातल से गिनी गई है। ये सब स्तम्भ चुनार में ही निर्मित हुए फिर वहां से उन स्थानो पर ले जाए गए जहां उन्हे स्थापित करना था। वैज्ञानिकों को आश्चर्य होता है कि मौर्य काल के शिल्पज्ञों व कारीगरो ने किस प्रकार ४० फीट व ५० फीट लम्बे पाट, समान रूप में चुनार की पहाड़ियो से प्राप्त कर, स्तम्भो का निर्माण किया होगा। दूसरा आश्चर्य यह है चुनार से दूर-दूर स्थानों पर इन स्तम्भो को सुरक्षित रूप में ले जाकर स्थापित करना। इन स्तम्भों का वजन ५१ टन है। सुल्तान फिरोजशाह ने अशोक के एक स्तम्भ को जो कि तोपरा में स्थित था दिल्ली लाने का प्रयत्न किया था। शम्से शिराज लिखता है कि इस स्तम्भ को लाने में कई महीने लग गए और ८,४०० बैलगाडियों व मजदूरो की सहायता लेनी पड़ी थी। यह अवस्था १३ वी शताब्दी की थी जब कि आवागमन के साधन प्राप्त होने में अधिक कठिनाई नही होती थी। अतः यह आश्चर्य अभी तक बना हुआ है कि किस प्रकार अशोक के शिल्पज्ञो और कारीगरो ने इन स्तम्भो को सुरक्षित रूप में दूर-दूर स्थानो पर स्थापित किया था।

भिन्न-भिन्न स्तम्भ

अशोक के स्तम्भो की कुल संख्या ४६ है। उनके तीन वर्ग किए जा

सकते हैं। (१) छः स्तम्भलेख, ये छः स्थानों पर पाए गए हैं। (२) लघु स्तम्भ लेख, ये चार हैं। (३) दो स्तम्भ तराई मे हैं जब कि अशोक वहां की यात्रा करने गया था तब उस स्मृति में बनवाए गये थे। सुरक्षित रूप में ये स्तम्भ सिर्फ दस स्थानो पर प्राप्त हुए हैं, तोपरा, मेरठ, कौशंबी, लौरिया अराराज, रामपूरवा, लौरिया नन्दीगढ़, सांची, सारनाथ, रुमनदई व निगलिव। बड़े स्तम्भ २५३ ई०-२४३ ई० पू० बने थे। लघु स्तम्भ २४२-२३२ ई० पू० व तराई के दो स्तम्भ लेख २४९ ई० पू० के प्रतीत होते हैं। प्रत्येक स्तम्भ पर अभिलेख अंकित है। चौकोर आधारों पर स्थित ये स्तम्भ स्वतन्त्र इकाई के रूप में खड़े हैं। शीर्ष भाग पर उल्टी घंटी के रूप में टोपी है। श्री हेवेल का कहना है कि वास्तव में यह कमल का उल्टा रूप है और पूर्णतया भारतीय है। उल्टे कमल पर गोलाकार वृत्त है जिनमें नाना प्रकार की पशु मूर्तियां भी अंकित हुई है। दो पशुओं के बीच में चक्र है। इस वृत्त पर आधारित कई प्रकार के खड़े हुए पशुओं की मूर्तिएं हैं। पर कहीं-कहीं चक्र भी हैं। श्रावस्ती से प्राप्त स्तम्भ के शीर्ष भाग पर चक्र है। एक दूसरा स्तम्भ फाहियान ने देखा था, जिसके शीर्ष भाग पर बैल था। शकासा में हाथी है। हुएनसांग ने कुशीनगर स्तम्भ पर शेर व राजगृह स्तम्भ पर हाथी, सारनाथ में शेर व लुम्बिनी में घोड़े की मूर्ति रखी हुई देखी थी। इन सब शीर्ष भागों में शेर की मूर्तियें अति स्वाभाविक बनी हैं। उनके सिर के बाल, पावों के नाखून मूछे, नसें, मांसपेशियां, दात, जीभ आदि इतनी बारीकी से बनाई ग' हैं कि कलाकारों की प्रशंसा किए बिना नही रहा जाता। सिंहों के बारे में स' जॉन मार्शल का कहना है कि 'यह सुन्दर शीर्ष भारत की अब तक की शिल्प कला का उत्कृष्ट उदाहरण है और प्राचीन जगत में भी को कलाकृति इसके टक्कर की नहीं बनी थी।' इन स्तम्भों में सबसे अधि सुरक्षित लौरिया अराराज का स्तम्भ है। सारनाथ व साची के स्तम्भ मे चार शेर हैं जो एक दूसरे की ओर पीठ किए हुए खड़े हैं। स्तम्भों

यथा स्थान पर शान्ति का प्रतीक 'मोर' व धर्म का प्रतीक 'चक्र' अंकित किया गया है।

गुफाएं

अशोक ने गुफाओं का भी निर्माण कराया था। ये गुफाएं बारबरा की पहाड़ियों में स्थित हैं। बारबरा की गुफाओं की संख्या सात है जो उसी पहाड़ी के कड़े व ग्रेनाइट पत्थर को काट-काट कर बनाई गई थीं। इन गुफाओं में चार गुफाएँ सम्राट अशोक की हैं और तीन गुफाएं उसके पौत्र दशरथ के समय की हैं। गुफाओं का आन्तरिक भाग इतना चमकदार है कि उनमें अपना प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। दीवारों को साफ सुथरा करने के इस प्रयास को कलात्मक रूप दिया गया है। पहली गुफा करन चपड़ गुफा है। इसका आन्तरिक भवन चौकोर और सादगी पूर्ण है। दूसरी गुफा का नाम 'सुदामा' गुफा है। लोमश ऋषि की गुफा अत्यन्त प्रसिद्ध है। बाकी गुफाओं में 'विश्व' व 'गोपिका' हैं। 'विश्व' गुफा अधूरी है और 'गोपिका' गुफा अर्ध वृत्ताकार है। आन्तरिक हिस्सों में बड़ा कमरा है जिसमे पर्याप्त संख्या में भिक्षुओं व साधुओ के ठहरने के लिये निवास स्थान बनाया गया है।

मूर्ति कला

अशोक के समय मूर्ति कला का भी विकास हुआ। यद्यपि इस कला का निर्माणकाल अशोक के बाद का युग था परन्तु लकड़ी और हाथी-दांत पर की गई कारीगरी को मूर्ति रूप दिया गया। मथुरा में एक पुरुष की सात फीट ऊंची विशाल मूर्ति प्राप्त हुई है जो भूरे व चमकदार पत्थर की बनी है। पाटलीपुत्र (पटना) में प्राप्त इस प्रकार की दो मूर्तिएं और प्राप्त हुई हैं जो कलकत्ता के अजायबघर में रखी हुई हैं। ये मूर्तिएं प्राचीन

कला की द्योतक है। डा० कुमार स्वामी का विश्वास है कि इन मूर्तियों का रूप राजकीय संरक्षकता में विकसित कला का रूप नही बल्कि जनता द्वारा रचित रूप है। अशोक के समय पशुओं की जो मूर्तिएं रची गई वे टेकनीक व शैली के दृष्टिकोण से उच्च कोटि की मानी जाती हैं। सिक्कों का निर्माण कर, उन पर भी सांकेतिक चिह्नों का प्रयोग किया गया। ऐसे सिक्कों में अशोककालीन पंच मार्का सिक्के पाए गए हैं जो अव्यवस्थित रूप में ढाले गए प्रतीत होते हैं।

समीक्षा

अशोक काल की प्रमुख विशेषता है उसकी स्पष्टता व सटीकता और इन बातों में यूनान की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कृति भी इससे बढ कर नही हो सकी है। इस काल में टेकनीकल (यांत्रिक) कुशलता पूर्णतया प्राप्त की गई और कला को पूर्ण रूप से सजाने का प्रयत्न किया गया। अशोकयुगीन कला की यांत्रिक दक्षता को देखने में ऐसा लगता है कि उस समय यह कला अपनी परिपक्वता पर थी। अशोक की कला पर यूनानी और ईरानी प्रभाव पड़ा है, जैसे घंटीनुमा शीर्षभाग, पोलिस प्रणाली, वृक्ष, पक्षी, पजे, नसें, मासपेशियां आदि का स्वरूप यूनानी है। स्तम्भ ईरान की देन है। परन्तु यह कहना कि अशोक काल की कला पूर्ण विदेशी प्रभाव से बनी है उचित प्रतीत नही होता है। यहां तक कि डा० स्मिथ के विचारो में विषय और प्रेरणा का क्षेत्र भारतीय रहा। श्री हेवल घटानुमा शीर्षभाग को कमल का रूप देते हैं। चूंकि भारत व फारस का सास्कृतिक व व्यापारिक संबंध सदियों से रहा है अतः एक दूसरे देश के बीच उनके विचारों का आदान प्रदान होना स्वाभाविक था अतः कला के क्षेत्र में दोनो देशों की कला के समान तत्व पाए गए हैं तो कोई आश्चर्य की बात नही है। यद्यपि अशोक काल की कला पर ईरानी और यूनानी कला का प्रभाव पड़ा है तो भी वह निर्माण व तान्त्रिक रूप में मुख्यतः भारतीय है।

(ग) जैन कला

भारतीय कला के क्षेत्र में जैनधर्मावलम्बियों का महत्वपूर्ण योग रहा है। जैन कला भी बौद्ध समाज व धर्म का द्योतक रही है और इसी हेतु जैन समाज व धर्म प्रचारकों ने भारतीय कला में विशेष योग दिया। यह अत्यन्त कठिन विषय हो जाता है कि जब किसी कला को वर्ग से संबंधित कर दें। बुद्ध व महावीर युग-प्रवर्तक थे। उनकी प्रेरणा से समाज के हर अंग में क्रान्ति हुई। इससे कला का क्षेत्र भी अछूता न रह सका। प्रारंभ में जैन व बौद्ध का भेद स्पष्ट नहीं था। बौद्ध धर्म को राजकीय प्रश्रय प्राप्त हो जाने पर उसकी चहुँमुखी उन्नति हुई। जैन धर्म, धीरे-धीरे अपने कर्मठ विद्वानों, सिद्धान्तों व विचारकों द्वारा प्रेरित हुआ। अतः समाज, कला व राज्य पर इसका प्रभाव इतना शीघ्र न हो सका। जैन विचारकों का कहना है कि जैनों ने कला के प्रकाश में कभी भी अपने उपकरणों को नहीं देखा। जैनों के अलावा अन्य लोगों ने इन्हें धार्मिक वस्तु समझा। परन्तु जैन तीर्थ, मन्दिर और मूर्ति केवल धार्मिक उपासना के ही अंग नहीं माने गए, उनमें भारतीय जन जीवन के साथ कला और सौन्दर्य के निगूढ़ तत्त्व भी सम्मिलित हैं। इसमें जैनों ने पूर्व परम्परा में पनी हुई शिल्प-कला और उनके उपकरणों की रक्षा की और साथ-साथ में सामयिकता का ध्यान भी रखा। सामान्य वस्तु को भी संजोकर कलात्मक जीवन का परिचय दिया। यद्यपि मन्दिरों और गुफाओं को छोड़ कर जैनाश्रित कला के प्रतीक उपलब्ध नहीं होते हैं, पर जो भी विद्यमान हैं वे उत्कृष्ट कला के प्रतीक हैं।

काल, क्षेत्र और वर्ग

जैन कला की प्राचीनता एक समस्या बन गई है। जैन इतिहासवेत्ता इस बात के प्रति अपने विचारों को दृढ़ किये हुए हैं कि जैन-कला का प्रारम्भ सिन्धु घाटी की सभ्यता के विकास चरण में हुआ था।

मोहनजोदड़ो से निकली हुई मूर्तियों में से योगिक साधना में संलग्न मूर्ति जैन धर्म की प्रतीक समझी गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि जैन कला का प्रादुर्भाव ईसा से ३००० वर्ष पूर्व हुआ परन्तु जैनाश्रित शिल्प स्थापत्य कला का इतिहास कुषाण काल से माना जाता है क्योंकि उस युग की अनेक कला कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं। डा० प्राणनाथ ने प्रभासपाटण से प्राप्त हुए एक ताम्र पत्र के आधार पर यह लिखा है कि 'बेबीलोन के शासक नेबुचन्दनेजार ने रेवतगिरि के नेमिनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था।' उक्त लेख से गिरिनार पर जैन मन्दिर का होना स्पष्ट मालूम होता है और उसका काल ईसा से छठी शताब्दी पूर्व का था। खारवेल के हस्ती गुफा अभिलेख से भी यह सिद्ध होता है कि नन्द काल में भी जैन कला विकसित थी। अतिप्राचीन कला के द्योतक के रूप में जैनों की कला का विकास प्रारम्भ हुआ परन्तु कालान्तर में इसका विकास अत्यन्त धीरे-धीरे हुआ। बौद्धों से प्रभावित कला ने भारतीय कला क्षेत्र में जो क्रान्ति की वह जैन कला न कर सकी। बौद्ध कला के निर्माण के शिथिल युग में ब्राह्मणों ने पुनः अपना प्रभाव स्थापित किया। जैन वर्ग ने भी उसका लाभ उठाया। ईसा की आठवीं शताब्दी में जैन कला ने शक्ति प्राप्त की और तब से लगातार जैन कला का प्रभाव भारतीय कला पर पड़ता गया। मुसलमान युग में बौद्ध कला की तरह इसकी समाप्ति नहीं हुई बल्कि विकास ही होता रहा। आज भी जैनों के मन्दिरों के निर्माण का कार्य रुका नहीं है। जैन कला भारत के हर क्षेत्र में व्याप्त हो रही है परन्तु इसका मुख्य क्षेत्र एलोरा, गुजरात, राजस्थान व मध्यभारत रहा है जहां वस्तु, मूर्ति, तथा चित्र कला का विकास हुआ। जैनाश्रित कला गुफा, मन्दिर, मान स्तम्भ आदि में व्यक्त हुई मिलती है। प्रतिमाएं भी अत्यन्त विशाल और कई रूपों में प्राप्त हुई हैं पर चित्र कला के क्षेत्र में जैनों की कला अधिक विकसित नहीं हुई।

विषय

"मानव सभ्यता का प्रेरणाप्रद इतिहास कलाकारों द्वारा ही सुरक्षित रह सका है। वे अपनी उच्चतम सौन्दर्य सम्पन्न कलाकृतियों के द्वारा जन-जीवन के उन्नयन की सामग्री प्रस्तुत करते हैं।" इसी उद्देश्य के आधार पर जैन कला का रूप विकसित हुआ। जैन कला धर्म प्रभावित रही क्योंकि यह युग की आवश्यकता के अनुसार बढ़ रही थी। कला के द्वारा जैन-विचार धारा का प्रसार करना भी कलाकारों का उद्देश्य रहा था। महावीर व अन्य तीर्थंकरों की जीवन सम्बंधी घटनाओं से प्रेरणा पाकर कलाकारों की तूलिका ने उनको पाषाणों पर, धातुओं और भित्तियों पर अंकित कर दिया। सामयिकता को ध्यान में रखते हुए, प्राचीन परम्परा को संभालते हुए, नवीनतम भावना और कलात्मक उपकरणों की सफल सृष्टि भी की। जैन कला में मानवता का मूक संदेश भी है। इनकी कला केवल कला के लिए न होकर जीवन के लिए बन गई क्योंकि भारतीय जनजीवन को व्यक्त करना कलाकारों का विशिष्ट उद्देश्य रहा। जनता के नैतिकस्तर को ऊंचा उठाने के विषयों की भी व्यंजना जैन कला में प्राप्त होती है।

स्तूप

प्राप्त साधनों के आधार पर जैन पुरातत्व का इतिहास ईसवी पूर्व आठवीं शती से प्रारम्भ करना समुचित जान पड़ता है। कुषाणकाल से पूर्व मगध में स्तूप पूजा का सर्वाधिक प्रचार था। जैन कथा साहित्य में धूम-स्तूप विषयक प्रमाण मिलते हैं। यों तो पुरातन विश्वसनीय जैन स्तूप मथुरा में उपलब्ध हुए हैं। महावीर के निर्वाण स्थान पर एक स्तूप बनवाये जाने का उल्लेख जैन साहित्य में आता है। पावापुरी से एक मील दूर आज भी एक भग्न स्तूप विद्यमान है। वहां की जनता का विश्वास है कि यही भगवान महावीर का निर्वाण स्थान है। यह स्तूप

मण्डपाच्छादित नहीं है। इसकी ईंटें राजगृह की ईंटों के समान हैं। व्यास को देखते हुए ऐसा लगता है कि किसी समय यह विस्तृत रूप में रहा होगा।

गुफा

जैन गुफाएं पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध होती हैं। फर्गुसन के विचार हैं कि जैन कभी गुहा निर्माता रहे ही नहीं और ९ वीं शती से पूर्व इनकी एक भी गुफा नहीं है परन्तु जैनों की प्राचीन गुफाएं गिरनार, बारबरा व नागार्जुनी पहाड़ियों में प्राप्त हुई हैं। अशोक ने बराबर की गुफाओं को आजीविकों को दान दिया था। आजीवक जैन धर्म का एक सम्प्रदाय था। मध्यभारत की उदयगिरि गुफाओं में जैन गुहा मन्दिर है जिसमें पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा है जिसका सर्पफन शेष रह गया है। जोगीमारा की गुफाएं जैन भित्ति चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। ढंकागिरि गुफा में पार्श्वनाथ व अम्बिका की प्रतिमाएं हैं। चन्द्र गुफा (गुजरात) पहली या दूसरी शती में बनी थी। ये चन्द्राकार है। दक्षिण भारत में बादामी में एक जैन गुफा ६५० ई० में बनी। इसकी पटशाला ३१ × १९ फुट है। यह गुफा १६ फुट गहरी है। इसमें महावीर पद्मासन में विराजमान हैं। मदुरा में भी श्रमरनाथ, समरनाथ की पहाड़ियों में छिपी एक गुफा हाल ही में प्रकट हुई है। एलोरा का छोटा कैलाश, इन्द्रसभा, जगन्नाथ सभा की जैन गुफाएं कला के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। ऐहोल में एक जैन गुफा में सहस्रफल युक्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्राप्त हुई है। दसवीं शताब्दी तक जैन गुफाओं का निर्माण होता रहा। जैन शैली के विकासात्मक तत्वों का मूल बहुत अंशों तक एलोरा का ही रहा है।

मन्दिर

पुरातन अवशेषों में मन्दिरों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। धार्मिक व कला की दृष्टि से मन्दिरों का स्वतन्त्र स्थान है। मन्दिरों का निर्माण मूर्ति व गुहा (गुफा) कला का मिश्रण है। ई० पू० छठी सदी में यक्ष मन्दिरों का सामूहिक प्रचलन था। वे चैत्य कहलाते थे। स्मिथ का विचार है कि ई० पू० १५० में मथुरा में जैन मन्दिर था। आर्य और द्रविड दोनों शैलियों के जैन मन्दिर पर्याप्त मिलते हैं। जैन मन्दिरों के स्तम्भों, छतों आदि में जैन मूर्तियाँ तथा कथाएं खुदी हुई पायी जाती हैं। उनके मन्दिर के चारों ओर छोटी-छोटी देव कुलिकाएं बनी रहती हैं जिनमें भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों की प्रतिमाएं स्थापित की जाती हैं। जैन मन्दिरों में कहीं-कहीं दो मण्डप और एक विस्तृत वेदी भी होती है। मन्दिरों में गर्भ गृह के ऊपर शिखर और उसके सर्वोच्च भाग पर आमलक नाम का बड़ा चक्र होता है। आमलक के ऊपर कलश रहता है और वहीं ध्वजदण्ड भी होता है। १० वीं शताब्दी के पहले बने जैन मन्दिरों के गर्भ गृह के आगे मण्डप रहता था। समय के विकास के साथ शैली में भी प्रगति हुई। उत्तर व पश्चिम भारत के मन्दिरों के शिखर प्रायः नागर शैली के हैं। गुप्तकाल के बाद के मन्दिरों के शिखर सापेक्षतः अलंकरणों से भरे मिलते हैं। जिस सम्प्रदाय का देवा पतन होता था उस पर धर्म के विशेष प्रसंग या देव देवियों का अंकन रहता था।

मन्दिर का भीतरी भाग कई उपभागों में विभक्त रहता है—द्वार मण्डप, शृंगार चौकी, नव चौकी, गूढ मण्डप, कोली मण्डप और गर्भ गृह जहां पर मूर्ति स्थापित की जाती है। गर्भ गृह और गूढ मण्डप पर शिखर व 'गुम्बज रहते हैं। द्वार मण्डप प्रायः सजाया हुआ रहता है। दो स्तम्भों का तोरण भी कहीं-कहीं रखा जाता है। मुख्य द्वार पर जिन मूर्ति की आकृति रहती है, भीतरी भाग के मुख्य मण्डप पर साधक नर-नारी प्रभु भक्ति करते हैं। यहां के सुललित अंकन वाले स्तम्भों पर

नृत्य करती हुई निर्विकार पुतलिकाओं की भाव सूचक मूर्तियां खुदी रहती है। स्तम्भों व छतों पर तीर्थंकर के जीवन की विशिष्ट घटनाएं खुदी हुई होती हैं। मधुच्छत्र इसी पर रहता है। आबू का मधुच्छत्र भारतीय शिल्पकला का अनन्य प्रतीक है। ऐसे मधुच्छत्र राणकपुर (राजस्थान) के मेघनाद मण्डप में भी हैं। मन्दिर का भीतरी भाग प्रायः अलकृत रहता है। द्वार पर नागपाश या एक मुख या तीन या पांच देह वाली आकृतियां रहती हैं। बाह्य भाग में भीट जगती मन्तरपम, ग्रास पट्टी, नरघर, हंसघर, अश्वघर की खुदाई पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इनकी कोरनी, सूक्ष्म कल्पना और उदार भावना प्रत्येक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। प्रारम्भ में मन्दिर ईंटों के बनते थे। फिर पाषाणों के बनने लगे। कालान्तर में संगमरमर पत्थर का प्रयोग होने लगा। कुछ मन्दिर भूमिगत भी हैं और तीन चार मंजिल के भी। जैन मन्दिर नगरों में विशेष स्थान शत्रुंजय का पहाड़ है। वह पहाड़ मन्दिरों का नगर कहा जाता है। जैसलमेर, राणकपुर, गिरनार, अहमदाबाद, पाटन, खम्भात, खजुराहो, देवगढ, हलैबीडे, आबू, कुमारियाजी आदि स्थानों पर जैन मन्दिर बहुतायत से हैं।

भाव शिल्प

जैनों ने जिन मूर्ति, मन्दिर और तदंगी भूत उपकरणों का जहां निर्माण करवाया, वहां पर पौराणिक कथा साहित्य और जैन धर्म के आचार प्रतिपादक दृश्यों का भी उत्खनन करवा कर शिल्प वैविध्य में अभिवृद्धि की। मथुरा में ऐसी कृतियां मिली हैं। उनमें महावीर के जीवन पट पर प्रकाश डालने वाले साहित्यिक उल्लेखों की सत्यता सिद्ध होती है। पौराणिक कथा प्रसंगों में भरत बाहुबलि युद्ध, बहन ब्राह्मी और सुन्दरी द्वारा प्रतिबोध, आर्द्रकुमार के जीवन की विशिष्ट घटनाएँ, पार्श्वनाथ की कमठवाली घटना, शान्तिनाथ का प्रसंग, नेमिकुमार का सम्पूर्ण

चरित्र उत्कीर्ण है। तोरणद्वार में भी भाव सूचक शिल्प का अच्छ आभास मिलता है। राणकपुर और कुम्भरियाजी (दांता बम्बई राज्य) ं जैन मन्दिरों में कई भाव शिल्प के उत्कृष्ट प्रतीक पाए गए हैं।

स्तम्भ

जैन मन्दिर के सम्मुख विशाल स्तम्भ बनवाने की प्रथा दिगम्बर जैन समाज में रही है। दक्षिण भारत व मध्य भारत में यह प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कीर्ति स्तम्भ, मान स्तम्भ आदि मध्य काल की देन.हैं। मान स्तम्भ इन्द्र ध्वज का प्रतीक होता है। यह प्रतिमा के विहार के आगे रहता था। मान स्तम्भों की मौलिक परम्परा एक सी ही सब जगह है पर स्थानीय प्रवृत्तियों का प्रभाव उन पर अवश्य पड़ा है। मान स्तम्भ के ऊपरी भागों में शिखर जैसी आकृति पाई गई है। छोर पर चतुर्मुख प्रतिमाएं हैं। स्तम्भ चपटे, गोल तथा कई कोनो में बनते थे। कई स्तम्भ लकड़ी के बने हुए भी मिले हैं। देवगढ, बघेलखन्ड, महाकौशल व दक्षिण भारत में स्तम्भ विशेष रूप से पाये गये हैं। कीर्तिस्तम्भों में चित्तौड़ का कीर्ति स्तम्भ कला का भव्य प्रतीक है। यह ७६ फुट ऊँचा व ३२ फुट व्यास का है। इसका निर्माण १२ वीं शताब्दी में बघेरवंशीय साह जीजा ने करवाया था। जैन मूर्तियों से आच्छादित यह स्तम्भ आज भी उसी अवस्था में स्थित है।

मूर्ति कला

जैन पुरातत्व में मूर्ति का एक विशेष स्थान है। जैन विचारकों के अनुसार सिन्धु घाटी की सभ्यता के काल मे ही जैन धर्म की प्राचीनता रही है। मोहेनजोदड़ो से प्राप्त योगिक क्रिया के रूप में एक मूर्ति को जैन मूर्ति बतलाया गया है। परन्तु उपलब्ध मूर्तियों के अन्वेषण के बाद जैन म[illegible] की प्राचीनता ई० पू० ३०० से ऊपर नहीं जाती। मौर्य स[illegible]

सम्प्रति ने कई मूर्तियें बनवाई थी। जैन इतिहास में सम्प्रति का वही स्थान है जो बौद्ध धर्म में अशोक का है। व्यवस्थित व लगातार रूप से कुषाण युग में इस कला का प्रादुर्भाव हुआ था। मथुरा इसका केन्द्र थी। मूर्तियों के साथ आयागपट्ट भी मिले हैं। आयागपट्ट एक विभूषित शिला होती है जिसके साथ जिन की मूर्ति या अन्य कोई पूज्य आकृति जुड़ी हुई रहती है। इसका अर्थ है पूजा या अर्पण की तख्ती। ये आयागपट्ट कला की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। चारों ओर विभिन्न अलंकरणों के मध्य भाग में पद्मासनासीन जिन की प्रतिमा बनी रहती है। इन आयागपट्टो में त्रिशूल एवं धर्मचक्र के चिन्ह भी पाये जाते है।

जैन मूर्तियाँ धीर-गम्भीर-वदन की प्रतिमाएं है। खड़ी, शिथिल, हस्त लटकाए, कहीं नग्न तो कही कटि वस्त्र धारण किए या कही बैठी हुई पद्मासन में, दोनों करों को चेतनाविहीन ढंग पर गोद में लिए हुए, नासाग्र भाग पर ध्यान लगाए, विकार रहित प्रतीक, यह रूप २४ तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का है। सब की मौलिक मुद्रा एक है परन्तु स्थानीय तत्वों का असर उन पर अवश्य पड़ा है। गुप्त काल भारतीय मूर्ति विज्ञान का उत्कर्ष काल माना जाता है। इस काल में विशेषतः बौद्ध मूर्तियों का ही निर्माण हुआ। कुछ जैन मूर्तियाँ भी बनी। कुमार गुप्त के समय की महावीर की प्रतिमा व स्कन्दगुप्त के समय की कोहम ग्राम में जैन मूर्ति स्थापित करने की सूचना गुप्त लेखो में मिलती है। राजगृह के तृतीय पहाड़ पर फणयुक्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा गुप्त युग की है। गुप्तोत्तर कालीन जैन मूर्तिया मन्दिरो की अपेक्षा गुफाओं में ही भित्ति पर उत्कीर्णित मिलती हैं। ये अधिकतर सपरिकर ही है। इसके दो भाग किए जा सकते हैं। प्रथम परिकर में जैन मूर्ति एव उसके चारों ओर अवातर बैठी या खड़ी मूर्तियाँ ही अंकित रहती हैं। इस शैली की मूर्तियाँ प्रस्तर और धातु की मिलती है। दूसरा रूप मूल प्रतिमा के दोनों ओर चामरधारी, इनके पृष्ठ भाग में हस्ती या सिंहासन, पुष्प मालाएं लिए देव देवियां, मस्तक पर अशोक पत्तियां, कहीं दण्डयुक्त छत्र, कही दण्ड रहित, उसके ऊपर दो हाथी, कहीं कमल की पंखुड़िया रेखाओं वाली, कहीं सादी, मूर्ति के निम्न भाग में

कहीं कमलासन, धर्मचन्द्र अधिष्ठात्री, नवग्रह कुबेर उत्कीर्ण किये मिलते हैं। कहीं पर चतुर्मुखी मूर्तियाँ, कहीं पर शिलापट्ट पर चौबीसों तीर्थंकरों की मूर्तियाँ सामूहिक रूप से उपलब्ध होती हैं। यह शैली १२ शती तक रही।

जैन मूर्तियाँ भारत के प्रत्येक भाग में पायी जाती हैं। उत्तर भारत की शैली बम्बई, राजस्थान, पंजाब, मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश राज्यो में पाई गई है। इस शैली में मुखाकृति, शरीराकृति, और अन्य उपकरणों में काफी साम्य रहता है। दक्षिण भारत में जैन मूर्तियाँ २०० ई० से १३०० ई० तक की पाई गई हैं। उडीसा के उदयगिरि व खंडगिरि में जैन गुफाएं है। उनमें रानी गुफा के द्वार पर जैन मूर्तियों का एक लम्बा पट्टा है। आबू के जैन मन्दिर, व पाटण के मन्दिर की मूर्तियां, स्थानीय प्रभावों से अधिक युक्त है। जैन प्रतिमाएं अधिकतर धातुओं की बनी हुई हैं। प्रस्तर मूर्ति खंडित होने की संभावना के कारण जैनो ने धातुओं का प्रयोग अधिक किया। इस कला का केन्द्र नालन्दा रहा है। जैन धातु मूर्तियों का निर्माण मगध में गुप्तकाल में हुआ था। बनारस के भारत कला-भवन में रखी हुई जैन मूर्तिए धातु की बनी हुई हैं। जैन वास्तु विषयक ग्रन्थों में काष्ठ मूर्तियों का उल्लेख आता है। मगध के पाल राजाओं ने काष्ठ प्रतिमाओं का सृजन किया था। जैनों ने रत्नों की भी मूर्तियां अंकित की हैं। खम्भात (बम्बई राज्य) में ऐसी एक प्रतिमा सुरक्षित है। पन्ना, हीरा, पुखराज, की कई मूर्तियाँ बबई राज्य में मिली हैं।

चित्र कला

जैन साहित्य में चित्र कला के उल्लेख हैं। वे पौराणिक व ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मानी जाती है। जैनों की प्राचीन कला राजा महाराजाओं के महलों में अंकित पाई जाती है। बाद में सार्वजनिक स्थानो पर भी लोक-रुचि के पोषक चित्र अंकित करवाए गये थे। गुफा व मन्दिरो की दीवारों पर भी महापुरुषों की विशिष्टतम घटनाएं व अन्य सांस्कृतिक चित्र अंकित करवाए जाते थे। जैनाश्रित भित्ति चित्रों की सख्या कम ही

समीक्षा

श्री पर्सी ब्राउन का मत है कि भारत में जैन कला नाम की कोई कला नही थी। इस धर्म के मन्दिर न तो बौद्ध और न ब्राह्मण कला की शैली के थे परन्तु दोनों का मिश्रण कर, उनके धर्म की कथाओं के अनुसार बनाए गए थे। जैनों ने हमेशा अनुकरण किया। किसी नई कला को प्रोत्साहन नही दिया। फिर भी एक दृष्टिकोण से उनकी कला महत्वपूर्ण रही है। उन्होने कई ऐसे मन्दिरों एवं नगरों का निर्माण किया जो कि अन्य किसी कला व धर्म क्षेत्रों में नही पाए गए हैं।

¤ ¤

(घ) चित्र परिचय

मोहनजोदड़ो के टिकरे

यहाँ की खुदाई में प्राप्त अन्य वस्तुओं व अवशेषों से ज्ञात होता है कि इस युग में शवों को गाड़ते भी थे और जलाते भी थे। पशु-बलि का बोलबाला था। वे शक्ति उपासक व नाग पूजक भी थे। नगरों की सफाई का सुचारु प्रबंध था। सोने के आभूषणों से जान पड़ता है कि जाली व महीन मनके बनाने में उस समय के सुनारों ने कमाल हासिल कर लिया था। मिट्टी के बर्तनों पर रंगी आकृतियाँ बहुधा पीपल व ताड़ की पत्तियाँ, *मयूर, हरिन, बारहसिंघा, कौआ, नाग आदि की होती थीं।* जो शव-भाण्ड मिले हैं उनमें पूरे मानव शरीर का हाड़-पिंजर व बलि की वस्तुएं मिली हैं। इन शव भाण्डों पर मृतक आदमी की आत्मा मोर बन कर ऊपर सूर्य की ओर उड़ती चित्रित की गई हैं। इन भाण्डों पर सूर्य की किरणों को पीपल के पत्तों की शकल में दिखाया गया है और बैलों के सिर पर मयूरशिखा दिखाई है, इससे जान पड़ता है कि इस सभ्यता में परलोक गमन में विश्वास था और कयामत के दिन का इंतजार नहीं था।

तोलने के लिए काम में आने वाले बाट भी मिले हैं। इस सिन्धु सभ्यता का विस्तार लगभग १,००० मील में अवश्य था, ऐसा इस युग के विभिन्न खुदे केन्द्रों से जान पडता है। उत्तर प्रदेश में शिमला पहाड़ियों के रोपड़ से मोहनजोदडो, हड़प्पा तक व अरबसागर के तट पर कराची से ३०० मील दूर सुतकगनदड़ों से लोथल के आगे नर्मदा-ताप्ती के कांठे में भोलयाड़ तालुका के गाँव जेतपुर के निकट भगतराव नामक स्थान तक इस सभ्यता के प्रतीक चिन्ह व अवशेष खुदाई में प्राप्त हुए हैं।

त्राटक मुद्रा में एक साधक, मोहनजोदड़ो—देखिए पृ. सं. २६-२७, चित्र सं. २
बृहत स्नानागार, मोहनजोदड़ो—देखिए पृ० सं० २५, चित्र सं. ३

लोथल का टिकरा

लोथल (बंबई राज्य के जिला ग्रहमदाबाद में सरगवला गांव) की खुदाई में प्राप्त मिट्टी के टिकरों (सील्स) से उनके उपयोग के विषय का रहस्य कुछ ज्ञात होना जान पड़ता है। लगभग ७५ टिकरों का जो समूह प्राप्त हुआ है वह मुद्राओं की छापे है। मोहनजोदड़ो व हड़प्पा में जो टिकरे प्राप्त हुए हैं उनमें छापें प्राप्त नहीं हुई हैं। अस्तु लोथल की शोध यह बतलाती है कि इनका उपयोग व्यापार में बण्डलों पर मोहरें लगाने के लिए किया जाता था। एक टिकरे पर तो विभिन्न प्रकार की तीन छापें लगी हैं। लोथल से प्राप्त सीलों पर सिन्धु सभ्यता वाली अज्ञात लिपि व पशुओं की आकृतियां हैं। एक टिकरे पर स्वस्तिक का चिन्ह भी है।

चामर ग्राहिणी, पाटलीपुत्र

पटना के पास दीदारगंज से प्राप्त तथा पटना संग्रहालय में, यह ओपदार मूर्ति प्रदर्शित है। मूर्ति के सब अवयव संतुलित व प्रौढ़ता से कटे हुए हैं और अंग-प्रत्यंग का भराव तथा गोलाई देखते ही बनती है। यह मूर्ति अशोक कालीन कला का अद्वितीय नमूना है।

भरहुत के चित्र—देखिए पृ० स० ५१, चित्र सख्या ७ व ६

शाल भंजिका, भरहुत

यक्ष यक्षिणियों की अनेक मूर्तियां भरहुत की वेदिका पर खुदी हैं। इन मूर्तियों के नीचे कई पर उनके नाम भी खुदे हैं। वेदिका के बीच में आडी जो पट्टियां (सूचिका) लगी है उनमें गोलाकार कई अलंकरण खुदे हैं। इन फूलों में गजलक्ष्मी स्त्री और पुरुष के मुख खुदे हैं। अनेक खाली जगहों पर कमल, पताका, गोमूत्रिका आदि के अलंकरण हैं। यक्षिणियों की मूर्तियां संस्कृत साहित्य के काव्यों में वर्णित विभिन्न नायिकाओं सी जान पड़ती हैं। कवि परम्पराओं से विज्ञ इनका रहस्य भांप सकता है।

वृत्तिका (शाल भंजिका) की यह शुंग-कालीन मूर्ति एक पत्थर में काटे हुए चित्र के समान है। चिपटाडौल ही इस काल की मूर्तियों की विशेषता है। यह मूर्ति अभी कलकत्ता संग्रहालय में है। भरहुत की कुल मूर्तिकला शास्त्रीय स्तर को न छूती हुई होकर, पूर्णतः लोककलात्मक है।

बृहत स्तूप, सांची

यह स्तूप अशोककालीन है। इस स्तूप के चारों ओर तोरण बने हुए हैं। ये तोरण १४ फीट ऊँचे है। इन पर तेहरी बड़ेरिया है। इन पर सिंह, हाथी, धर्मचक्र, यक्ष, त्रिरत्न (बुद्ध, संघ व धर्म के चिह्न) आदि बने हुए हैं। सम्पूर्ण तोरण की ऊँचाई ३४ फीट है। प्रत्येक तोरण पर बुद्ध की जीवनी के और उनके पूर्वजन्मों के अनेक दृश्य बड़ी सजीवता से अंकित किये गये हैं। ये तोरण उस युग की सभ्यता एवं जीवन के ब्योरों के विश्वकोष हैं।

बृहत स्तूप का पूर्वी तोरण, सांची

स्तूप के चारों ओर के तोरण शुंग काल के हैं। पूर्वी तोरण की ऊपरी बड़ेरी में अन्तिम सात बुद्ध, बीच की बड़ेरी में बुद्ध का कपिलवस्तु से प्रस्थान तथा नीचे की बड़ेरी में अशोक का बोधिवृक्ष के दर्शन करने जाना दिखाया गया है।

गान्धार कला

प्राचीन गान्धार-कला की मूर्तियाँ अधिकतर काले पत्थर में खुदी हुई मिलती हैं। इसके अतिरिक्त भूसे पर चूना चढ़ाकर अनेकों मूर्तियाँ बनी हैं। जो स्तूप गान्धार प्रदेश में बने, उनके सतह पर उनके पास के विहारो में आज भी हजारों की संख्या में चूने की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। इन मूर्तियों में बौद्ध धर्म की मूर्तिपूजा का इतिहास है। आरम्भ में बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं बनी बल्कि कुछ प्रतीको की पूजा होती थी जैसे

(१) धर्मचक्र, (२) बोधि वृक्ष, (३) स्तूप, (४) उष्णीष, (५) भिक्षापात्र। बाद में बुद्ध के विभिन्न अवतारों व तत्सम्बन्धी देवी-देवताओं, कुबेर, इन्द्र आदि की मूर्तियाँ बनी। इन मूर्तियों का क्षेत्र कन्धार व गान्धार, स्वात घाटी रहा। इस मूर्तिकला पर स्पष्टतः यूनानी प्रभाव रहा। कपड़ों की सलवट व अंग विन्यास, मासल पेशियों से उभरा रहा। मानव शरीर के अस्थि-पंजर पर बने शरीर के कँण्डे पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। भगवान् बुद्ध की तपस्या के समय जो उनकी देह गली उसका अंकन पेशावर व लाहोर के संग्रहालय में रखी मूर्तियों से होता है। अस्थिपंजर का ऐसा ज्ञान उस काल के कलाकारों की विशेषता है। कुषाणकाल में गान्धार कला अपने सर्वोच्च शिखर पर थी फिर धीरे-धीरे इसका क्षय होने लगा। शक व सिथियनों के राजनैतिक पतन के साथ-साथ यह मिश्रित कला भी विलीन होगई।

चौमुखे सिंह, सारनाथ

सारनाथ से प्राप्त अशोक कालीन ओपदार स्तम्भ पर का यह परगहा एक ही पत्थर का बना हुआ है। इन सिंहों पर एक धर्मचक्र भी था, जिसका व्यास २ फुट ९ इंच था। इसके अब टुकड़े ही मिले हैं। चारों सिंह पीठ से पीठ मिलाए चारों दिशाओं की ओर मुंह किए हैं। इनके अंग प्रत्यंग समविभक्त हैं। इनकी आखों में मणियां बैठाई हुई थी। विन्सेंट स्मिथ के मत से ससार के किसी भी देश की प्राचीन पशु मूर्तियों में इस सुन्दर कृति से बढ़कर कौन कहे परन्तु इसके सदृश भी वस्तु पाना कठिन है। वर्तमान भारत गणराज्य ने अपने राज्य चिन्ह में इसी को अपनाया है।

बौद्ध धर्मचक्र प्रवर्तन, सारनाथ

यह गुप्तकालीन बुद्ध की मूर्ति सारनाथ के खण्डहरों में प्राप्त हुई है बुद्ध पद्मासनासीन हैं। मुखमण्डल पर शांति व गम्भीरता के साथ दर्शनीय

हैं। सिर के पीछे जो प्रभामण्डल है, वह बहुत ही सुचारुरूप से अलंकृत है। कुल कोराई प्रौढ़ता व कलाकार की अंतिम सिद्धि की द्योतक है। गुप्तकालीन मूर्तियों का प्रतिनिधित्व यह मूर्ति करती है। मूर्ति के नीचे उनके पाँच शिष्य एक चक्र को नमस्कार करते दिखाये गये हैं। चक्र के पास एक मृग बैठा है। प्राचीन काल में सारनाथ स्थल का नाम मृगदाव भी था। इसी स्थल पर बैठकर तथागत ने अपने सिद्धान्तों का प्रथम वार प्रज्ञापन किया था।

धमेक स्तूप—देखिए पृ० सं० ८६, चित्र संख्या १५
वेदिकाएँ—देखिए पृ० स० ६४, चित्र सख्या १६

लघु स्तम्भ लेख, सारनाथ

१—देवा (नंपियेपियदसि लाजा)·········
२—ए(ल)
३—पाट (लिपुते)·········ये केनपि सघे भेतवे (।) ए चु खो
४—भिखू वा भिखुनी वा सघ भखति से ओदातानि दुसानि सवंधपयिया आनावासति
५—आवासियिये (।) हेवं इयं सासने भिखु सघसि च भिखुनी सघसि विनंपयितनिये (।)
६—हेवं देवानं पिये आहा हेदिसा च एका लिपी तुफाकं हुवाति संसलनसि निखिता (।)
७—इकं च लिपि हेदिसमेव आसकानंतिक निखिपाथ (।) तेपि च उपासका अनुपोसथ यावु
८—एतमेव सासनं विस्वं सयितवे (।) अनुपोसथ च धुवाये इकिके महामाते पोसथाये
९—याति एतमेव सासनं विस्वं सयितवे आजानितवे च (।) आवतके च तुफाकं आहाले

महाबोधि मन्दिर, बुद्धगया

बुद्धगया, रेल्वे स्टेशन गया से ६ मील दूर है। बौद्ध गया में बुद्ध को एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे हुए ज्ञान प्राप्त हुआ था। अतः यह स्थान बुद्धगया और पीपल का वृक्ष बोधि वृक्ष के नाम से प्रसिद्ध हो गये। महाबोधि मन्दिर उसी स्थान पर बना हुआ है। यह मन्दिर बाद की कृति है लेकिन यह कब बना, इसका पूर्ण निश्चय नही किया जा सका है। हुएन्सांग ने सातवी शती में इसका वर्णन किया है। यह मन्दिर १६० फुट ऊँचा है। मन्दिर के चारो ओर वेदिकायें हैं जो दूसरी शती ईसा पूर्व से चौथी शती तक की हैं। मन्दिर के आंगण में कई स्तूप बने हुए हैं।

स्तूप, नालंदा

नालंदा, बिहार के बख्तियारपुर कस्बे से २५ मील तथा राजगरि (राजगृह) से ७ मील दूर है। नालन्दा रेल्वे स्टेशन भी है। रेल्वे स्टेशन से १॥ मील दूर ही ये ध्वंसावशेष हैं। यह स्थान ५'वीं शदी से १२ वी शती तक अपने विश्वविद्यालय के लिये दूर-दूर देशों तक प्रसिद्ध रहा। यहाँ लगभग १०,००० विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा पाते थे तथा इसके खर्च के चलाने के लिए विभिन्न राज्यों ने २०० गाँव दान में दे रखे थे। यहाँ के कुछ हिस्से की खुदाई की गई है जिसमें कई स्तूप व विहार मिले हैं। जिनमें कई शिलालेख, मूर्तियाँ व ठिकरे भी मिले हैं। इन अवशेषों को देखने से ज्ञात होता है कि इस काल में बौद्ध धर्म हीनयान व महायान शाखाओं के सिद्धांतो से परे तांत्रिकवाद से प्रभावित हो गया था। नालंदा विश्वविद्यालय १३ वीं शती के लगभग मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिया गया व यहाँ का पुस्तकालय जला दिया गया। छतो व उनका आधार लकड़ी का होता था, इस से आग लगने से सब ध्वस हो गया।

☐ ☐

मोहनजोदड़ो के ठिकरे
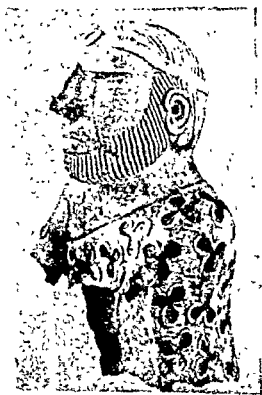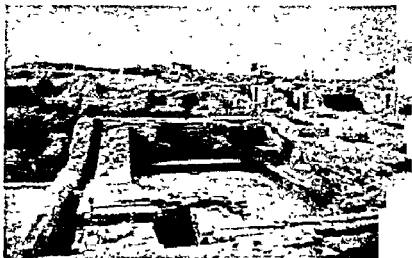
नाटक मुद्रा में एक साधक

बृहत स्नानागार

—९—

मोहन का ठिकरा

हड्डी पर खुदी लिपि, मोहन

चामर ग्राहिणी, पाटलीपुत्र

जेतवन दान, भरहुत

शाल भंजिका, भरहुत

बुद्धोंका आसन, भरहुत

बृहत स्तूप, साँची

बड़े स्तूप का पूर्वी तोरण, साँची

तपस्वी बुद्ध, तक्षशिला
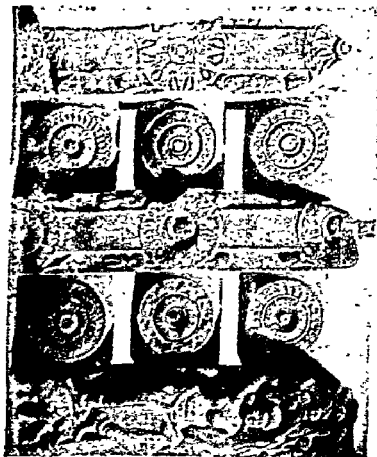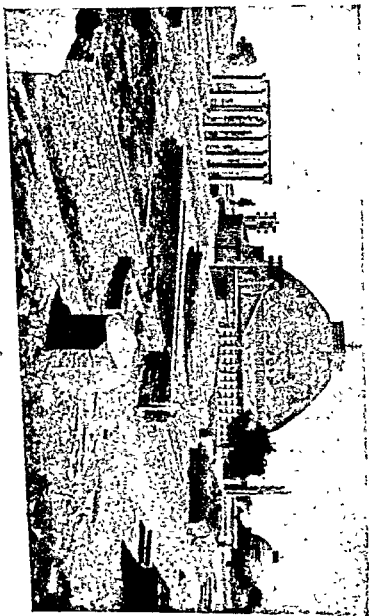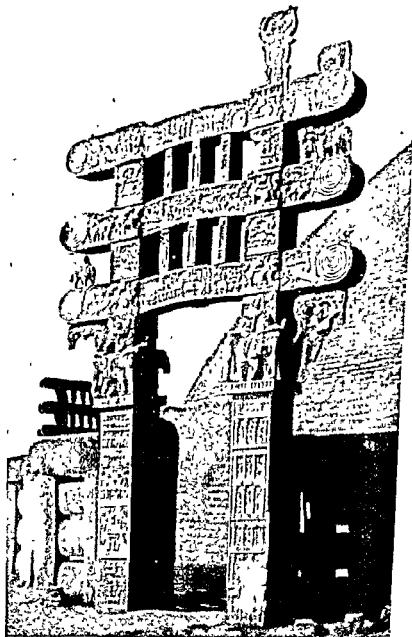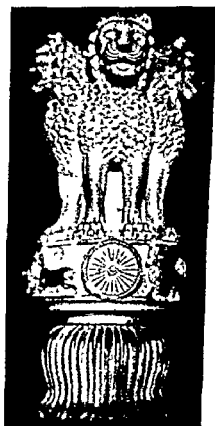
चौमुखे सिंह, सारनाथ

(बुद्ध धर्म चक्र प्रवर्तन), सारनाथ

धमेक स्तूप, सारनाथ

वेदिकाएँ, सारनाथ

लघुस्तम्भ लेख, सारनाथ
(पाठ पृष्ठ १६३ पर)

गुप्तकालीन बुद्ध मुनि, मथुरा

पिजरा लिए हुए परिचारिका, मथुरा

मदमत्त युवती, मथुरा

कनिष्क की मूर्ति मथुरा

परखम-यक्ष, मथुरा

अवलोकितेश्वर, अजन्ता

गुफा नं० १ का दालान, अजन्ता

आकाशगामी गन्धर्व व अप्सराएं अजन्ता

गुफ़ा नं० १६ का प्रवेशद्वार, अजन्ता

मं शाला गुफा सं० १६, एलोरा

कैलाशधारी तपस्वी रावण, एलोरा

गुफा नं० २१, एलोरा

महाबोधि, बुद्धगया

स्तूप, नालन्दा